उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

B.Com.-504

वित्तीय प्रबन्ध

खण्ड

1

परिचय

इकाई -1 5

वित्तीय प्रबन्ध की प्रकृति, क्षेत्र एवं उद्देश्य

इकाई -2 17

वित्त कार्य

इकाई -3 29

वित्तीय पूर्वानुमान

इकाई -4 41

मुद्रा का समय मूल्य

इकाई -5 50

पूंजी लागत

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	**कुलपति - अध्यक्ष**
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
श्री एम0 एल0 कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

संरचनात्मक सम्पादन

डॉ0 मंजूलिका श्रीवास्तव	निदेशक, दूरस्थ शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली

विषयगत सम्पादन

प्रो0 मूल मोतिहार	प्रोफेसर, मोनिरबा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 राजेश पाण्डेय	प्रवक्ता, वाणिज्य विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सैदाबाद, इलाहाबाद

प्रस्तुत पाठ्य सामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के स्वयं के हैं।

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

NFT-121

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय प्रयागराज की ओर से कर्नल विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा पुनः मुद्रित एवं प्रकाशित वर्ष 2025

मुद्रक : चन्द्रकला यूनिवर्सल प्रा0 लि0 42/7 जवाहर लाल नेहरू रोड प्रयागराज 211002

खण्ड-1 परिचय-

इस खण्ड में वित्तीय प्रबन्ध की प्रकृति, क्षेत्र, उद्देश्य को इकाई - 1 में, इकाई - 2 में वित्तकार्य, इकाई - 3 में वित्तीय पूर्वानुमान, इकाई - 4 में मुद्रा का समय मूल्य एवं इकाई - 5 में पूँजी लागत की व्याख्या की गई है।

इकाई – 01 वित्तीय प्रबन्ध की प्रकृति, क्षेत्र तथा उद्‌देश्य

इकाई की संरचना

1.1 उद्देश्य

1.2 परिचय

1.3 वित्तीय प्रबन्ध विचारधारा

1.4 परिभाषा

1.5 प्रकृति

1.6 क्षेत्र

1.7 सारांश

1.8 महत्वपूर्ण प्रश्न

1.9 अभ्यास प्रश्न

1.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन का उद्देश्य आपको वित्तीय प्रबन्ध विषय से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप –

वित्तीय प्रबन्ध और इसके संदर्भ में प्रचलित विचारधारायें पर टिप्पणी कर सकेंगे,

– वित्तीय प्रबन्ध की परिभाषा कर सकेंगे,

– वित्तीय प्रबंध की प्रकृति एवं क्षेत्र का विवरण कर सकेंगे,

– वित्तीय प्रबंध के उद्‌देश्य।

1.2 परिचय

वित्तीय प्रबन्धन की प्रकृति, क्षेत्र तथा उद्‌देश्य

(Nature, Scope and Objective of Financial Management)

मनुष्य द्वारा अपने जीवन काल में प्रायः दो प्रकार की क्रियाएं सम्पादित की जाती है 1. आर्थिक क्रियायें 2. अनार्थिक क्रियाएं ।

आर्थिक क्रियाओं के अन्तर्गत हम उन समस्त क्रियाओं को सम्मिलित करते हैं जिनमें प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से धन की संलग्नता होती है जैसे रोटी, कपड़े, मकान की व्यवस्था आदि।

अनार्थिक क्रियाओं के अन्तर्गत पूजा–पाठ, व अन्य सामाजिक व राजनैतिक कार्यों को सम्मिलित किया जा सकता है।

जब हम किसी प्रकार का व्यवसाय करते हैं अथवा उद्योग लगाते हैं अथवा फिर कतिपय तकनीकी दक्षता प्राप्त करके किसी पेशे को अपनाते हैं। तो हमें सर्वप्रथम वित्त **(Finance)**, धन **(Money)**, की आवश्यकता पड़ती है जिसे हम पूँजी **(Capital)** कहते हैं।

जिस प्रकार किसी मशीन को चलाने हेतु उर्जा के रूप में तेल, गैस या बिजली की आवश्यकता होती है उसी प्रकार किसी भी आर्थिक संगठन के संचालन हेतु वित्त की आवश्यकता होती हैं। अतः वित्त जैसे अमूल्य तत्व का प्रबन्ध ही वित्तीय प्रबन्धन कहलाता है। व्यवसाय के लिये कितनी मात्रा में ध ान की आवश्यकता होगी, वह धन कहॉ से प्राप्त होगा और उपयोग संगठन में किस रूप में किया जायेगा, वित्तीय प्रबन्धक को इन्हीं प्रश्नों के उत्तर खोजने पड़ते हैं। चूँकि व्यवसाय का उद्देश्य अधिकतम लाभ **(Profit maximization)** अर्जन करना होता है। अतः अधिकतम लाभ का अर्जन दो प्रकार से किया जा सकता है। 1. निर्मित वस्तु का मूल्य बढ़ाकर अथवा वस्तु को अत्यधिक लाभ में बेचकर 2. निर्मित वस्तु की उत्पादन लागत घटाकर अथवा खरीदी गई वस्तु पर कम लाभ लेकर अधिक मात्रा में बिक्री करके। वित्तीय प्रबन्धन का प्रमुख उद्देश्य लाभ एवं व्यवसाय की परिसम्पत्तियों को अधिकतम करना होता है। प्रतिस्पर्धा के कारण हम प्रथम विकल्प पर विचार नहीं कर सकते। संगठन को दीर्घकाल तक संचालित करने हेतु दूसरे विकल्प अर्थात वस्तु की उत्पादन लागत घटाकर, तथा खरीदी गई वस्तु की अधिक मात्रा बेचकर ही लाभ को अधिकतम किया जाना श्रेयस्कर होगा।

1.3 वित्तीय प्रबन्ध विचारधारा

वित्तीय प्रबंधन के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों द्वारा अपने विचार व्यक्त किये गये हैं। कतिपय विद्वान परम्परागत **(Traditional)** विचारधारा के मानने

वाले हैं तथा कुछ विद्वानों ने आधुनिक संदर्भ में वित्तीय प्रबन्धन को परिभाषित किया है।

परम्परागत विचार धारा (Traditional thought)–परम्परागत विचारध ाारा के अन्तर्गत वित्तीय प्रबन्धन का प्रमुख कार्य 'कोषो की व्यवस्था' (Procurement of funds) तक सीमित माना जाता है। इसके अन्तर्गत पूंजी शक्ति के साधनों, संस्थागत स्रोतो, प्रचलित व्यवहारों (Curremt Practices) के अध्ययन को प्रमुखता दी जाती है। इस विचारधारा के समर्थक विद्वानों में थामस, एलग्रीन, ई0एस0 मीड, ए0एम0 डेविंग, सी0डब्ल्यू0 गेस्टर्नवर्ग, हण्ड एण्ड विलियम्स आदि प्रमुख थे जिनकी पुस्तकें सन 1897 से 1950 के बीच के वर्षों में प्रकाशित हुई।

आधुनिक विचारधारा (Modern thought) आधुनिक विचारधारा के समर्थक विद्वान वित्त प्रबन्धन के अन्तर्गत कोषों की व्यवस्था (Procurement of funds) के साथ साथ कोषों के उपयोग (Use of funds) को भी आवश्यक मानते हैं। इस विचारधारा के अनुसार वित्तीय प्रबन्ध व्याव्सायिक प्रबन्धन का प्रमुख अंग बन गया है। व्यवसाय के संचालन एंव निर्णयन एवं विश्लेषण में वित्तीय प्रबन्धन की महती भूमिका सुनिश्चित हो चुकी है।

परम्परागत एवं आधुनिक विचारधाराओं में अन्तर
(Difference between Traditional and Modern Approaches)

आधार	परम्परागत विचारधारा	आधुनिक विचारधारा
1. क्षेत्र	वर्णनात्मक तथा संकुचित थी	विश्लेषणात्मक एवं व्यापक
2. सीमा	अनियमित या कभी कभी कार्य में संलग्नता	अनवरत् तथा नियमित कार्य
3. निर्णयन	निर्णयन में सक्रिय भूमिका नहीं	निर्णयन में सक्रिय भूमिका
4. कार्य	संगठन के लिए कोषों की व्यवस्था करना	कोषों की व्यवस्था के साथ साथ सम्यक उपयोग सुनिश्चित करना।
5. आधार	निर्णय के आधार अर्न्तप्रेरणा व पूर्व अनुभव	वैज्ञानिक विश्लेषण की आधुनिक विधियों का प्रयोग
6. काल	दीर्घकालीन, कोषों के प्रबन्ध पर अधिक बल	कार्यशील पूँजी प्रबन्धन व अल्पकालीन, कोषों के प्रबन्ध पर बल।

1.4 वित्तीय प्रबन्ध की परिभाषा

प्रमुख वित्त विशेषज्ञों द्वारा दी गई परिभाषाएं निम्नलिखित हैं

1. **हावर्ड एवं उपटन (Haward and Upton)** वित्तीय प्रबन्ध से आशय नियोजन एंव नियंत्रण कार्यो को वित्त कार्य पर लागू करना है।

2. **जे. एल. मैसी (J.L.Massie)** वित्तीय प्रबन्ध एक व्यवसाय की वह संचालनात्मक प्रक्रिया है जो कुशल प्रचालनों के लिए आवश्यक वित्त को प्राप्त करने तथा उसका प्रभावशाली ढंग से उपयोग करने हेतु उत्तरदायी होता है।

3. **वियरमैन व स्मिथ (Bierman and Smith)** वित्तीय प्रबन्ध पूँजी के स्रोतों का निर्धारण करने तथा उसके अनुकूलतम उपयोग का मार्ग खोजने वाली विधि है।

4. **वेस्टर्न एवं जाइगम** के शब्दों में वित्तीय प्रबन्धन वित्तीय निर्णयन की वह प्रक्रिया है जो व्यक्तिगत मामलों एवं उपक्रम के लक्ष्यों के मध्य मेल स्थापित करती है।

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि वर्तमान समय में वित्तीय प्रबन्धन के अन्तर्गत कोषों को एकत्रित करने के साथ साथ नियोजन, निर्णयन, संचालन, पूँजी स्रोतों के निर्धारण एवं अनुकूलतम प्रयोग से घनिष्टता पूर्वक सम्बन्धित है।

1.5 प्रकृति (Nature)

परम्परागत एवं आधुनिक विचारधाराओं के आधार पर वित्तीय प्रबन्ध की प्रकृति एवं विशेषताओं को निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है –

1. **केन्द्रीय प्रकृति (Centralised Nature)** - व्यवसायिक प्रबन्धन के अन्तर्गत वित्तीय प्रबन्धन ही ऐसा क्षेत्र है, जिसकी प्रकृति केन्द्रीयकृत होती है। आधुनिक औद्योगिक प्रबन्धन में विपणन व उत्पादन कार्यों को हम विकेन्द्रीकृत करके सफल हो सकते हैं किन्तु वित्त कार्य का विकेन्द्रीकरण सम्भव नहीं होता है। अर्थात इसे हम अनेक व्यक्तियों के मध्य विभाजित नहीं कर सकते। चूँकि वित्त कार्य में समन्वय व नियंत्रण की स्थिति केन्द्रीयकरण द्वारा ही

प्राप्त की जा सकती है।

2. **निर्णयन में सहायक (Helpful in Decision Making)** – आधुनिक संदर्भ में वित्तीय प्रबन्धन, सर्वोच्च प्रबन्धन को निर्णय लेने में सहायता पहुँचाता है। अर्थात सर्वोच्च प्रबन्धन की सफलता वित्तीय प्रबन्ध के कुशल मार्गदर्शन से ही सम्भव होती हैं।

3. **व्यावसायिक समन्वय (Business Coordination)** – विभिन्न व्यावसायिक गतिविधियों को एक सूत्र में बॉधने का कार्य वित्त के द्वारा ही किया जाता है। विभिन्न क्रियाओं के मध्य समन्वय स्थापित करके हम व्यावसायिक लागतों (Business costs) को उचित सीमाओं में बॉध सकते हैं। समन्वय के द्वारा उपलब्ध संसाधनों का अनुकूलतम आवंटन (Optimum allocation) तथा अधिकतम उपयोग सम्भव हो सकता है।

4. **कार्य निष्पत्ति का मापक (Measure of Performance)** – किसी भी संगठन के कार्य निष्पात्ति का मापन हम वित्त के माध्यम से ही कर सकते है। वित्तीय निर्णयन का प्रभाव नीति निर्धारण, जोखिम की मात्रा एवं लाभदायकता पर पड़ता है। अर्थात "वित्तीय निर्णयन आय की मात्रा तथा व्यावसायिक जोखिम, दोनों तत्वों को प्रभावित करते हैं। तथा इन दोनों कारकों द्वारा सामूहिक रूप से फर्म के मूल्य को निर्धारित किया जाता है।'

5. **विश्लेषणात्मक एवं व्यापक स्वरूप (Analytical and Wider form)** – परम्परागत वित्तीय प्रबन्धन विगत अनुभव तथा अन्तप्रेरणा से प्रेरित था किन्तु. आधुनिक वित्तीय प्रबंधन के अन्तर्गत सांख्यकीय ऑकड़ों तथा तथ्यों के आधार पर परिस्थिति विशेष में हानि तथा लाभ का मूल्यांकन करके तदनुरूप निर्णयन द्वारा जोखिम की मात्रा को कम किया जा सकता है। वित्तीय प्रबन्धन का वर्तमान स्वरूप विश्लेषणात्मक (Analytical) है न कि वर्णनात्मक (Descriptive)I

6. **सतत प्रशासनिक क्रिया (Continuous Administrative Function)** – वित्तीय प्रबंधन के पारम्परिक स्वरूप में वित्तीय प्रबन्ध का कार्य कोषों की व्यवस्था (Procurement of funds) तक सीमित था, संगठन की स्थापना के आरम्भिक चरण में अथवा पुर्नगठन, के समय में ही वित्तीय प्रबन्ध

ान की महती भूमिका रहती थी। किन्तु वर्तमान युग में वित्तीय प्रबन्धन कार्य एक सतत प्रशासनिक प्रक्रिया है। जो व्यवसाय की स्थापना से लेकर संचालन, तथा समापन तक अनवरत जारी रहता है।

1.6 वित्तीय प्रबन्ध का क्षेत्र (Scope of Financial Management)

जैसा कि हम पूर्व में अध्ययन कर चुके हैं कि वित्तीय प्रबन्धन की पारम्परिक विचारधारा के अन्तर्गत वित्तीय प्रबन्धक का कार्य केवल वित्त प्राप्ति की व्यवस्था (Procurement of funds) तक ही सीमित था किन्तु वित्तीय प्रबन्ध की विचारधारा में परिवर्तन एवं परिमार्जन के साथ ही वित्तीय प्रबन्ध के क्षेत्र में भी व्यापक परिवर्तन हुआ है। अब वित्त प्रबन्धन कोषों की व्यवस्था के साथ–साथ उपलब्ध कोषों के प्रभाव पूर्ण उपयोग (Effective Utilisation) हेतु भी उत्तरदायी होता है। अर्थात वर्तमान युग में वित्तीय प्रबन्ध ाक नियोजन की प्रक्रिया (Process of Decision making) से घनिष्ठतापूर्वक जुड़ गया है। आधुनिक संदर्भों में वित्तीय प्रबन्धन का क्षेत्र निम्नलिखित कार्यों तक फैला हुआ है।

1. **वित्तीय नियोजन में सहायक (Assistance in Financial Planning)** – वर्तमान युग में वित्तीय प्रबन्धन की भूमिका वित्तीय नियोजन के क्षेत्र में अग्रणी है। इसके अन्र्तगत उद्देश्यों, नीतियों, एवं कार्यविधियों का निर्धारण, वित्तीय योजनाओं एवं पूंजी ढांचे का निर्माण आदि को सम्मिलित किया जाता है।

2. **वित्त प्राप्ति की व्यवस्था (Procurement of Funds)** – वित्तीय प्रबन्धन का प्रमुख कार्य संगठन के प्रस्तावित पूंजी ढांचे के अनुरूप विभिन्न श्रोतों से व्यवसाय संचालन हेतु अपेक्षित पूंजी की व्यवस्था करना होता है।

3. **वित्त कार्य का प्रशासन (Administration of Finance Function)** – इसके अन्तर्गत वित्तीयप्रबन्धन द्वारा वित्त विभाग एवं उवविभागों का संगठन, कोषाध्यक्ष (Treasurer) तथा नियंत्रक (Controller) के कार्यों, दायित्वों एवं अधिकारों का निर्धारण एवं लेखा पुस्तकों के रख–रखाव की व्यवस्था की जाती है।

वित्तीय प्रबन्ध सम्पत्तियों के प्रभाव पूर्ण उपयोग एवं प्रबंधन हेतु भी उत्तरदायी होता है। स्थिर सम्पत्तियों (Fixed Assets) के क्रय सम्बन्धी वित्तीय पहलुओं पर उचित परामर्श के साथ–साथ चल सम्पत्तियों (Current assets) की समयानुकूल आपूर्ति सुनिश्चित करना भी वित्तीय प्रबन्धन के कार्य क्षेत्र में सम्मिलित होता है।

वित्तीय नियंत्रण वित्तीय प्रशासन का प्रमुख अंग है। वित्तीय प्रबन्ध द्वारा वित्तीय नियन्त्रण के माध्यम से ही व्यावसायिक लक्ष्यों की पूर्ति (अधि ाकतम लाभार्जन) की जा सकती है। वित्तीय नियंत्रण की स्थापना हेतु पूँजीबजटिंग, रोकड़ बजट, तथा लोचपूर्ण बजटिंग नामक तकनीकों का प्रयोग किया जा सकता है।

4. भुद्ध लाभ का आवंटन (Allocation of Net Profit) – लाभॉश नीति का निर्धारण वित्तीय प्रबन्धक का प्रमुख कार्य होता है। शुद्ध लाभ का कितना भाग अंशधारकों के मध्य वितरित किया जाय तथा कितना भाग संचित कोषों के रूप में रोक (Retain) लिया जाय, जिसका प्रयोग संगठन के विकास, सम्वर्धन एवं लाभदेयकता में वृद्धि हेतु किया जा सके। इस निर्णय का सीधा प्रभाव अंशों के भावी बाजार मूल्यों पर पड़ता है। यदि हम समस्त शुद्ध लाभ के अधिकांश भाग को अंशधारकों के मध्य विभाजन का निर्णय लेते हैं तो अल्पकाल में अंशों के बाजार मूल्य में वृद्धि स्वाभाविक है किन्तु संगठन के विकास की भावी योजनाओं को क्रियान्वित नहीं किया जा सकेगा, तथा दीर्घ काल में संगठन की लाभदेयकता प्रभावित हो सकती है। इसके विपरीत यदि वित्तीय प्रबंधक समस्त लाभों या लाभ के अधिकांश भाग को प्रतिधारित (Retained) करता है। तो अंशों का बाजार मूल्य अत्यन्त कम हो सकता है। परिणाम स्वरूप भविष्य में पूंजी संग्रहण की कठिनाई आ सकती है अतः लाभों के आवंटन में वित्तीय प्रबन्धन की भूमिका पर संगठन का भावी विकास एवं अंशों का बाजार मूल्य प्रभावित होता है।

5. विकास एवं विस्तार (Expansion and Extension) – वित्तीय प्रबन्धन संगठन के भावी विकास, एवं विस्तार हेतु भी उत्तरदायी होता है। संगठन के विकास एवं विस्तार हेतु अतिरिक्त पूंजी की लागत, स्वामित्व,

नियंत्रण, जोखिम, एवं आय पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण भी वित्तीय प्रबन्धन के क्षेत्र में सम्मिलित होता है।

1.7 वित्तीय प्रबन्ध का उद्देश्य (Objects of Financial Management)

संगठन के समस्त प्रारूपों (एकल, साझेदारी, कम्पनी) का अंतिम लक्ष्य संगठन के संचालन से होने वाले लाभों को अधिकतम करना होता है। वित्तीय प्रबन्ध का प्राथमिक उद्देश्य उपलब्ध समस्त, मानवीय एवं भौतिक साधनों का अधिकतम, कुशलतम, एवं मितव्ययी उपयोग करके लाभ को अधिकतम करना होता है। उत्पादन के तत्वों **(5 m's-men, machine, material, money, market)** श्रम मशीन, सामग्री, पूँजी एवं बाजार की उपलब्धता, वित्त के माध्यम से ही सम्भव हो सकती है। अतः वित्तीय प्रबन्धन के द्वारा हमें उपलब्ध सीमित साधनों का सर्वश्रेष्ठ विकल्पों के आधार पर मितव्ययिता पूर्वक उपयोग करके अधिकतम लाभ की अवधारणा को पुष्ट करना चाहिए।

सामान्य तौर पर वित्तीय प्रबन्धन के अन्तर्गत निम्न तीन साविधिक वित्तीय निर्णयन लेने पड़ते हैं।

1. कोषों का उपयोग कहाँ किया जाय और कितनी मात्रा में किया जाय।

2. अंशधारकों को लाभांश के रूप में कितनी धनराशि का भुगतान किया जाय, और कितनी धनराशि को व्यवसाय के संवर्धन हेतु प्रतिधारित **(Retained)** कर लिया जाय।

3 कोषों की व्यवस्था एवं वृद्धि कहाँ से की जाय और कितनी मात्रा में की जाय।

उपरोक्त प्रश्नों के समाधान फर्म की वित्तीय एवं विनियोग नीति का प्रतिनिधित्व करते हैं। सामान्य तौर पर यह स्वीकृत तथ्य है कि किसी भी फर्म का वित्तीय उद्देश्य मालिकों का अधिकतम आर्थिक कल्याण **"Maximization of owner's economic welfare"** होना चाहिए। अतः वित्तीय प्रबंधन का प्रमुख उद्देश्य संगठन के लाभों का अधिकतमीकरण **(Profit maximization)** तथा संगठन की सम्पत्तियों का अधिकतमीकरण **(Wealth maximization)**

करके मालिकों का अधिकतम आर्थिक कल्याण करना होता है।

1. **लाभ अधिकतमीकरण (Profit maximization)** – वस्तुतः किसी भी वित्तीय क्रियाकलाप का मूल उद्‌देश्य लाभार्जन होता है। लाभार्जन की संभावना के कारण ही उद्यमी में जोखिम सहन करने की सामर्थ्य विकसित होती है। वास्तव में मानव द्वारा सम्पन्न की जाने वाली किसी भी आर्थिक क्रिया का उद्‌देश्य उपयोगिता का अधिकतमीकरण (Utility maximization) होता है। उपयोगिता का मापन लाभ के रूप में करके हम अधिकतम सामाजिक, आर्थिक कल्याण (maximum socio, economic welfare) प्राप्त कर सकते हैं। अतः वित्तीय प्रबन्धन को उन समस्त क्रियाकलापों में सहभागी होना चाहिए, जिनसे संगठन के लाभों को अधिकतम किया जा सके।

वित्तीय प्रबन्धन के क्षेत्र में अधिकतम लाभ की अवधारणा को मानने वाले निम्न तर्कों के आधार पर इसे न्याय संगत मानते हैं।

1.1 अधिकतम लाभ से हम अधिकतम सामाजिक लाभ की प्राप्ति कर सकते हैं। किसी भी फर्म द्वारा उत्पादकता में अभिवृद्धि करके प्राप्त होने वाले अधिकतम लाभ से अधिकतम सामाजिक कल्याण जैसे शिक्षा, रोजगार, आवास, चिकित्सा आदि कार्य किये जा सकते हैं।

1.2 अधिकतम लाभ अर्जित करने की धारणा निर्णयन प्रक्रिया को प्रभावित करती है। निर्णयन का औचित्य संगठन की लाभार्जन क्षमता पर निर्भर करता है। वित्तीय निर्णयन की सार्थकता एवं निरर्थकता लाभ के अधिकतमीकरण पर निर्भर होती है।

1.3 अधिकतम लाभार्जन के उद्‌देश्य से हम साधनों का अधिकतम व कुशलतम उपयोग कर लेते हैं।

1.4 लाभ की अवधारणा किसी भी समाज में स्वच्छ प्रतिस्पर्धा को जन्म देती है। स्वच्छ प्रतिस्पर्धा अधिकतम लाभार्जन हेतु परम आवश्यक होती है।

आलोचना – अधिकतम लाभ की अवधारणा अत्यन्त व्यावहारिक होने पर भी आलोचना का केन्द्र रही है। पूँजीवादी राष्ट्रों में लाभ की सर्वोच्चता है। किन्तु समाजवादी व्यवस्था से सामाजिक लाभ (Social Profit) का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रसिद्ध विचारक जार्ज बर्नाड शा ने कहा है कि

"पूंजीवाद आत्माहीन है पूँजीपतियों का ईश्वर 'लाभ' है लाभ की अत्याधुनिक विचार धारा अधिकतम लाभ के स्थान पर उचित लाभ या अनुकूलतम लाभ (Reasonable profit) के सिद्धान्त को मान्यता प्रदान करती है।

सम्पदा अधिकतमीकरण (Wealth maximization) – वित्तीय प्रबंधन का आधुनिकतम उद्‌देश्य लाभ अधिकतमीकरण (Profit maximization) के अतिरिक्त धन अधिकतमीकरण (Wealth Maximization) भी है। फर्म में प्रायः यह निर्णय नहीं हो पाता कि वह अल्पकाल में होने वाले त्वरित लाभों की ओर ध्यान दे या दीर्घ काल में होने वाले स्थायी प्रकृति के लाभों को प्राप्त करने हेतु नियोजित प्रयास करें। स्थायी प्रकृति के लाभों को प्राप्त करने हेतु फर्म की सम्पत्तियों को अधिकतम करना आवश्यक होगा।

वस्तुतः इस अवधारणा के अनुसार वित्तीय प्रबन्धक को फर्म के लिये ऐसे कार्यो को सम्पादित करना चाहिए, जिनसे फर्म की सम्पत्तियों का सृजन एवं वृद्धि हो। सम्पत्ति का अधिक मात्रा में निर्माण होने पर फर्म के शुद्ध मूल्य में वृद्धि होती है। वित्तीय प्रबन्धन के समक्ष फर्म के अधिकतम कल्याण हेतु एक से अधिक विकल्प होने पर उसी विकल्प का चयन करना उचित होगा जिसमें सर्वाधिक शुद्ध मूल्य का सृजन हो सके। वस्तुतः किसी कार्य का शुद्ध वर्तमान मूल्य उक्त कार्य से प्राप्त वर्तमान सकल आगम में से सम्बन्धित कार्य में विनियोजित आरम्भिक पूँजी को घटाने से प्राप्त हो सकता है। सूत्र रूप में हम इसे निम्नवत प्रस्तुत कर सकते हैं–

$$N\,PV = G\,PV - C$$

NPV = Net Present Value (शुद्ध वर्तमान मूल्य)

GPV = Gross Present Value (सकल वर्तमान मूल्य)

C = Opening Cost of Investment (विनियोग की आरम्भिक लागत)

व्यवसाय संचालन के परिणाम स्वरूप यदि शुद्ध वर्तमान मूल्य शून्य से अधिक हो जाय तो यह माना जा सकता है कि स्वामियों की सम्पत्ति के वर्तमान मूल्य में अभिवृद्धि हुई है। शुद्ध वर्तमान मूल्य के धनात्मक होने का आशय सम्पत्ति के मूल्य में वृद्धि तथा शुद्ध वर्तमान मूल्य के ऋणात्मक होने का आशय सम्पत्ति के मूल्य में कमी से होता है।

व्यवसाय के कम्पनी स्वरूप में पूँजी एकत्रीकरण का प्रमुख आधार अंशों का निर्गमन होता है, तथा मूल्य का आशय समता अंशों के बाजार मूल्य से होता है।

अंशों के बाजार मूल्य में वृद्धि से तात्पर्य सम्पत्तियों के मूल्य में वृद्धि तथा अंशों के बाजार मूल्य में कमी का आशय सम्पत्तियों के मूल्य में कमी से है। वस्तुतः वित्तीय प्रबन्धन का प्रमुख उद्देश्य कम्पनी के समता अंशधारियों के अंशों के बाजार मूल्य को अधिकतम करना होना चाहिए। किन्तु समता अंश धारियों के हितों को संरक्षित करने के साथ–साथ कम्पनी से जुडे अन्य सम्बन्धित पक्षों के हितों को भी ध्यान में रखकर व्यवसाय संचालन का अनुकूलतम स्तर **(Optimum level of business operation)** बनाये रखना चाहिए।

1.8 सारांश

वित्त व्यवसाय का आधार स्तम्भ है, वित्त के अभाव में हम कोई भी व्यावसायिक क्रिया सम्पादित नहीं कर सकते। वित्त व्यवसाय में रक्त वाहिनी नलिका के समान हैं। वित्त के हम व्यावसायिक संदर्भों में पूँजी का पर्याय मानते हैं। पूँजी शब्द उद्देश्य विशेष को इंगित करता है। अर्थात जब हम वित्त को पूँजी के रूप में दर्शाते हैं तो हमें किसी व्यवसाय अथवा उद्योग में विनियोजन का उद्देश्य दृष्टिगत होता है। पूँजी का प्रबन्धन, किसी भी संगठन के सृजन एवं विस्तार हेतु परम आवश्यक होता है। व्यवसाय का अन्तिम उद्देश्य लाभ का अधिकतमीकरण होता है, अतः संगठन के अंतिम उद्देश्य की प्राप्ति हेतु वित्त का कुशलतम प्रबन्ध अत्यावश्यक होता है। वित्तीय प्रबन्धन के क्षेत्र में दो प्रकार की विचारधारायें प्रचलित हैं। परम्परागत, विचारधारा जो केवल कोषों के संग्रहण तक सीमित है जब कि आधुनिक विचारधारा में कोषों के संग्रहण के साथ कोषों का प्रयोग भी वित्तीय प्रबन्धन द्वारा किये जाने हेतु विचार व्यक्त किये गये हैं।

1.9 महत्वपूर्ण प्रश्न

1. वित्तीय प्रबन्ध से आप क्या समझते हैं?
2. वित्तीय प्रबन्ध की पारम्परिक विचारधारा एवं आधुनिक विचारधारा में

अन्तर स्पष्ट कीजिए।

3. लाभ अधिकतमीकरण एवं सम्पदा अधिकतमीकरण क्या है?

4. "वित्तीय प्रबन्ध सामान्य प्रबन्ध का एक भाग है" इस कथन पर अपना विचार प्रकट कीजिए।

5. वित्तीय प्रबन्ध हेतु किसी विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता आप महसूस करते हैं या नहीं, यदि हाँ तो क्यों? यदि नहीं तो क्यों नहीं?

1.10 अभ्यास प्रश्न

1. वित्त को कितने भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है?
2. Introduction to business finance के लेखक कौन है?
3. वित्तीय प्रबन्ध विज्ञान अथवा कला है?
4. वित्तीय प्रबन्ध का अंतिम लक्ष्य क्या होता है?
5. वित्तीय प्रबन्धन को निर्णयन लेने पड़ते हैं?

1.11 अभ्यास के प्रश्न के उत्तर

1. लोक वित्त, निजी वित्त, व्यावसायिक वित्त
2. हावर्ड उपटन
3. विज्ञान व कला दोनों
4. लाभ अधिकतमीकरण धन अधिकतमीकरण, सामाजिक लाभ का अधिकतमीकरण.
5. विनियोग निर्णय, प्रबन्ध निर्णय, लाभांश निर्णय।

इकाई– 2 वित्त कार्य (Finance Function)

इकाई की संरचना

2.1 उद्देश्य

2.2 परिचय

2.3 वित्त कार्य की प्रकृति एवं विकास

2.3.1 पारम्परिक विचारधारा

2.3.2 आधुनिक विचारधारा

2.3.3 परम्परागत एवं आधुनिक विचारधारा में अंतर

2.4 वित्त कार्य का संगठन

2.4.1 वित्त समिति

2.4.2 कोषाध्यक्ष

2.4.3 वित्त नियंत्रक

2.5 अभ्यास प्रश्न

2.6 लघु उत्तरीय प्रश्न

2.7 सारांश

2.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन का उद्देश्य आपको वित्त कार्य से परिचित कराना है। वित्त कार्य की प्रकृति एवं विकास के सम्बन्ध में प्रचलित विचारध ााराओं एवं इनके मध्य अंतर को स्पष्ट करना है। वित्त कार्य के संगठन सम्बन्ध ाी संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करना भी इस इकाई के अध्ययन का उद्देश्य है।

2.2 वित्त कार्य (Finance Function)

वित्त कार्य से अभिप्राय किसी भी संगठन में वित्त सम्बन्धी कार्यों से है। अर्थात औद्योगिक एवं व्यावसायिक संगठनों में वित्तीय प्रबन्धक द्वारा संगठन में जो भी कार्य किये जाते हैं, उन्हें वित्त कार्य कहा जाता है। वित्त कार्य को हम प्रमुखतया तीन संदर्भों में परिभाषित कर सकते हैं।

1. प्रथम संदर्भ में वित्त कार्य से आशय संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु आवश्यक कोषों (fund) की उपलब्धता तय करने से है।

2. द्वितीय संदर्भ में वित्त कार्य से अभिप्राय संगठन के अन्तर्गत समस्त नकद क्रियाओं को सम्मिलित करने से है।

3. तृतीय संदर्भ में वित्त कार्य से आशय कोषों की प्राप्ति (Procurement of funds) तथा व्यवसाय में उनका प्रभावशाली उपयोग करने से है।

वस्तुतः वित्त कार्य का सीधा सम्बन्ध धन (Money), बाजार (Market) तथा लोगों (People) से है। अतः इसके अन्तर्गत कोषों की उपलब्धता सुनिश्चित करने के साथ ही उनका प्रभावपूर्ण उपयोग सुनिश्चित करने से है।

2.3 वित्त कार्य की प्रकृति एवं विकास (Nature and Development of Finance Function)

बीसवीं सदी का उत्तरार्द्ध वित्त कार्य की प्रकृति एवं विकास में आमूल परिवर्तन काल रहा है। परम्परागत तौर पर जब वित्त कार्य मात्र कोषों की व्यवस्था तक सीमित था, वहीं आधुनिक परिदृश्य में वित्त कार्य कोषों की व्यवस्था के साथ–साथ कोषों के प्रभावकारी उपभोग से भी सम्बन्धित हो चुका है। आधुनिक संदर्भों में वित्त कार्य का अभिप्राय कोषों की व्यवस्था करने के साथ ही कोषों के प्रभावकारी उपयोग करने से भी है।

अर्थात वर्तमान समय में वित्त कार्य को पश्चिमीकरण के केन्द्र बिन्दु (Focal point of decision making) के रूप में मान्यता प्राप्त हो चुकी है।

ऐतिहासिक कालक्रमानुसार वित्त कार्य के विकास एवं प्रकृति को निम्न दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

2.3.1 पारम्परिक विचारधारा (Traditional Approach)

वित्त प्रबंध की पारम्परिक विचारधारा का उदय एवं विकास बीसवीं सदी के प्रथम अर्द्धशतक तक हुआ, इस काल की प्रकाशित पुस्तकों में Corporation Finance – Thomas Green (1897), Corporation Finance- Edwards Meade (1910)] Materials of Corporation Finance – Charles W. Gersten berg (1915) Case Problems in Finance Huud and Williams

(1945) इत्यादि प्रमुख हैं।

वित्तीय प्रबन्धन की पारम्परिक विचारधारा के अन्तर्गत वित्त कार्य एक यत्रतत्रिक (Sporadic) कार्य था, इस विचारधारा के अन्तर्गत वित्तीय प्रबन्धन के क्षेत्र को सीमित किया गया है। इस धारणा के अनुसार वित्तीय प्रबन्ध का क्षेत्र मात्र कोषों के एकत्रीकरण (Procurement of funds) तक सीमित होता है। तथा कतिपय विशिष्ट घटनाओं जैसे, प्रवर्तन, पुर्नसगठन, एकीकरण, विस्तार एवं संविलयन इत्याादि दशाओं में वित्तीय प्रबन्धक की भूमिका प्रमुख होती है। संगठन के दिन–प्रतिदिन के कार्य संचालन में वित्तीय प्रबन्धन मात्र दायित्वों के भुगतान हेतु समुचित संसाधन की उपलब्धता पर ध्यान केन्द्रित करता है।

परम्परागत विचारधारा के अन्तर्गत कोषों के एकत्रीकरण हेतु वित्तीय प्रबंधन प्रयास करता था कोषों की व्यवस्था किन शर्तों पर तथा किन स्रोतों से की जाय। कोषों के प्रभावपूर्ण उपयोग तथा आवंटन के संदर्भ में वित्तीय प्रबन्ध ाक के पास किसी भी प्रकार के अधिकार नहीं थे। अर्थात पारम्परिक विचारध ाारा निवेशक दृष्टिकोण (Invester's approach) का पोषण करती है। इसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध प्रबन्ध कार्य से न होकर, विनियोजकों बैकों एवं वित्तीय संस्थाओं से होता था।

वस्तुतः परम्परागत विचारधारा के अभ्युदय के उपरान्त ही वित्तीय प्रबन्ध एक नियोजित संगठित एवं वैज्ञानिक अध्ययन की विषयवस्तु बन सका, इसके पूर्व प्रबन्धकीय कार्य हेतु अनुभव भूल एवं सुधार (Trial and error) अर्न्तमन की अभिप्रेरणा का प्रयोग किया जाता था, अर्थात हम परम्परागत विचारधारा को वित्त प्रबन्ध के क्षेत्र में मील के पत्थर की संज्ञा दे सकते हैं।

पारम्परिक विचारधारा की सीमाएँ (Limitations of traditional approach)

वित्त कार्य की परम्परागत विचारधारा वस्तुतः वित्तीय प्रबन्धन की विषय वस्तु को समग्रता एवं वैज्ञानिकता प्रदान करती है। किन्तु फिर–भी इसकी प्रमुख सीमाएँ निम्न हैं:–

1. **कोषों के संकलन तक सीमित** – परम्परागत विचारधारा के अन्तर्गत वित्त कार्य मात्र कोषों के संकलन एवं अभिवृद्धि तक ही सीमित था,

वित्तकार्य मात्र विनियोजक दृष्टिकोण का पोषक था, इसका निर्णयन की प्रक्रिया से कोई लेना देना–नहीं था।

2. **नैत्यक प्रबन्ध की उपेक्षा** – परम्परागत विचारधारा के अन्तर्गत वित्त कार्य मात्र कोषों के संकलन तक सीमित होने के कारण संगठन के अन्तर्गत कोषों के प्रयोग एवं नैत्यक (Routine) प्रबन्ध की पूर्णरूपेण उपेक्षा की जाती है।

3. **दीर्घकालीन दृष्टिकोण** – इस विचारधारा के अन्तर्गत संगठन की दीर्घकालीन समस्याओं पर अधिक ध्यान दिया जाता है। अल्पकालीन समस्याओं जैसे कार्यशील पूँजी प्रबन्धन की उपेक्षा की जाती है।

4. **आकस्मिक प्रक्रिया** – इस विचारधारा के अनुसार वित्त कार्य एक आकस्मिक प्रक्रिया है। जब कि संगठन के अन्तर्गत वित्त कार्य एक अनवरत प्रक्रिया है।

वस्तुतः विकास की प्रारम्भिक अवस्था में वित्तीय प्रबन्धन के क्षेत्र में पारम्परिक विचारधारा की प्रधानता थी। इस विचारधारा को मूर्तरूप देने का श्रेय 1897 में लिखित गिनीज की पुस्तक (Corporation finance) को जाता है। इस विचारधारा को पुष्ट करने हेतु 1910 में मीड द्वारा लिखित पुस्तक (Corporation finance) मील का पत्थर साबित हुई।

2.3.2 आधुनिक विचारधारा (Modern Concept)

परम्परागत विचारधारा 1950 के दशक तक प्रचलित रही किन्तु द्वितीय विश्व युद्ध (1939–45) के पश्चात वैश्विक अर्थव्यवस्था में आये नवीन ध्रुवीकरण एव युद्धोत्तर काल में विनाश हो चुकी अर्थव्यवस्थाओं के पुर्नगठन एवं विकास की सम्भावनाओं को तलाशने हेतु आधुनिक विचारधारा का अभ्युदय हुआ। आधुनिक विचारधारा के अन्तर्गत कोषों की प्राप्ति के साथ–साथ कोषों के प्रयोग तथा निर्णयन सम्बन्धी कार्यों में वित्त प्रबन्धन की सक्रिय सहभागिता सुनिश्चित हो गयी।

इजरा सोलोमन के शब्दों में "परम्परागत विचारधारा कोषों के साधनों पर अधिक बल देती थी। जिसका सम्बन्ध विशिष्ट प्रक्रियात्मक ब्योरे या विस्तृत विवरण से होता था। अब नवीन व्यापक व्याख्या के अन्तर्गत कोषो के

अनुकूलतम संकलन, उपयोग, एवं आवंटन की दिशा में विवेकपूर्ण नीति निर्धारण पर अधिक बल दिया जाता है।

वस्तुतः वित्तीय प्रबन्धन की आधुनिक विचारधारा के अन्तर्गत कोषों के प्रभावपूर्ण आवंटन (Efficient allocation of funds) पर अधिक ध्यान दिया जाता है। वित्तीय प्रबन्धक की नवीन भूमिका में उसे कोषों के विवेकपूर्ण उपयोग हेतु निम्न तीन प्रश्नों के उत्तर ढूँढ़ने पड़ते हैं।

1 संगठन का आकार क्या होना चाहिए, तथा इसके विकास की तीव्रता क्या होनी चाहिए?

2. संगठन की सम्पत्तियों का सृजन किस रूप में होना चाहिए?

3. संगठन के दायित्वों का अनुपात क्या होना चाहिए?

वस्तुतः उक्त तीनों प्रश्न वित्तीय प्रबन्ध के तीन निर्णयों को प्रभावित करते हैं। (i) विनियोग निर्णयन (ii) वित्त निर्णयन (iii) लाभांश निर्णयन।

विशेषताएँ

आधुनिक विचारधारा की कतिपय विशेषताएॅ निम्नवत हैं :–

1. वित्तीय प्रबंधन की आधुनिक विचारधारा विश्लेषणात्मक एवं व्यापक है। इसके अन्तर्गत कोषों की प्राप्ति के साथ ही उनके प्रभावपूर्ण उपयोग पर भी बल दिया जाता हैं।

2. इसके अन्तर्गत सामान्य एवं विशिष्ट अध्ययन, विवेकपूर्ण एवं तकनीकी आर्थिक विश्लेषण, सांख्यिकीय वगमितीय विश्लेषण के आधार पर विवेकपूर्ण निर्णय लिये जाते हैं।

3. आधुनिक विचारधारा के अन्तर्गत, वित्त कार्य एक आवश्यक एवं अनवरत प्रक्रिया हैं।

4. वित्त कार्य की आधुनिक विचारधारा के अन्तर्गत कोषों की प्राप्ति एवं उपयोग के मध्य एक सूत्रता होने के कारण बेहतर व्यावसायिक समन्वय की स्थापना सम्भव हो पाती है।

2.3.3 वित्त कार्य की परम्परागत एवं आधुनिक विचारधारा में अन्तर

1. वित्त कार्य की परम्परागत विचारधारा वर्णनात्मक (Descriptive) तथा संकुचित (Narrow) है। जबकि आधुनिक विचारधारा के अन्तर्गत विश्लेषणात्मक (Analytical) एवं व्यापकता के लक्षण विद्यमान हैं।

2. परम्परागत विचारधारा के अन्तर्गत वित्त कार्य यत्रतत्रिक (Sporadic) कार्य है जब कि आधुनिक विचारधारा के अन्तर्गत वित्तीय प्रबन्धन कार्य नियमित (Regular) तथा सतत (Continuous) प्रक्रिया है।

3. परम्परागत विचारधारा के अनुसार मात्र कोषों के संग्रह पर बल दिया जाता है जब कि नवीन विचारधारा कोषों के संग्रहण के साथ–साथ कोषों के समुचित उपयोग पर भी बल देती हैं।

4. परंम्परागत विचारधारा के अन्तर्गत वित्तीय प्रबन्धक की निर्णयन में कोई भूमिका नहीं होती है जब कि आधुनिक विचारधारा के अनुसार वित्त प्रबन्धक की निर्णयन में महती भूमिका होती है।

5. परम्परागत विचारधारा वित्त कार्य के अन्तर्गत वित्त के दीर्घ कालीन कोष प्रबन्धन (Long term Fund Management) पर अधिक बल देती है। जब कि आधुनिक विचारधारा अल्पकालीन कोष प्रबन्धन (Short term Fund Management) पर अधिक बल देती है।

6. परम्परागत विचारधारा संगठन तथा उसके आन्तरिक प्रबन्धन के प्रति बाह्य पक्ष के दर्षष्टिकोण की पक्षधर है (Outsider looking in approach) जब कि आधुनिक विचारधारा संगठन तथा उसके प्रबंधन के प्रति आन्तरिक पक्ष के दृष्टिकोण की पक्षधर है (Insider looking in approach)

2.4 वित्त कार्य का संगठन (Organisation of Finance Function)

वित्त कार्य के संगठन से अभिप्राय संगठन के समस्त उत्तरदायित्वों, कार्यो व अधिकारों को विभिन्न विशेषज्ञों के मध्य कार्य विभाजन से है।

लघु उपक्रमों में वित्त कार्य का संचालन स्वयं संगठन के स्वामी द्वारा किया जाता है। जब कि वृहद आकार के संगठनों में वित्त कार्य के संचालन हेतु संगठन की आवश्यकता होती है। संगठन के कम्पनी स्वरूप के अन्तर्गत स्वामित्व एवं प्रबन्धन के मध्य पृथक्करण होता है अतः प्रबन्धन हेतु अलग संगठन की आवश्यकता होती है। इसे हम निम्न रूप से प्रस्तुत कर सकते हैं।

वित्त कार्य हेतु संगठनात्मक संरचना

(Organisational structure of finance function)

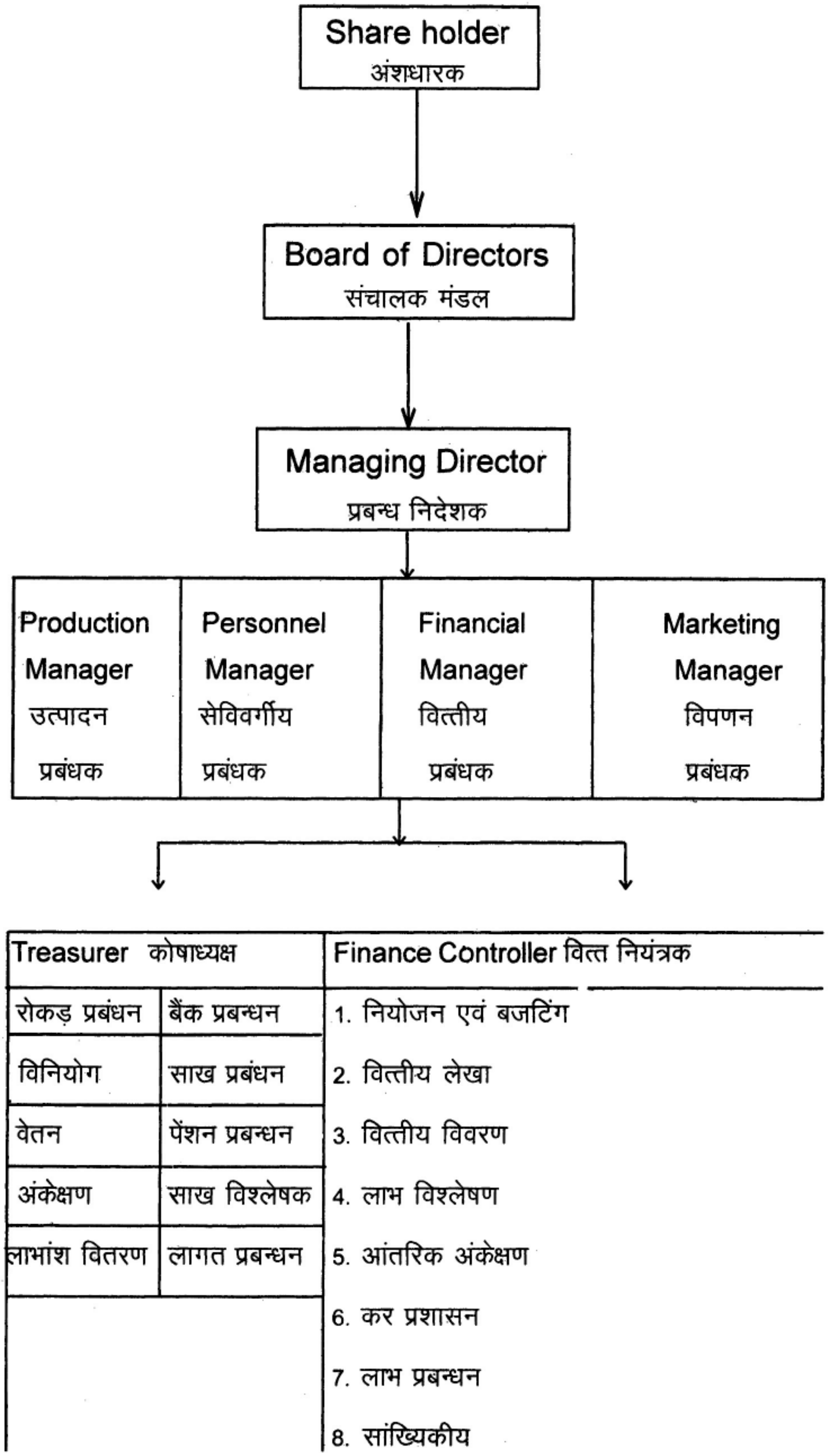

2.4.1 वित्त समिति (Finance Committee)

किसी भी आर्थिक संगठन में नियोजन एवं नियंत्रण का कार्य मात्र प्रबंध संचालक द्वारा नहीं पूर्ण किया जा सकता अतः संचालक मण्डल एवं प्रबंध संचालक के मध्य एक कड़ी के रूप में वित्त समिति (Finance Committee) का गठन किया जाता है। इसके अंतर्गत संचालक मण्डल के कतिपय सदस्य अथवा उनके प्रतिनिधि तथा विभिन्न विभागों के अध्यक्ष पदेन सदस्य होते हैं,प्रबन्ध संचालक प्रायः वित्त समिति का पदेन अध्यक्ष होता है। वित्त समिति द्वारा वित्तीय नियोजन एवं नियंत्रण हेतु संचालन मंडल को परामर्श दिया जाता है। वस्तुतः यह एक परामर्श दात्री समिति है। नीतियों के क्रियान्वयन में वित्त समिति की भूमिका नगण्य होती है।

2.4.2 कोषाध्यक्ष (Treasurer)

कोषाध्यक्ष शब्द कोष + अध्यक्ष दो शब्दों के मेल से बना है। इसका शाब्दिक अर्थ कोष के अध्यक्ष से है। वर्तमान परिवेश में कोषाध्यक्ष की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। निजी एवं सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों के संस्थानों में इसकी नियुक्ति अनिवार्य रूप से की जाती है। वस्तुतः वित्त प्रबंधक के अधीनस्थ सहयोगियों में कोषाध्यक्ष का महत्वपूर्ण स्थान होता है। बड़े औद्योगिक संगठनों में वित्त कार्य के सफल संचालन हेतु वित्त नियंत्रक एवं कोषाध्यक्ष दोनों की नियुक्ति की जाती है। वर्तमान समय में कोषाध्यक्ष रोकड़ एवं बैंक प्रबन्धन, विनियोग तथा साख प्रबंधन, वेतन व पेंशन प्रबन्धन, अकेंक्षण तथा साख विश्लेषण एवं लाभांश वितरण प्रबंधन तथा लागत प्रबंधन आदि कार्यों का सम्पादन नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण करता हैं।

सामान्य तौर पर कोषाध्यक्ष के कार्यक्षेत्र में निम्न बिन्दुओं को सम्मिलित किया जा सकता है :–

1.0 वित्त की व्यवस्था (Arrangement of Finance) – उद्यम की आवश्यकता के अनुरूप वित्त का प्रावधान करके नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन, एवं प्रतिस्थापन का कार्य कोषों की व्यवस्था करके किया जाता है।

1.1 वित्तीय नियोजन (Financial Planning)– वित्तीय नियोजन का आशय वित्तीय पूर्वानुमान से है। इसके अन्तर्गत फर्म के लिए आवश्यक रोकड़ प्राप्तियों एवं भुगतानों का पूर्वानुमान लगाया जाता है। कोषाध्यक्ष इस तथ्य का भी पूर्वानुमान लगाता है कि संगठन के लिए किस सीमा तक ऋणों की आवश्यकता है।

1.2 विनियोजन से सम्बन्ध (Relation with Investors) – वृहद संगठनों में पूँजी का प्रमुख आधार प्रतिभूतियाँ होती हैं। प्रतिभूतियों के विक्रय हेतु आवश्यक बाजार की उपलब्धता सुनिश्चित करने हेतु कोषाध्यक्ष विनियोजकों से सम्बन्ध स्थापित करता है। ताकि कम्पनी की अंशपूंजी सहजतापूर्वक संग्रहीत की जा सके। इसके साथ ही कोषाध्यक्ष कम्पनी की अल्पकालिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अल्पकालीन ऋणों की व्यवस्था भी करता है।

1.3 विनियोग (Investments) – कम्पनी की पूँजी का सर्वोत्तम एवं लाभदायी विनियोजन करना तथा पेंशन आदि के भुगतान हेतु विनियोग नीतियों का निर्धारण करना आदि कार्य कोषाध्यक्ष द्वारा सम्पादित किये जाते हैं।

1.4 रोकड़ प्रबन्धन (Cash Management)– संगठन की ओर से बैंकों में खाते खोलकर प्राप्त रोकड़ सम्बन्धित खातों में जमा कराना, तथा दिन–प्रतिदिन होने वाले नकद व्यवहारों का लेखा जोखा करके धनराशि बैंकों में जमा कराना, रोकड़ प्राप्ति एवं भुगतान की उचित विधि का निर्माण करके तदनुसार आगम–निगम की व्यवस्था करना एवं निर्धारित समय के भीतर उधार धनराशि की वसूली सुनिश्चित करना कोषाध्यक्ष का महत्वपूर्ण कार्य होता है।

1.5 उधार एवं संग्रहण (Credit and Collection) – प्रत्येक कम्पनी कुछ न कुछ मात्रा में उधार लेन–देन अवश्य करती है। इसके लिए ग्राहकों की भुगतान क्षमता का आकलन करके उधार सौदों की व्यवस्था करना एवं निर्धारित समय के भीतर उधार धनराशि की वसूली सुनिश्चित करना कोषाध्यक्ष का महत्वपूर्ण कार्य होता है।

1.6 बीमा (Insurance) – कोषाध्यक्ष कम्पनी की सम्पत्तियों का रखवाला (Custodian) होता है अतः कम्पनी की चल–अचल सम्पत्तियों की सुरक्षा हेतु

पर्याप्त मात्रा में बीमा की व्यवस्था करना कोषाध्यक्ष का नैतिक कर्तव्य होता है।

2.4.3 वित्त नियंत्रकं (Finance Controller)

वित्त नियंत्रक शब्द से ही वित्त नियंत्रक के कार्य ध्वनित होते है। वस्तुतः वित्त नियंत्रक संगठन के कोषों का नियन्त्रण कर्ता एवं सजग प्रहरी (Watch dog) होता है। इसका प्रमुख कार्य इस बात का सुनिश्चियन होता है कि कम्पनी द्वारा व्यय की जाने वाली धनराशि उचित रीति से एवं नियमानुसार व्यय की जाय, तथा व्यय की जाने वाली राशि का प्रतिकर कम्पनी को प्राप्त हो रहा है।

वर्तमान सूचना तकनीकी युग में वित्त नियंत्रक आँकड़ो के संग्रहण एवं विश्लेषण के माध्यम से निश्चयीकरण का केन्द्र बिन्दु (Central place of decision making) बन गया है।

सामान्य तौर पर वित्त नियंत्रक के कार्यों को निम्न प्रकार से सूचीबद्ध किया जा सकता है।

1. प्रचलित लेखाँकन पद्धतियों में से अनुकूल लेखाँकन पद्धति का निध ारिण एवं संचालन करना।
2. लागत नियंत्रण हेतु संगठन के प्रत्येक स्तर पर प्रयास करना।
3. बजट पूर्वानुमान एवं निर्माण तथा पूर्वानुमानों के आधार पर भावी नियोजन की रूपरेखा तैयार करना।
4. कर सम्बन्धी दायित्वों का निर्वहन करना।
5. संगठन के नियमित अंकेक्षण की व्यवस्था करना।
6. आन्तरिक अंकेक्षण के माध्यम से आन्तरिक नियंत्रण की स्थापना करना।
7. वित्तीय विवरणों (लाभ हानि खाता, चिट्ठा) का निर्माण एवं वित्तीय प्रतिवेदनों को तैयार करना एवं उच्च प्रबन्धन के समक्ष रखना।
8. महत्वपूर्ण सांख्यिकीय लक्ष्यों एवं आकड़ों का संकलन एवं विश्लेषण।

9. कार्य निष्पादन का मूल्यांकन एवं विश्लेषण।

10. वित्तीय अनुसंधान का आयोजन एवं समुचित व्यवस्था करना। वित्त नियंत्रक भी भूमिका के बारे में कोहेन एवं राबिन्सन ने अपने विचार निम्नवत प्रस्तुत किये हैं–

" नियंत्रकों की नवीन भूमिका के बारे में यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि कतिपय कम्पनियों के प्रबन्ध दल में वह ही ऐसा व्यक्ति है जो व्यवसाय के सन्दर्भ में अध्यक्ष अथवा प्रबन्ध संचालक से भी अधिक ज्ञान रखता है।"

2.5 अभ्यास प्रश्न

1. वित्त कार्य से आप क्या समझते हैं इसके बारे में विभिन्न विचारधाराओं का उल्लेख कीजिए।

2. एक उद्यम में वित्त कार्य किस प्रकार संगठित किया जा सकता है। वित्त अधिकारियों द्वारा कौन से कार्य सम्पादित किये जाने चाहिए।

3. वित्त कार्य की पारम्परिक एवं नवीन विचारधाराओं में अन्तर बताइये।

2.6 लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer type questions)

1. वित्त कार्य से आप क्या समझते हैं?

   What do you mean by finance function?

2. वित्त समिति क्या है?

   What is finance committee?

3. वित्त कार्य में कोषाध्यक्ष की भूमिका का वर्णन कीजिए।

   Describe the role of treasurer in finance function.

4. 'वित्त नियंत्रक' पर टिप्पणी लिखिए।

   Write a note on "Finance Controller"

5. वित्त कार्य की आधुनिक विचारधारा पर टिप्पणी लिखिए।

   Write a note on modern concept of Finance Function?

2.7 सारांश

वस्तुतः किसी भी व्यावसायिक संगठन में वित्त कार्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य माना जाता है। उत्पादन के तत्वों (श्रम, मशीन, सामग्री, धन, बाजार एवं प्रबंध) में पूँजी का प्रबन्धन सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है। कुशल पूँजी प्रबन्धन से हम संगठन को उन्नति के मार्ग पर ले जा सकते हैं किन्तु एक अकुशल वित्तीय प्रबंधन संगठन के अस्तित्व को मटियामेट कर सकता है। वित्त कार्य के सम्बन्ध में प्रचलित दो विचारधाराओं (यथा पारम्परिक विचार-धारा तथा आधुनिक विचारधारा) में वर्तमान समय में आधुनिक विचारधारा प्रासंगिक है क्योंकि कोषों के एकत्रीकरण के साथ ही कोषों के समुचित उपयोग सम्बन्धी अधिकार भी वित्त प्रबन्ध को आधुनिक विचारधारा के अन्तर्गत प्रदान किये गये हैं। वस्तुतः धन कमाने वाला व्यक्ति ही धन का समुचित एवं मितव्ययी उपयोग कर सकता है।

इकाई– 3 वित्तीय पूर्वानुमान (Financial Forecasting)

इकाई की संरचना

3.1 उद्देश्य

3.2 वित्तीय पूर्वानुमान परिचय

3.3 विशेषताएँ

3.4 वित्तीय पूर्वानुमानों की उपादेयता

3.5 वित्तीय पूर्वानुमान के मूलतत्व

3.6 वित्तीय पूर्वानुमान की तकनीकें

3.6.1 प्रक्षेपित वित्तीय विवरण

3.6.2 रोकड़ बजट

3.6.3 अनुरूपण

3.6.4 रेखीय एवं बहुमुखी प्रतीप्रगमन

3.6.5 सूक्ष्म ग्राह्यता विश्लेषण

3.7 सारांश

3.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

3.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप यह समझ सकेंगे कि –

– वित्तीय पूर्वानुमान क्या है? इसको कैसे परिभाषित कर सकते हैं?

– वित्तीय पूर्वानुमान की विशेषताएं क्या हैं?

– व्यवसाय उद्योग में वित्तीय पूर्वानुमान की उपादेयता क्या है।

– वित्तीय पूर्वानुमान करने के मूल तत्व क्या है अर्थात किन तत्वों के आध ार पर हम वित्तीय पूर्वानुमान लगा सकते हैं?

– वित्तीय पूर्वानुमान की प्रचलित तकनीकें क्या हैं? यहाँ हम केवल प्रक्षेपित वित्तीय विवरण रोकड़ बजट तकनीक का विवेचन करेंगे चूंकि यही विधियाँ प्रबन्ध से प्रत्यक्षरूप में सम्बन्धित हैं।

3.2 परिचय

वित्तीय पूर्वानुमान (Financial Forecasting)

किसी भी संगठन में वित्त की उपादेयता निर्विवाद है, भावी वित्तीय आवश्यकताओं का पूर्वानुमान वित्तीय पूर्वानुमान कहलाता है। वित्तीय पूर्वानुमान एक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत कोष प्रवाह विवरणों, भूतकालीन लेखों, वित्तीय अनुपातों इत्यादि के आधार पर भावी वित्तीय दशाओं का निरूपण किया जाता है। इसके अन्तंगत सम्भाव्य रोकड़ अन्तर्वाहों (Inflows) तथा रोकड़ बहिर्वाहों (Outflows) का आंकलन किया जाता है।

वास्तविक अर्थों में वित्तीय पूर्वानुमान, सम्भाव्य घटनाओं का आंकलन है जिसके माध्यम से संगठन की भावी योजनाओं को मूर्त रूप देने में सहायता मिलती है।

लुइस ए. एलेन के शब्दों में "पूर्वानुमान एक ऐसा व्यवस्थित प्रयास है, जिसके द्वारा ऑकड़ों से निष्कर्ष निकालकर भविष्य की छानबीन की जाती है।"

3.3 विशेषताएँ

वस्तुतः वित्तीय पूर्वानुमान भावी वास्तविकताओं के लिए अनुमान होते हैं। ये अनुमान भूतकालीन घटनाओं के सांख्यिकीय विश्लेषण पर आधारित होते हैं। संक्षेप में वित्तीय पूर्वानुमान की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं ।

1. वित्तीयपूर्वानुमान भावी घटनाओं अथवा परिस्थितियों से सम्बन्धित होते हैं।

2. इनके अर्न्तगत भूतकालीन घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में वर्तमान परिस्थितियों में होने वाले परिवर्तनों को ध्यान में रखा जाता है।

3. वित्तीय पूर्वानुमानों का निर्माण पिछले आँकड़ों एवं विगत स्थितियों को दृष्टिगत रखकर किया जाता है।

4. वित्तीय पूर्वानुमान का निर्माण किसी वैज्ञानिक रीति अथवा निर्धारित सांख्यिकीय विश्लेषण के आधार पर किया जाता है।

3.4 वित्तीय पूर्वानुमानों की उपादेयता (Utility of Financial Forecasting)

प्रत्येक संगठन में वित्त जीवन दायी रक्त के समान होता है वित्तीय पूर्वानुमान के अन्तर्गत संगठन की भावी वित्तीय आवश्यकताओं का निर्धारण किया जाता है। आवश्यकता से अधिक अथवा कम मात्रा में लगाया गया वित्तीय पूर्वानुमान संगठन के लिए घातक हो सकता है। अतः संतुलित पूर्वानुमान संगठन के लिए अत्यन्त आवश्यक होता है। प्रायः वित्तीय पूर्वानुमानों से संगठन को निम्नलिखित लाभ होते हैं।

1. **रोकड़ भोशों का अनुकूलतम उपयोग (Optimum use of Cash Balances)** – वित्तीय पूर्वानमानों के द्वारा संगतन में स्थित रोकड़ शेषों का अनुकूलतम प्रयोग किया जा सकता है। वित्तीय पूर्वानुमानों के अभाव में व्यवसाय की निष्क्रय रोकड़ सक्रिय नहीं की जा सकती।

2. **उच्च साख क्षमता (High Credit Capacity)** – वित्तीय पूर्वानमानों के द्वारा संगठन में उच्च श्रेणी की साख क्षमता का सृजन होता है। नियोजित पूर्वानमान बैंकों अथवा वित्तीय संस्थाओं से ऋण प्राप्त करने में सहायक होते हैं, वस्तुतः वित्तीय पूर्वानुमानों के माध्यम से बैंकों को संगठन की वित्तीय आवश्यकताओं की मात्रा समय एवं लाभदेयकता तथा तरलता सम्बन्धी अध्ययन करने में सहायता मिलती है।

3. **वित्तीय क्रियाओं पर नियंत्रण (Control on Financial Activities)**- वित्तीय पूर्वानुमान के माध्यम से संगठन की वित्तीय क्रियाओं पर नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है। इसके माध्यम से रोकड़ स्तर के निष्पादन प्रमाप निर्धारित करके वास्तविक निस्पत्ति से तुलनात्मक परिणामों का मूल्यांकन किया जा सकता है।

4. **वित्तीय सहायता की जॉच (Verification of Financial Assistance)** – वित्तीय पूर्वानुमानों के माध्यम से संगठन की वित्तीय सहायता का मूल्यांकन किया जा सकता है। वस्तुतः वित्तीय पूर्वानुमानों के निर्धारण न करने पर संगठन के अन्तर्गत कृत कार्योंके पश्चातवर्ती काल में परिवर्तित करना कठिन होता है।

5. नवीन उपक्रम की स्थापना (Establishment of New Enterprises)– वित्तीय पूर्वानुमान का आकलन नवीन उपक्रम की स्थापना हेतु करना अत्यन्त आवश्यक होता है। बाजार में वस्तुओं अथवा सेवाओं की माँग के पूर्वानुमानों के आधार पर उत्पादन इकाई का आधार, क्षेत्र एवं बिक्री का लक्ष्य निर्धारित किया जाता है। इसके साथ ही मूल्यों एवं लागतों को पूर्वानुमानित करके संगठन की आर्थिक क्षमता का मूल्यांकन किया जाता है।

6. वित्तीय नियोजन में सहायक (Helpful in Financial Planning) – वित्तीय नियोजन हेतु वित्तीय पूर्वानुमानों की अत्यन्त आवश्यकता होती है। वस्तुतः वित्तीय आयोजन की समस्त प्रक्रियाओं का आधार वित्तीय पूर्वानुमान ही होता है। पूँजी ढाँचे का निर्माण, पूँजीकरण की राशि, एवं ऋण क्षमता अनुपात का निर्धारण इत्यादि वित्तीय पूर्वानुमानों के आधार पर ही किये जाते हैं।

3.5 वित्तीय पूर्वानुमान के मूल तत्व (Basic Elements of Financial Forecasting)

वित्तीय पूर्वानुमान के मूल तत्व निम्नलिखित होते हैं।

1. आधार (**Basis**) वित्तीय पूर्वानुमानों का आधार विशेषज्ञों अथवा सूचना एजेन्सियों द्वारा प्रकाशित विश्वस्त सूचनाएं होती हैं, वित्तीय पूर्वानुमानों के निर्माण हेतु आन्तरिक एवं वाह्य दो प्रकार की सूचनाओं की आवश्यकता होतीं है। आन्तरिक सूचनाएँ संगठन की क्रियाओं से उपलब्ध हो जाती है किन्तु बाह्य सूचनाएँ शासकीय, अर्द्धशासकीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सूचना एजेन्सियों के माध्यम से प्राप्त होती हैं।

2. **अवधि (Period)** – वित्तीय पूर्वानुमान, अल्पकालीन, मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन हो सकते हैं। अल्पकालीन पूर्वानुमान एक वर्ष अथवा कम अवधि के होते हैं। दीर्घकालीन पूर्वानुमान 5 वर्ष या उससे अधिक अवधि हेतु होते हैं। एक वर्ष से अधिक एवं 5 वर्ष से कम अवधि वाले पूर्वानुमान मध्यकालीन पूर्वानुमान कहलाते हैं।

3. **नवीनतम सूचनाए (Latest Information)**–वित्तीय पूर्वानुमान केवल भूतकालीन सूचनाओं पर आधारित न होकर बल्कि वर्तमान एवं नई सूचनाओं

पर आधारित होने चाहिए। नवीनतम सच्नाओं के अभाव में पूर्वानुमान वास्तविक से परे होते हैं।

4. **प्रबन्धकीय सूचना तकनीक (Management Information Technique)** – व्यावसायिक संगठन के अन्तर्गत आँकड़ों के संकलन, विश्लेषण तथा सम्प्रेषण की एक सुव्यवस्थित सूचना प्रणाली विकसित की जानी चाहिए। जिसके माध्यम से आन्तरिक एवं बाह्य सूचनाओं का अनवरत संकलन एवं सम्प्रेषण सुनिश्चित किया जा सके। प्रबन्धकीय सूचना प्रणाली में सलग्न कार्मिकों का प्रशिक्षित होना आवश्यक होता है।

5. **इलेक्ट्रानिक माध्यमों का प्रयोग (Use of Electronic media)** – संगठन की सूचना प्रणाली को त्वरित करने हेतु इलेक्ट्रानिक माध्यमों का प्रयोग करना आवश्यक हो चुका है। वर्तमान समय में कम्प्यूटर फैक्स इण्टरनेट, टेलीफोन, मोबाइल इत्यादि सूचना माध्यमों के प्रयोग द्वारा वित्तीय पूर्वानुमानो मे नवीनतम सूचनाओं को समाहित करके अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है।

3.6 वित्तीय पूर्वानुमान की तकनीकें (Techniques of Financial Forecasting)

सामान्य तौर पर हम पूर्वानुमान के निर्माण हेतु निम्नलिखित तकनीकों का प्रयोग करते हैं।

1. **प्रक्षेपित वित्तीय विवरण (Projected financial statement)**
2. रोकड़ बजट (Cash Budget)
3. अनुरूपण (Simulation)
4. रेखीय एवं बहुमुखी प्रतीयगमन (Linear and multiple Regression)
5. सूक्ष्म ग्राह्यता विश्लेषण (Sensitivity Analysis)

उपर्युक्त विधियों में कवल प्रक्षेपित वित्तीय विवरण रोकड बजट विधि ा प्रबन्धे प्रत्यक्षतः सम्बन्धित हैं अतः हम इस अध्याय में केवल उक्त दोनों विधि ा का अध्ययन करेंगें।

3.6.1 प्रक्षेपित वित्तीय विवरण (Projected Financial Statement)

प्रक्षेपित वित्तीय विवरण वे विवरण हैं जो भावी प्रभावों को अभिव्यक्त करने हेतु भावी अवधि के लिए बनाये जाते हैं। इन विवरणों के माध्यम से आगम लागत, लाभ, कर कोषों के उपयोग, एवं स्रोत लाभाशों इत्यादि के विषय में पूर्वानुमान प्रस्तुत किये जाते हैं। इन विवरणों को तैयार करने हेतु कोई ठोस आधार व नियम नहीं है। इसके निर्माण हेतु आकडे भूतकालीन तथ्यों पर आधारित होते हैं। इन विवरणों के अन्तर्गत प्रक्षेपित आय विवरण तथा प्रक्षेपित आर्थिक चिट्ठा सम्मिलित किया जाता है।

1. **प्रक्षेपित आय विवरण (Projected Income Statement)** – प्रक्षेपित आय विवरण का निर्माण पूर्वानुमानित अवधि के लिए सम्भाव्य विक्रय के आध ार पर किया जाता है। सम्भाव्य विक्रय मात्रा का अनुमान आर्थिक शोध एवं विश्लेषण, बाजार सर्वेक्षण, प्रतिस्पर्धी संस्थानों द्वारा किये जाने वाले विक्रय अथवा अनुमानित विक्रय के आधार पर किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत विक्रीत माल की लागत, विक्रय लागत, प्रशासनिक व्यय, एवं अन्यमदों से सम्बन्धित अनुमान लगाये जा सकते हैं।

2. **प्रक्षेपित चिट्ठा (Projected Balance Sheet)** – प्रक्षेपित चिट्ठा वह विवरण पत्र है जिसके माध्यम से आगामी वर्ष के अंत में फर्म की वित्तीय स्थिति का पूर्वानुमान प्रस्तुत किया जाता है प्रक्षेपित चिट्ठे का निर्माण संगठन में तत्कालीन कार्य निष्पादन एवं प्रगति के आधार पर किया जाता है। इसके अन्तर्गत सम्भावित विक्रय आय में सम्भावित सकल लाभ की राशि घटाकर विक्रय की लागत की गणना कर ली जाती है। प्रक्षेपित चिट्ठे के निर्माण में प्रक्षेपित आय विवरण तथा संलग्न अनुसूचियों एवं बजट प्राविधानों की सहायता ली जाती है। सामान्य तौर पर प्रक्षेपित चिट्ठे के निर्माण में निम्नलिखित चरण होते हैं।

(अ) प्रत्येक सम्पत्ति में आवश्यक शुद्ध विनियोग राशि की गणना निर्धारित तिथि पर नियोजित उत्पादन स्तर को चालू रखने हेतु करनी चाहिए।

(ब) जिन दायित्वों पर किसी भी प्रकार का समझौता (Agreement) करना आवश्यक नहीं होता, उन दायित्वों की अलग सूची निर्मित कर लेना चाहिए।

(स) पूर्वानुमानित अवधि के शुद्ध मूल्य में प्रक्षेपित आय को समायोजित

करके शुद्ध मूल्य (Networth) की गणना कर लेना चाहिए।

(द) प्रक्षेतिप सम्पत्तियों की कुल कोषों (दायित्व + शुद्ध मूल्य) से तुलना करनी चाहिए। सम्पत्तियों की मात्रा कुल कोषों से अधिक होने पर अन्तर की राशि अतिरिक्त साधनों की मात्रा को व्यक्त करती है। सम्पत्तियों के साधन अर्थात दायित्वों की मात्रा अधिक होने पर यह आधिक्य न्यूनतम वॉछनीय नकद स्तर से आधिक्य को प्रकट करता है। इसके लिए अग्रिमों व ऋणों की मात्रा कम करनी चाहिए।

सीमाएँ (Limitations) - प्रक्षेपित चिट्ठा एक तिथि विशेष के कोषों की आवश्यकता को इंगित करता है। इसके अन्तर्गत वित्तीय वर्ष के दौरान होने वाले वित्तीय परिवर्तनों एवं आवश्यकताओं की पूर्णतया उपेक्षा की जाती हे।

3.6.2 रोकड़ बजट (Cash Budget)

रोकड़ की आवश्यताओं का पूर्वानुमान एवं नियंत्रण स्थापित करने हेतु रोकड़ बजट एक महत्वपूर्ण तकनीक है इसके अन्तर्गत किसी अवधि विशेष हेतु रोकड़ प्राप्ति एवं भुगतान का अनुमान लगाया जाता है। रोकड़ प्राप्ति एवं भुगतान का अनुमान लगाने हेतु व्यवसाय की दीर्घकालीन प्रकृतियों वर्तमान आवश्यकताओं एवं भावी सम्भावनाओं तथा अनुसंधान एवं विकास आदि को आधार बनाया जाता है।

गुथमैन मैन व डूगल के शब्दों में "रोकड़ बजट भावी अवधि के लिए, रोकड़ प्राप्तियों एवं भुगतान का अनुमाम है।"

अर्थात रोकड़ बजट संगठन के वित्तीय आइने के समान है। जिसके माध्यम से संगठन में वाँक्षित रोकड़ आगम एवं निर्गम का विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

रोकड़ बजट तैयार करने की पद्धतियाँ (Methods of Preparing Cash Budget) -

सामान्य तौर पर रोकड बजट तैयार करने की निम्नलिखित पद्धतियाँ हैं।

अ) प्राप्ति एवं भुगतान विधि (Receipt s and payments method)

ब) समायोजित लाभ हानि विधि (Adjustted profit and loss method)

स) स्थिति विवरण विधि (Balance sheet methods)

अ) प्राप्ति एवं भुगतान विधि – रोकड़ प्राप्ति एवं भुगतान विधि सर्वाधि ाक सरल एवं प्रचलित विधि है, इसके अन्तर्गत रोकड़ बजट को दो भागों में वर्गीकृत किया जाता है। प्रथम भाग के अन्तर्गत रोकड़ प्रात्ति के मदों, राशियों एवं समय को दर्शाया जाता है। जबकि दूसरे भाग के अन्तर्गत रोकड़ भुगतान के मदों, धनराशियों तथा भुगतान के समय का उल्लेख किया जाता है। परिचालन के माध्यम से सृजित रोकड़ राशियाँ, गैर परिचालन राशियाँ, एवं पूंजीगत सौदों से होने वाली रोकड़ प्राप्तियाँ प्रथम पक्ष की महत्वपूर्ण मदें होती हैं द्वितीय भाग के अन्तर्गत नकद क्रय, लेनदार, देयविपल, मजदूरी, वेतन, ब्याज, किराया,लाभांश, आयकर, सम्पत्तिकर, स्थायी सम्पत्तियों का क्रय इत्यादि मदों को सम्मिलित किया जाता है। प्रत्येक अवधि की आरम्भिक रोकड़ शेष में उस अवधि की सकल प्राप्तियों को जोड़कर सकल भुगतानों को घटाया जाता है, अन्तर की राशि रोकड़ की अन्तिम शेष होती हैं वर्तमान वर्ष की अंतिम बाकी अगले वर्ष की आरम्भिक बाकी होती है।

Receipt and Payment A/c

Particulars		
Receipts		
Opening balance		
Cash sales		
Collection from Debtors		
Total receipts		
Payments		
Cash purchase		
Creditors payment		
Wages		
Office expenses		
Selling expenses		
Advance Tax		
Total		
Closing Balance		

ब) समायोजित लाभ हानि विधि (Adjusted Profit and loss

method)

जिन संगठनों में रोकड़ के दीर्घकालीन पूर्वानुमान तैयार किये जाते हैं उनके लिये यह विधि उपयुक्त मानी जाती है यह विधि इस मान्यता पर आधारित है कि संगठन में होने वाले लाभों से रोकड़ की धनराषि में अभिवृद्धि होती है। इस विधि के अन्तर्गत लाभ हानि खाते द्वारा आकलित राशि के आधार पर रोकड़ अर्न्तवाह एवं रोकड़ बर्हिवाह का समायोजन करते हुए रोकड़ बजट का निर्माण किया जाता है। इस विधि को हम रोकड़ प्रवाह विवरण विधि (Cash flow statement method) के नाम से भी जानते हैं। इस विधि के अन्तर्गत रोकड बजट का निर्माण करने हेतु प्रत्याशित प्रारम्भिक रोकड़ शेष, समायोजित शुद्ध लाभ, चालू सम्पत्तियों एवं दायित्वों में परिवर्तन, पूँजीगत प्राप्तियॉ एवं भुगतान,ऋणपत्रों पर देय ब्याज,एवं लाभांश इत्यादि मदों सम्बन्धी सूचनाएं आवश्यक होती हैं। समायोजित लाभ हानि विधि में रोकड़ बजट का निर्माण करने हेतु रोकड़ के शेष में निम्नलिखित मदों को जोड़ने एवं योगफल में से कतिपय मदों के घटाने के उपरान्त रोकड़ का अन्तिम शेष प्राप्त होता है।

रोकड़ बजट नमूना

विवरण	रूपया	रूपया
प्रारम्भिक बाकी		
जोड़िये –		
अनुमानित शुद्ध लाभ		
संचय एवं प्रावधान		
उपार्जित व्यय		
ह्रास		
चालू सम्पत्तियों में कमी		
चालू दायित्वों में वृद्धि		
अंशपूजी एवं ऋण पत्रों का निर्गमन		
स्थायी सम्पत्तियों के विक्रय से प्राप्त राशि		

घटाइये –		
पूंजीगत भुगतान		
चालू सम्पत्तियों में वृद्धि		
चालू दायित्वों में कमी		
लाभांशों का भुगतान		
स्थायी सम्पत्तियों का क्रम		
अंतिम रोकड़ वाकी		

स) आर्थिक चिट्ठा विधि (Balance Sheet Method) – इस विधि से रोकड़ बजट तैयार करने हेतु बजट आदि की अन्तिम तिथि पर एक प्राक्कलित आर्थिक चिट्ठा तैयार किया जाता है इसके अन्तर्गत रोकड़ के अलावा प्रायः सभी सम्बन्धित मदों का समावेश किया जाता है, सम्पत्ति एवं दायित्व पक्ष का योग करके बाकी ज्ञात की जाती है। यही बाकी रोकड़ की अनुमानित ध नराशि होती है। दायित्व पक्ष का योग सम्पत्ति पक्ष के अधिक होने पर अंतर की राशि बैंक शेष प्रस्तुत करता है। यदि दायित्व पक्ष का योग सम्पत्ति पक्ष में कम है तो यह अंतर बैंक अधिविकर्ष से (Bank overdraft) की स्थिति को प्रकट करता है।

Estimated Balance sheet as on

Liabilities	Amount	Assets	Amount
Equality share capital		Plant	
Detentuns		Investments	
Creditors		Debtors	
Accumulated depreciation		Stock	
P&R A/c.		Cash at bank –	

रोकड़ बजट की महत्ता (Importance of Cash Budget) – कार्यशील पूँजी के नियोजन निर्देशन एवं नियंत्रण हेतु रोकड़ बजट एक शस्त्र के समान है जिसका प्रयोग करके प्रबन्ध तंत्र कोषों के समुचित एवं मितव्ययी उपयोग को सुनिश्चित कर सकता है। संगठन में उपलब्ध कोषों का अधिकतम

कुशलता उपयोग करके संगठन की लाभदेयकता में वृद्धि की जा सकती है। संक्षेप में हम रोकड़ बजट की महत्ता को निम्न रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं।

- रोकड़ बजट के माध्यम से हम संगठन की भावी योजनाओं का पूर्वानुमान लगा सकते हैं।
- रोकड़ बजट के माध्यम से संगठन की रोकड़ सम्बन्धी आवश्यकताओं का नियोजन करके आवश्यक रोकड़ की व्यवस्था अल्पकालीन माध्यमों से की जा सकती है।
- रोकड़ बजट के माध्यम से हम रोकड़ व्ययों पर आसानी से नियन्त्रण स्थापित कर सकते हैं।
- संगठन में प्रबन्धन की वित्तीय कुशलता एवं अकुशलता का मापन रोकड़ बजट के माध्यम से किया जा सकता है।

3.7 सारांश

किसी भी औद्योगिक अथवा व्यावसायिक संगठन में धन की आवश्कता होती है। धन की कितनी मात्रा कब और किस कार्य हेतु आवश्यक होगी इसी अनुमान को हम वित्तीयपूर्वानुमान कहते हैं। वित्तीय पूर्वानुमान के माध्यम से हम भावी योजनाओं पर होने वाले व्ययों का अनुमान लगा सकते हैं। इसके आधार पर रोकड़ शेषों का अनुकूलतम उपयोग किया जा सकता है इसके साथ ही संगठन को उच्च श्रेणी की साख क्षमता का सृजन किया जा सकता है। संगठन में होने वाली अनावश्यक वित्तीय क्रियाओं को रोककर धन का समुचित उपयोग सुनिश्चित किया जा सकता है।

अतः संक्षेप में हम कह सकते हैं कि वित्तीय पूर्वानुमान वित्तीय प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण अंग है इसके माध्यम से संगठन में अधिकतम लाभ की अवधारणा को साकार किया जा सकता है।

3.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. वित्तीय पूर्वानुमान से आप क्या समझते हैं?
2. वित्तीय पूर्वानुमान की प्रक्षेपित आय विवरण तथा आर्थिक चिट्ठा विधि का वर्णन कीजिए।

3. वित्तीय पूर्वानुमान की विशेषताएं क्या हैं?

4, वित्तीय पूवानुमान के मूल तत्व क्या हैं?

5. वित्तीय पूर्वानुमारों की उपादेयता पर प्रकाश डालिए।

3.9 बोध प्रश्न

1. आधुनिक निगमित जगत काआधार स्तम्भ क्या है ?

2. वित्तीय पूर्वानुमान संगठन की घटनाओं का आकलन है।

3. वित्तीय पूर्वानुमानों के माध्यम से हम रोकड़ शेषों का उपयोग कर सकते हैं।

4. रोकड़ की आवश्यकताओं का पूर्वानुमान एवं नियंत्रण स्थापित करने हेतु एक महत्वपूर्ण तकनीक है।

5. वित्तीय पूर्वानुमान के अभाव में संगठन की प्रभावित हो सकती है।

6. वित्तीय पूर्वानुमान के माध्यम से हम रोकड़ का प्रयोग सुनिश्चित कर सकते हैं।

बोध प्रश्नों के उत्तर

1. वित्त

2. भावी घटनाओं

3. अनुकूलतम उपयोग

4. रोकड़ बजट?

5. लाभ देयकता

6. मितव्ययी

इकाई– 4 मुद्रा का समय मूल्य (Time Value of Money)

इकाई की संरचना

4.1 उद्देश्य

4.2 कारण

4.3 परिचय

4.4 मुद्रा हेतु समय अधिमान

4.5 समय अधिमान दर

4.6 चक्रवृद्धि मूल्य

4.7 वार्षिकी का चक्रवृद्धि मूल्य

4.8 वर्तमान मूल्य

4.9 सारांश

4.10 बोध प्रश्न

4.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- मुद्रा का समय मूल्य क्या है?
- वित्तीय निर्गमन में मुद्रा के समय मूल्य की भूमिका क्या है?
- धन के लिए समय की वरीयता से क्या आशय है?

4.2 कारण

- **मुद्रा स्फीति (Inflation)** – स्फीतिक दशाओं में मुद्रा का मूल्य वस्तुओं तथा सेवाओं की क्रयशक्ति के आधार पर आँका जाता है। अर्थात् मुद्रा के मूल्य में गिरावट होती रहती है, हम आज जिस धन से एक कार खरीद सकते हैं 5 वर्ष पश्चात वही कार क्रय करने हेतु हमें निश्चय ही अतिरिक्त धन देना होगा।

- **जोखिम (Risk)** –मुद्रा के साथ दूसरा महत्त्वपूर्ण तथ्य जोखिम का

निहित होना है । आज हमें जो धन प्राप्त हो गया है कल प्राप्त होने की दशा में निश्चितता की मात्रा कम होगी।

- **व्यक्तिगत उपभोग वरीयता (Perfonal Consumption Preference)** – अनेक व्यक्ति तत्काल उपभोग को भविष्य में किये जाने वाले उपभोग की तुलना में वरीयता देते हैं। उदाहरण स्वरूप किसी भूखे व्यक्ति को तत्काल मिलने वाली सूखी रोटी अगले दिन मिलने वाले हलवा पूड़ी से अधिक उपयोगी है।

- **विनियोग अवसर (Investment Opportunities)** – अन्य वांछित वस्तुओं की भाँति मुद्रा का भी एक मूल्य होता है। यदि हमारे पास अभी प्राप्त होने वाले 100 रूपये तथा एक वर्ष पश्चात प्राप्त होने वाले 100 रूपये में से एक विकल्प चुनने का अवसर मिले तो हम निश्चय ही अभी प्राप्त होने वाले 100 रू. को वरीयता देंगे। जिसे हम तत्काल विनियोग करके एक निश्चित दर से ब्याज अर्जित कर सकते हैं। दूसरी ओर यदि हमें वर्तमान में मिलने वाले 100 रू. की तुलना में एक वर्ष बाद मिलने वाले 118 रू. के विकल्प मौजूद हों तो हम दूसरे विकल्प के चयन पर विचार कर सकते हैं।

4.3 परिचय

अनेक वित्तीय निर्णयों यथा सम्पत्तियों का क्रय व दायित्वों का भुगतान का प्रभाव विभिन्न समय अन्तराल तक पड़ता है । यदि हम मशीन खरीदते हैं तो हमें मशीन का भुगतान तत्काल करना पड़ता है किन्तु मशीन की उत्पादकता से हम वर्षों लाभान्वित होते रहेंगे। इसी प्रकार यदि हम बैंक से ऋण लेकर व्यवसाय में लगाते हैं तो हमारे पास मुद्रा तत्काल आ जायेगी किन्तु उसके मूल धन व ब्याज की वापसी हमें वर्षों तक करनी होगी। वस्तुतः रोकड़ अर्न्तप्रवाह (Cash inflow) एवं रोकड़ बर्हिप्रवाह (Cash outflow) के मध्य संतुलन परमावश्यक होता है।

वित्तीय निर्णयन के क्षेत्र में मुद्रा के समय मूल्य की पहचान एवं इसका समायोजन अत्यन्त आवश्यक होता है, यदि हम मुद्रा के समय मूल्य की पहचान नहीं कर पाते तो वित्तीय निर्णयन त्रुटिपूर्ण हो सकते हैं। तथा हम अधिकतम लाभ की अवधारणा को नहीं पूर्ण कर सकते।

4.4 मुद्रा हेतु समय अधिमान (Time Preference for Money)

कोई भी व्यक्ति अपने विवेकपूर्ण निर्णय के अन्तर्गत तत्काल प्राप्त होने वाले किसी धन के अवसर का परित्याग किसी भविष्य की अवधि के लिए नहीं कर सकता। प्रायः लोग तत्काल प्राप्त होने वाले धन को वरीयता देते हैं। इसी तथ्य को हम मुद्रा का समय अधिमान कहते हैं।

4.5 समय अधिमान दर (Time Preference Rate)

सामान्य तौर पर हम मुद्रा के समय अधिमान को ब्याज दर या छूट के रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं उदाहरण के लिए यदि किसी व्यक्ति के लिए समय अधिमान दर 10 प्रतिशत है तो वह अभी प्राप्त होने वाले 100 रू. की अपेक्षा एक वर्ष बाद प्राप्त होने वाले 110 रू. को वरीयता देगा। व्यक्ति की भाँति संगठन भी समय अधिमान अथवा छूटदर का प्रयोग विभिन्न वैकल्पिक वित्तीय निर्णयों में करते हैं।

समय अधिमान दर का ज्ञान किस प्रकार व्यक्ति अथवा फर्म को विनियोग निर्णयन में सहायक होते हैं। इसके माध्यम से विभिन्न समय अन्तरालों में प्राप्त होने वाली विभिन्न राशियों का मूल्यांकन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में किया जाता है जैसे यदि किसी व्यक्ति अथवा फर्म की समय अधिमान दर 10 प्रतिशत है, यदि उसको रू. 10000 की तुलना में रू.11550 एक वर्ष पश्चात प्राप्त करने का प्रस्ताव दिया जाता है तो क्या उसे यह प्रस्ताव स्वीकार कर लेना चाहिए। हाँ अवश्य ही उसे यह प्रस्ताव स्वीकार कर लेना चाहिए। वस्तुतः उसे प्राप्त होने वाली धनराषि रू. 11550 उसके द्वारा वाँछित समय अधिमान दर 10 प्रतिशत से अधिक है।

$$\text{अर्थात वाँछित प्रत्याय धनराशि} = \frac{10000 \times 110}{100} = 11000$$

$$\text{प्राप्त प्रत्याय राशि दर} = \frac{1150 \times 100}{10000} = 11.5\%$$

4.6 चक्रवृद्धि मूल्य (Compound Value)

प्रायः विनियोजक द्वारा किसी धन को एक से अधिक वर्षों के लिए

विनियोजित किया जाता है माना कि कोई विनियोजक विनियोजित राशि पर प्रति वर्ष प्रत्याय की कामना करता है, उसके द्वारा रू 100 विनियोजित करने पर

उसको प्राप्य राशि रू. $\frac{100 \times 110}{100} = 110$ एक वर्ष पश्चात होगी, किन्तु यदि विनियोजक विनियोजित धनराशि को दो या अधिक वर्षों के लिए विनियोजित करता है तो दूसरे वर्ष उसे विनियोजित राशि पर $\frac{100 \times 110 \times 110}{100 \times 100}$ = रू. 121 की अपेक्षा होगी। इसी प्रकार आगामी वर्षों में भी धनराशि विनियोजित होने पर प्राप्य राशि की गणना निम्न सूत्र के माध्यम से ज्ञात की जा सकती है।

$$S = P\left(\frac{1+R}{100}\right)^n$$

यहाँ S = विनियोजित राशि पर प्राप्त प्रत्याय या माली मूल्य का सूचक है, R – समय अधिमान या ब्याज दर प्रति वर्ष को इंगित करता है। n वर्षों की संख्या को प्रदर्शित करता है।

उदाहरण स्वरूप यदि किसी बैंक के बचत खाते में 5 प्रतिशत वार्षिक ब्याज पर रू. 1000 – 5 वर्षों के लिए जमा कराये गये। तो एक वर्ष के उपरान्त प्राप्य राशि रू. 1050 दूसरे वर्ष की समाप्ति पर रू. 1102.50 प्राप्त होंगे।

इसी प्रकार विनियोजक को 5 वर्ष के उपरान्त प्राप्य राशि की गणना उपर्युक्त सूत्र की सहायता से कर सकते हैं।

$$S = P\left(\frac{1+R}{100}\right)^n$$

$$S = 1000\left(\frac{1+5}{100}\right)^5$$

$$S = 1000 \times \frac{21}{20} \times \frac{21}{20} \times \frac{21}{20} \times \frac{21}{20} \times \frac{21}{20} = 1276.28$$

4.7 वार्षिकी का चक्रवृद्धि मूल्य (Compound Value of an annuity)

अब तक हमने एकमुश्त विनियोजित धनराशि पर एक निश्चित

अवधि के उपरान्त निश्चित प्रत्याय दर से उपलब्ध कुल परिलब्धियों के आगणन की पद्धति का अध्ययन किया, वस्तुतः यह आवश्यक नहीं कि विनियोजक सम्पूर्ण आमदनी को एक मुश्त विनियोजित करदे, बल्कि उसके द्वारा प्रतिमाह या प्रतिवर्ष एक निश्चित तिथि को एक निश्चित धनराशि का विनियोग किया जाता है। ऐसे विनियोग वार्षिकी कहलाते हैं। जैसे डाकघर का आवर्ती जमा – वार्षिकी जमा की जाने वाली धनराशि एवं समय निश्चित रहता है। वार्षिकी के चक्रवृद्धि मूल्य की गणना करने हेतु समय एवं मूलधन को ध्यान में रखना होगा। उदाहरण यदि हम रू. 1000,10 प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर से तीन वर्षों के लिए विनियोजित करते हैं। तो प्रथम वर्ष के अंत में जमा रू. 1000 पर दो वर्षों का ब्याज प्राप्त होगा। दूसरे वर्ष के अंत में जमा रू 1000 पर 1 वर्ष का ब्याज प्राप्त होगा, इसी प्रकार तीसरे वर्ष के अंत में जमा रू. 1000 पर कोई ब्याज प्राप्य नहीं होगा, अतः प्रथम वर्ष के अंत में जमा रू. 1000 का वार्षिकी मूल्य निम्न प्रकार निकाला जायेगा।

$$S = 1000\left(\frac{1+10}{100}\right)^2$$

$$S = 1000 \times \frac{11}{10} \times \frac{11}{10} = 1210$$

दूसरे वर्ष के अंत में जमा रू. 1000 पर 1 वर्ष का ब्याज

$$\frac{1000 \times 1 \times 10}{100} = 100.4$$

$$= 1000 + 100 = 1100$$

इसी प्रकार तीसरे वर्ष के अंत में जमा रू. 1000 पर कोई ब्याज देय नहीं होगा।

अतः रू 1000 प्रति वर्ष के अंत में तीन वर्षों तक जमा करने पर कुल वार्षिकी की चक्रवृद्धि मूल्य होगा। 1210 + 1100 + 1000 = रू. 3310

हम इसे निम्न ग्राफ के माध्यम से भी प्रस्तुत कर सकते हैं।

रू. 1000 वार्षिकी के चक्रवृद्धि मूल्य का प्रस्तुतीकरण

वर्ष की समाप्ति

वर्ष के अंत में 0	1	2	3
जमा	रू.1000	रू. 1000	रू. 1000

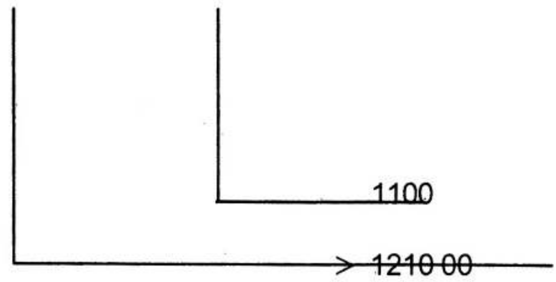

रू. 3310.00

वार्षिकी के चक्रवृद्धि मूल्य की गणना करने हेतु हम निम्न सूत्र का भी प्रयोग कर सकते हैं।

$$S = A\left[\frac{(1+i)^n - 1}{i}\right]$$

यहाँ A = एक निश्चित अवधि तक वर्ष के अंत में निश्चित जमा राशि

$$i = \frac{R}{100}$$

$$S = 1000\left[\left(1 + \frac{.10}{.10}\right)^3 - 1\right]$$

$$= 1000\left[\frac{(1.10)^3 - 1}{.10}\right]$$

$$= 1000\left[\frac{(1.331 - 1)}{.10}\right]$$

$$= 1000\left[\frac{.331}{.10}\right]$$

$$= 1000[3.31]$$

$$= 1000 \times 3.31$$

$$= 3310$$

4.8 वर्तमान मूल्य (Present Value)

वस्तुतः वित्तीय निर्णयन के क्षेत्र में मुद्रा के समय मूल्य के मापन हेतु चक्रवृद्धि मिश्रण (Compound) एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तकनीक है। इससे विनियोजक में रोकड़ अर्न्तवाह (Cash in flows) एवं रोकड़ वर्हिवाह (Cash out flow) के सम्बन्ध में निर्णयन लेने हेतु तर्क शक्ति का विकास होता है।

अर्थात ब्याज के रूप में प्राप्य धनराशि की मात्रा के आधार पर विनियोजक विनियोजन करने व न करने तथा अवधि सम्बन्धी निर्णय लेता है। उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि कोई विनियोजक समय वरीयता अथवा ब्याज दर के आधार पर ही विनियोग करके व न करने सम्बन्धी निर्णय ले सकता है। विनियोग कर्ता द्वारा वर्तमान में 1 रू. विनियोजित करने पर एक वर्ष के पश्चात उसे रू. (1+i) दो वर्ष पश्चात $(1+i)^2$ तथा तीन वर्ष के उपरान्त $(1+i)^3$ एवं n वर्ष के उपरान्त $(1+i)^n$ रू. प्राप्त होंगे। अब एक सहज प्रश्न उठता है कि विनियोजक द्वारा 1 रू. विनियोग करने पर एक वर्ष के उपरान्त, दो वर्ष के उपरान्त एवं एन वर्ष के उपरान्त तत्काल कितनी ध नराशि का परित्याग करना पड़ता है। अर्थात वर्तमान में उपलब्ध 1 रू. से विनियोजक अपनी आवश्यकता की वस्तुएं क्रय कर सकता था, किन्तु विनियोग के कारण उसे तत्काल अपनी आवश्यकता पूर्ति से वंचित होना पड़ेगा। विनियोजक द्वारा किये गये त्याग की गणना हम निम्न सूत्र के माध्यम से कर सकते हैं।

$$S = P(1+i)$$
$$P = \frac{S}{1+i}$$
$$P = \frac{1}{1.10} = Rs.0.909$$

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि समय वरीयता दर 10 प्रतिशत है तो 1 वर्ष के उपरान्त प्राप्त होने वाली धनराशि का वर्तमान मूल्य रू. 0. 909 होगा। इसी प्रकार दो वर्ष के उपरान्त प्राप्य राशि का वर्तमान मूल्य होगा।

$$S = P(1+i)^2$$
$$P = \frac{S}{(1+i)^2}$$
$$= \left(\frac{1}{1.10}\right)^2 = \frac{1}{1.21} = Rs. .0826$$

अर्थात दो वर्ष के उपरान्त प्राप्त होने वाली धनराशि का वर्तमान मूल्य रू. 0826 होगा।

4.9 सारांश

मुद्रा के वर्तमान मूल्य मापन का वित्तीय निर्णयन के क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। कोई भी विनियोजक मुद्रा के समय मूल्य मापन के आधार पर ही विनियोग करने व न करने सम्बन्धी निर्णय लेता है। वर्तमान में उपलब्ध राशि के उपभोग का परित्याग करके ही हम कोई धनराशि विनियोग करते हैं। विनियोग पर उचित प्रत्याय न प्राप्त होने की दशा में विनियोजक वर्तमान में उपभोग को वरीयता देगा। हमें वर्तमान में प्राप्त रू. 10000 एवं पाँच वर्ष के उपरान्त प्राप्त होने वाले रू. 10000 में से यदि एक विकल्प चुनना हो तो हम अवश्य ही वर्तमान में प्राप्त होने वाले रू. 10000 को वरीयता देंगे। किन्तु यदि हमें रू. 10000 पाँच वर्ष के उपरान्त 10 प्रतिशत प्रत्याय के साथ उपलब्ध हो सकते हैं तो हम पांच वर्ष के उपरान्त प्राप्त होने वाले रू. 15000 के विकल्प पर भी विचार करना होगा । पाँच वर्ष उपरान्त प्राप्त होने वाले अतिरिक्त रू. 5000 को हम मुद्रा का समय मूल्य कह सकते हैं। वस्तुतः हमारे द्वारा विनियोजित की जाने वाली कोई भी धनराशि वर्तमान में उपभोग के परित्याग का प्रतिफल होती है। अतः हमें ब्याज के रूप में अथवा लाभ के रूप में जो भी अतिरिक्त धनराशि प्राप्त होती है। उसे वर्तमान उपभोग के परित्याग के प्रतिफल स्वरूप माना जाता हैं।

4.10 बोध प्रश्न

1. मुद्रा के समय मूल्य में आप क्या समझते हैं?
2. मुद्रा हेतु समय अधिमान क्या है?
3. वार्षिकी के चक्रवृद्धि मूल्य की गणना आप किस प्रकार करेंगे?
4. वित्तीय निर्णयन के क्षेत्र में मुद्रा का समय मूल्य किस प्रकार उपयोगी है?
5. 'कोई भी विनियोग, वर्तमान में उपभोग के परित्याग का प्रतिफल है' इस कथन की व्याख्या कीजिए।
6. एक वर्ष के उपरान्त प्राप्त होने वाले रू. 600 के वर्तमान मूल्य की

गणना करें। जबकि समय वरीयता दर 5 प्रतिशत है।

7 रू 5000, 10 प्रतिशत वार्षिकं ब्याज की दर से 5 वर्षों के लिऐ विनियोजित करने पर वार्षिकी मूल्य की गणना कीजिए।

8. वर्तमान मूल्य गणना का सूत्र लिखो।

इकाई–5 पूँजी की लागत (Cost of Capital)

इकाई की संरचना

5.1 उद्देश्य

5.2 परिचय

5.2.1 अर्थ एवं परिभाषा

5.3 वर्गीकरण

5.4 पूँजी की लागत का मापन

5.4.1 ऋण पूँजी की लागत

5.4.2 शोधनीय ऋण पूँजी की लागत

5.4.3 पूर्वाधिकार अंश पूँजी की लागत

5.4.4 समता अंश पूँजी की लागत

5.5 प्रतिधारित आय की लागत

5.6 पूँजी की भारित औसत लागत

5.7 पूँजी की लागत का महत्व

5.8 वित्तीय निर्णयनं में पूँजी की लागत की भूमिका

5.9 सारांश

5.10 स्व–परख प्रश्न/अभ्यास

5.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप यह समझ सकेंगे कि –

- पूँजी एवं उसकी लागत क्या होती है?
- पूँजी की लागत को कितने वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है?
- पूँजी की लागत का मापन हम किस प्रकार कर सकते हैं?
- पूँजी की लागत के निर्धारण का महत्व क्या है?
- वित्तीय निर्णयन में पूँजी की लागत की भूमिका क्या है?

5.2 परिचय

हमारे द्वारा एकत्रित की जाने वाली पूँजी का कुछ मूल्य हमें अवश्य चुकाना पड़ता है। वह मूल्य ब्याज के रूप में हो सकता है। अथवा लाभॉश के रूप में पूँजी की लागत का अभिप्राय उस मूल्य से है जो हमें पूँजी के उपयोग के बदले चुकाना पड़ता है । पूँजी की लागत वह न्यूनतम दर होती है जिसे पूँजी पर अर्जित करना प्रबन्धकों के लिए आवश्यक होता है। जिससे पूँजी के उपभोग के मूल्य तथा उससे सम्बद्ध व्ययों की पूर्ति होती रहे?

सामान्य तौर पर हम पूँजी का एकत्रीकरण तीन प्रकार से कर सकते हैं।

1. **आत्मपूँजी या स्वत्व पूँजी (Self capital)** इसके अन्तर्गत नियोक्ता द्वारा दैनिक बचतों के माध्यम से एकत्रित पूॅजी को उद्यम में विनियोजित किया जाता है। इस पूॅजी पर नियोक्ता प्रतिफल स्वरूप लाभ प्राप्त करना चाहता है।

2. **ऋणपूँजी (Loan Capital)** – ऋणपूॅजी के अन्तर्गत नियोक्ता द्वारा परिचितों, मित्रों रिश्तेदारों बैंक, वित्तीय संस्थानों अथवा ऋणपत्रों के निगमन द्वारा पूँजी संग्रहण हेतु प्रयास किया जाता है प्रायः इस प्रकार से एकत्रित पूॅजी पर नियोक्ता को ब्याज देना पड़ता है।

3. **अंश पूँजी (Share capital)** – इसके अन्तर्गत नियोक्ता द्वारा बाजार में अपने अंशों का निर्गमन किया जाता है। जनता द्वारा उन निर्गमित अंशों को क्रय करने पर नियोक्ता के पास अंश पूॅजी के रूप में प्रचुर मात्रा में धनराशि एकत्रित हो जाती है। किन्तु अंश धारकों को प्रतिफल स्वरूप लाभाँश का भुगतान करना पड़ता है। साथ ही आँशिक तौर पर अंशधारकों के मध्य स्वामित्व का हस्तान्तरण भी हो जाता है।

5.2.1 अर्थ एवं परिभाषा

सामान्य तौर पर पूँजी की लागत का अभिप्राय संगठन के अन्तर्गत उपयोग की जाने वाली बाह्य पूँजी के उपयोग के बदले किये जाने वाले भुगतान से है। वस्तुतः पूँजी की लागत अवधारणा गत्यात्मक (Dynamic) है

न कि स्थैतिक (Static) इसका प्रयोग बहुआयामी अर्थों में किया जाता है। "पूंजी की लागत वह न्यूनतम दर होती है जिसे अर्जित करना संगठन के लिए अत्यन्त आवश्यक होता है। इस लागत को उपार्जित पूँजी की शुद्ध राशि के प्रतिशत के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है।"

सोलोमन इजरा के शब्दों में "पूंजी की लागत पूंजी व्ययों के लिए अर्जित वांछित दर होती है।

जे. जे. हेम्पटन के शब्दों में "पूंजी की लागत, प्रत्याय की उस दर को कहा जाता है जिसे किसी निवेश पर फर्म इसलिए प्राप्त करना चाहते है। जिससे बाजार में उस फर्म के मूल्य में वृद्धि हो सकें।"

एम. जे. गोर्डन के शब्दों में "पूंजी की लागत का अभिप्राय उस प्रत्याय दर से है जिसे कम्पनी को अपना मूल्य अपरिवर्तित रखने हेतु अर्जित करना आवश्यक होता है।"

"The cost of capital is a rate of return which a company must earn on an investment to maintain the value of the company". M.J. Gordan.

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि पूँजी की लागत वह दर होती है जिस पर संगठन को विनियोजकों के लिए भुगतान करना वाध्यकारी होता है। अतः संगठन का उद्देश्य पूँजी की लागत के समतुल्य प्रत्याय दर (Rate of return) प्राप्त करना होना चाहिये। न्यूनतम प्रत्याय दर के लक्ष्य को प्राप्त करके ही अंशों के बाजार मूल्य को उनके वर्तमान स्तर पर बनायें रखा जा सकता है। पूँजी की लागत की गणना निम्न सूत्र द्वारा कीं जा सकती है।

पूँजी की लागत (Cost of capital) =

$$\frac{\text{देय ब्याज या लाभांश}}{\text{प्राप्त पूँजी}} \qquad \frac{(Payable\ Interest\ or\ dividend)}{(Received\ Capital)} \times 100$$

उदाहरण स्वरूप यदि किसी संगठन की कुल पूँजी रू. 500000 हो तथा संगठन द्वारा रू. 40000 ब्याज के रूप में भुगतान किया जाता है तो पूँजी की लागत होगी।

$$\frac{40,000 \times 100}{500000} = 8\%$$

5.3 वर्गीकरण (Classification)

पूँजी की लागत का वर्गीकरण एक तकनीकी समस्या है, मुख्य तौर पर हम लागत को निम्न प्रकार वर्गीकृत कर सकते हैं।

1. पारम्परिक लागत एवं भावी लागत (Traditional cost and Future cost) – पारम्परिक लागत वह लागत होती है जिस पर भूतकालीन लेखांकन व्यवस्था में लेखों को लिपिबद्ध किया जाता है। भावी लागत वह लागत होती है जिसका पूर्वानुमान भविष्य के वर्षों के लिए किया जाता है।

2. विशिष्ट लागत एवं संयुक्त लागत (Specific cost and compound cost) – पूँजी के विभिन्न उपलब्ध वित्तीय स्रोतों को पृथक रूप से विशिष्ट लागत कहा जाता है जैसे समता अंशपूँजी, पूर्वाधिकारी अंश पूँजी एवं ऋण पत्रादि संयुक्त लागत संगठन में विनियोजित समग्र पूँजी की संयुक्त लागत होती है, इसके अन्तर्गत समस्त पूँजी लागत को सम्मिलित किया जाता है। संयुक्त लागत को सम्पूर्ण पूँजी साधनों की औसत पूँजी लागत होने के कारण भारित लागत भी कहा जाता है। पूँजी व्यय सम्बन्धी निर्णयन में भारित लागत का महत्वपूर्ण स्थान होता है।

3. औसत लागत तथा सीमान्त लागत (Average cost and marginal cost) – संगठन में विनियोजित समस्त प्रकार की पूँजी में प्रत्येक स्रोत की लागत का भारित औसत, औसत लागत कहलाती है। संगठन की पूँजी संरचना में प्रत्येक स्रोत का अनुपात भार होता है उसी के आधार पर औसत लागत की गणना की जाती है। सीमान्त लागत वह लागत होती है जिसे संगठन द्वारा नये कोषों के माध्यम से जुटाया जाता है। यह नवीन कोषों से एकत्रित पूँजी की औसत लागत होती है, विनियोग सम्बन्धी निर्णयन में सीमान्त लागत का महत्वपूर्ण स्थान होता है।

4. स्पष्ट लागत एवं अन्तर्निहित लागत (Explicit cost and Implicit cost) – स्पष्ट लागत उस छूट की दर को कहते हैं जो रोकड़ आगमनों के

वर्तमान मूल्य को रोकड़ निर्गमन (Cash outlaws) के वर्तमान मूल्य को समतुल्य करती है। व्यावहारिक तौर पर यह आन्तरिक प्रत्याय दर होती है।

अर्न्तनिहित लागत वह प्रत्याय दर होती है जो किसी विशिष्ट विनियोग प्रस्ताव को स्वीकार करने हेतु परित्यक्त अवसरों की लागत होती है इस लागत का आविर्भाव तब होता है जब संस्था उगाहे गये कोषों के वैकल्पिक प्रयोग पर विचार करती है। इसे अवसर लागत (Opportunity cost) भी कहा जाता है।

5.4 पूँजी की लागत का मापन

सामान्य तौर पर किसी कम्पनी की पूँजी लागत के मापन हेतु कोई निर्धारित कार्यविधि नहीं है। संगठन की आवश्यकताओं नीतियों एवं परिस्थितियों के अनुसार पूँजी की लागत का पूर्वानुमान लगाया जाता है। संगठन के लिए पूँजी एकत्रीकरण के विभिन्न साधनों की पूँजी लागत प्रायः भिन्न–भिन्न होती है जिसकी गणना निम्न प्रकार की जा सकती है।

5.4.1 ऋण पूँजी की लागत

वस्तुतः ऋण पूँजी संगठन की वह पूँजी होती है जो संगठन के अन्तर्गत ऋणों के रूप में आती है ऋण पूँजी की लागत वह ब्याज दर होती है जो कि संगठन द्वारा ऋणदाताओं को देय होती है वस्तुतः यह दर कम्पनी द्वारा ऋण पूॅजी के निर्गमन काल में तय की दी जाती है। ऋण पूॅजी की लागत ज्ञात करने हेतु ऋण पत्रों के निर्गमन पर होने वाले व्ययों जैसे विज्ञापन, छपाई, कमीशन, इत्यादि व्ययों को समायोजित करते हुए निर्गमन से प्राप्त शुद्ध राशि का आंकलन किया जाता है शोधन काल के आधार पर ऋण पूॅजी को दो वर्गो में विभाजित किया जा सकता है।

1. **सतत ऋण पूँजी की लागत (Cost of Perpectual Debt Capital)** – सतत ऋण पूँजी वह पूँजी होती हैं जिसका शोधन (भुगतान) प्रायः कम्पनी के जीवन काल में नहीं करना पड़ता। किसी भी उपक्रम द्वारा संगठन में ऋण पूँजी के अनुपात को स्थिर बनाये रखने हेतु सतत ऋण पूँजी का निर्गमन किया जाता है। सतत ऋण पूॅजी का शोधन कम्पनी के जीवन काल में किये

जाने की बाध्यता न होने के कारण इसे अशोधनीय ऋण पूँजी (Non Reedemable) भी कहा जाता है। इसकी गणना निम्न सूत्र के प्रयोग द्वारा की जाती है।

$$C_{DBT} = \frac{i}{P} \times 100$$

C_{DBT} = Cost of Debt before tax (कर पूर्व ऋण की लागत)

I = Amount of Annual Interest (वार्षिक ब्याज दर)

P = Principal Amount (मूल धन)

उक्त मूल्य का प्रयोग ऋण पूँजी का निर्गमन सममूल्य पर किये जाने की स्थिति में ही किया जाता है। ऋण पूँजी की निर्गमन प्रीमियम अथवा छूट पर किये जाने की दशा में निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है।

$$C_{DBT} = \frac{1}{NP} \times 100 \qquad \text{NP = (Net Proceeds)}$$

वस्तुतः NP (शुद्ध राशि) कम्पनी द्वारा प्राप्त ऋण पूँजी की वास्तविक धनराशि होती है।

उदाहरण

एक नवीन स्थापित कम्पनी द्वारा रू. 10,0000 के 12 प्रतिशत ऋण पत्रों का निर्गमन 100 रू. के सममूल्य पर किया गया। ऋण पूँजी की लागत का आकलन कीजिए, यदि ऋणपत्रों का निर्गमन 1. सममूल्य पर 2. 10 प्रतिशत की छूट पर 3. 10 प्रतिशत के प्रीमियम पर किया गया।

हल –

(i) $$C_{DBT} = \frac{I}{P} \times 100$$
$$= \frac{12 \times 100}{100} = 12\%$$

(ii) $$C_{DBT} = \frac{I}{NP} \times 100$$
$$NP = 100 - 10 = 90$$
$$= \frac{12}{90} \times 100 = 13.33\%$$

(iii) $$I = 12 \quad NP = 100 + 10 = 110$$
$$C_{DBT} = \frac{12}{110} \times 100 = 10.9\%$$

उदाहरण 2

एम्स वार्ड लिमिटेड रू. 50000 के 15 प्रतिशत ऋण पत्रों का निर्गमन सममूल्य पर करती है कर की दर 20 प्रतिशत है। ऋण पूँजी की लागत की गणना कीजिए।

$$NP = \text{Par value - floating charges}$$

$$C_{DAT} = \frac{I}{NP}(I\text{-}T)$$

$$I = \frac{50000 \times 15}{100} = 7{,}500$$

$$C_{DAT} = \frac{7.500}{50000} \times (I\text{-}20)$$

$$C_{DAT} = \frac{7500 \times .80}{50000}$$

$$= \frac{6000}{50000} \times 100 = 12\%$$

5.4.2 भोधनीय ऋणपूँजी की लागत

शोधनीय ऋण वे ऋण होते हैं जिनका भुगतान पूर्व निर्धारित अवधि के उपरांत संगठन द्वारा ऋणपत्र धारक को करना पड़ता है। शोधनीय ऋणों की पूँजी लागत ज्ञात करने हेतु देय ब्याज के साथ-साथ शोधन के समय चुकाये जाने वाले मूलधन पर भी ध्यान देना होता है। शोधनीय ऋणों का भुगतान देय तिथि पर एक मुश्त करने की दशा में ऋणपूँजी की लागत का आगणन निम्नलिखित सूत्र के माध्यम से किया जाता है।

$$C_{DBT} = \frac{I + \frac{1}{n}(Rv\text{-}NP)}{\frac{1}{2}(Rv\text{-}NP)} \times 100$$

Here, C_{DBT} = Cost of debt before tax

I = Interest Paid Annually

Rv = Redeemable value of debt at maturity time.

N.P, = Net sales proceeds from the issued debts.

N = Maturity period.

कर पश्चात ऋण पूँजी की लागत का आगणन करने हेतु निम्नलिखित सूत्र प्रयोग में लाया जाता है।

$C_{DAT} = (I-T)\ C_{DBT}$

उदाहरण 3

एक कम्पनी 10000, 10 प्रतिशत 100 रूपयें मूल्य वाले ऋण पत्रों का निर्गमन 10 प्रतिशत प्रीमियम पर करती है। ऋण पत्रों का शोधन 5 वर्षों के उपरान्त सममूल्य पर होता है। कम्पनी की कर दरें 50 प्रतिशत हैं, ऋण की लागत की गणना कीजिए।

हल –

$$C_{DBT} = \frac{100000 + \frac{1}{5}(10,00,000 - 1,100,000)}{\frac{1}{2}(10,00,000 + 1100000)}$$

$$= \frac{100000 - 20000}{10,50000} \times 100$$

$$= \frac{80000}{1050000} \times 100 = 7.6\%$$

$$C.DAT = (I - T)\, C_{DBT}$$

$$(1 - .5)\ \ 7.6\%$$

$$.5 \times 7.6 = 3.80$$

5.4.3 पूर्वाधिकार अंश पूँजी की लागत

पूर्वाधिकार अंश वे है जिन पर लाभाँश की एक निश्चित पूर्व निर्धारित दर होती है। साथ ही कम्पनी के समापन पर पूर्वाधिकारी अंशधारकों को पूँजी की वापसी में वरीयता प्राप्त होती है। लाभांश की देयता का निर्धारण निदेशक मण्डल सभा में निदेशक मण्डल द्वारा किया जाता है। संचयी पूर्वाधिकार अंशधारकों को लाभांश का भुगतान स्थगित करने पर आगामी वर्षो में होने वाले लाभों में से भुगतान करना आवश्यक होता है। किन्तु असंचयी पूर्वाधिकार अंशों की दशा में कम्पनी का लाभ कम होने पर उसे भुगतान के दायित्व से मुक्ति मिल सकती है। पूर्वाधिकारी अंश पूंजी की लागत का निर्धारण अंशों पर देय लाभांश में प्रति अंश प्राप्त शुद्ध मूल्य राशि का विभाजन करके 100 से गुणा करने के उपरान्त प्रतिशत के रूप में किया जा सकता है।

$$C_P = \frac{DP}{NP} \times 100$$

C_P = Cost of Preference Share capital

(पूर्वाधिकार अंश पूंजी की लागत)

D.P. = Preference share dividend (पूर्वाधिकार अंश लाभांश)

N.P. = Net Proceeds (शुद्ध राशि)

व्यावहारिक तौर पर पूर्वाधिकार अंशों का निर्गमन प्रीमियम अथवा छूट पर किया जा सकता है। इन अंशों के निर्गमन पर होने वाले व्ययों को निर्गमन की लागत में सम्मिलित किया जाता है। पूर्वाधिकारी अंशों के सममूल्य को आवश्यकतानुसार निम्न सूत्रों के माध्यम से समायोजित करके शुद्ध राशि (Net Proceeds) ज्ञात की जा सकती है।

1. पूर्वाधिकार अंशों का निर्गमन सममूल्य पर होने की दशा में प्राप्त शुद्ध राशि (NP)= सममूल्य (NV) – निर्गमन व्यय (IE)

2. पूर्वाधिकार अंशों का निर्गमन छूट पर होने की दशा में प्राप्त शुद्ध राशि NP = सममूल्य (NV)- छूट (D) – निर्गमन व्यय (IE)

3. पूर्वाधिकार अंशों का निर्गमन प्रीमियम पर होने की दशा में प्राप्त शुद्ध राशि (NP) – सममूल्य (PV) + प्रीमियम (P) – निर्गमन व्यय (IE)

पूर्वाधिकार अंशों की लागत निर्धारण में समायोजन हेतु कर (Tax) की धनराशि को सम्मिलित नहीं किया जाता है। क्योंकि पूर्वाधिकार अंशों पर लाभांश का भुगतान करों के भुगतान के उपरान्त किया जाता है।

उदाहरण 4

राहुल एण्ड सन्स ने 10 प्रतिशत पूर्वाधिकार अंशों का निर्गमन किया। अंशों का सममूल्य रू. 100 प्रति अंश है किन्तु निर्गमन मूल्य रूपया 80 है। निर्गमन की लागत ज्ञात कीजिए। निर्गमन मूल्य रू 120 होने की दशा में लागत क्या होगी।

हल–

1. जब निर्गमन मूल्य रू. 80 है।

$$C_p = \frac{DP}{NP} \times 100$$

$$C_p = \frac{10}{80} \times 100 = 12.5\%$$

2. जब निर्गमन मूल्य रू. 120 है।

$$C_p = \frac{DP}{NP} \times 100$$

$$\frac{10}{120} \times 100 = 8.33\%$$

5.4.4 समता अंश पूँजी की लागत (Cost of equity share Capital)

समता अंश पूंजी धारक वास्तविक अर्थों में कम्पनी के स्वामी होते हैं कम्पनी में होने वाले लाभ का अधिकतम भाग प्रायः समता अंशधारकों के मध्य वितरित करने का प्रयास निदेशक मण्डल द्वारा किया जाता है। किन्तु समता अंश पूंजी पर लाभांश की एक निश्चित दर का भुगतान प्रबन्ध के द्वारा किया जाना अनिवार्य नहीं होंता। लाभांश का भुगतान करने या न करने के सम्बन्ध में कम्पनी प्रबन्धन पूर्णरूप से स्वतंत्र है। समता अंश पूंजी पर देय लाभांश की दर अनिश्चित होने के कारण समता अंश पूंजी की लागत का आकलन करना अपेक्षाकृत कठिन होता है। किन्तु स्वाभाविक तौर पर समता अंश पूंजी को लागत रहित पूँजी (Cost free capital) नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः समता अंश धारकों द्वारा कम्पनी में विनिवेश (Investment) लाभांश के रूप में आय प्राप्त करने हेतु ही किया जाता है। प्रायः समता अंशधारक कम्पनी से निम्नलिखित अपेक्षाएं रखते है।

1. समता अंशधारक एक निश्चित दर से प्रति अंश लाभांश (Dividend per share) अनवरत प्राप्त करते रहेंगें।
2. अंशधारकों के प्रति अंश आय में अनवरत वृद्धि होती रहेगी।
3. व्यवसाय में अधिकतम लाभ की निरन्तरता बनी रहे, जिससे प्रतिधारित आय (Retained earning) में वृद्धि हो।

उपरोक्त अपेक्षाओं के परिप्रेक्ष्य में कम्पनी प्रबन्धन एक न्यूनतम उपर्जन क्षमता बनाये रखने का प्रयास करती है। प्रायः समता अंश पूंजी की लागत का निर्धारण निम्नलिखित प्रविधियों से किया जाता है।

ए) लाभांश प्राप्ति विधि (Dividend yield method) – लाभांश प्राप्ति विधि समता अंशधारकों को प्राप्यः लाभांश पर आधारित विधि होती है। अतः इसे लाभांश मूल्य अनुपात विधि (Dividend Price Ratio method) के नाम से

भी जाना जाता है व्यावहारिक तौर पर प्रत्याशित या घोषित दर पर समता अंश पूंजी की लागत न होकर अपितु समताअंश पूंजी की लागत लाभांश प्राप्ति के बराबर होती है। इस विधि के अनुसार समता अंश पूंजी की लागत का आकलन निम्न सूत्र के माध्यम से किया जाता है।

$$C_e = \frac{D.P.S.}{M.P.P.S.} \times 100$$

C_e = Cost of equity capital

D.P.S. = Dividend Per Share

M.P.P.S. = Market Price Per Share

उदाहरण

मार्डन एग्रो फूड्स लि. में 100 रू. मूल्य वाले (पूर्ण भुगतानित) 10000 समता अंशों का निर्गमन किया। इन अंशों का बाजार मूल्य रू. 150 है। कम्पनी द्वारा रू. 15 प्रति अंश की दर से लाभांश का भुगतान किया गया। समता अंश पूंजी की लागत की गणना कीजिए।

$$C_e = \frac{D.P.S.}{M.P.P.S.} \times 100$$

$$\frac{10}{150} \times 100 = 6.67\%$$

सीमाएँ (Limitations)

1. समता अंशों के वास्तविक मूल्य के सापेक्ष बाजार मूल्य को सम्मिलित किया जाता है जबकि वास्तविक मूल्य की उपेक्षा की जाती है।
2. संगठन में होने वाली प्रतिधारित आय (Retained earning) की उपेक्षा की जाती है। जबकि प्रतिधारित आय से अंशों के बाजार मूल्य एवं लाभांश में वृद्धि होती है।
3. इस विधि के अन्तर्गत भविष्य में होने वाली लाभांश की मात्रा में वृद्धि को कोई स्थान नहीं दिया जाता ।
4. समता अंशों के बाजार मूल्य में होने वाले उच्चावचनों के कारण उन अंशों का वास्तविक बाजार मूल्य ज्ञात करना कठिन होता है।

बी) उपार्जन प्राप्ति विधि (Earning yields method) – यह विधि आय मूल्य अनुपात विधि (earning price ratio method) के नाम से भी जानी जाती है, इस विधि के अन्तर्गत समता अंश पूंजी की लागत का निर्धारण अंशों

पर होने वाली प्रत्याशित आय को उनके बाजार मूल्य से सम्बन्धित करके ज्ञात की जाती है। यह विधि इस मान्यता पर आधारित है कि समता अंश धारक कम्पनी के अप्रत्यक्ष तौर पर स्वामी होते हैं।

इस विधि के अन्तर्गत समता अंश पूँजी की लागत निमन सूत्र के माध्यम से ज्ञात की जाती है।

$$C_e = \frac{EPS \times 100}{MPS}$$

C_e = Cost of equity share

E.P.S = Earning per Share

M.P.S. = Market Price per Share

उदाहरण

एक्स. वाई. लिमिटेड इलाहाबाद की अर्जन राशि रू. 100,000 है अंशों का सममूल्य एवं चालू बाजार मूल्य रू. 100 है कम्पनी द्वारा 10,000 अंशों का निर्गमन किया गया है। कम्पनी ने रू. 5,00,000 के अतिरिक्त कोष सर्षजित करने का निर्णय लिया है। निर्गमन की लागत 5 प्रतिशत अंशों के निर्गमन पर छूट 10 प्रतिशत होने की दशा में समता अंश पूंजी की लागत का आगणन कीजिये।

हल

1. Cost of current equity capital वर्तमान समता पूंजी की लागत

$$C_e = \frac{EPS}{MPS} \times 100$$

$$E.P.S. = \frac{100000}{10000} = Rs.10$$

$$M.P.S. = 100 - 5 - 10 = 85$$

$$C_e = \frac{10 \times 100}{85} = 11.8\%$$

2. Cost of existing capital share पूर्ववर्ती समता पूंजी की लागत

सी) लाभांश प्राप्ति तथा लाभांश वृद्धि विधि – यह विधि इस अवधारणा पर आधारित है कि समता अंश धारक केवल वर्तमान में प्राप्त लाभांश से सन्तुष्ट न होकर अपितु लाभांश से प्रतिवर्ष वृद्धि की अपेक्षा रखते है। समता अंश जैसे जोखिम पूर्ण विनियोजन का आधार यही है। इस विधि

के अन्तर्गत समता अंश पूंजी की लागत का निर्धारण कम्पनी की वर्तमान लाभांश दर में सम्भाव्य भावी वृद्धि का समायोजन करके किया जाता है, इस विधि से पूंजी की लागत का आगणन करने हेतु हम निम्न सूत्र का प्रयोग करते हैं।

$$C_e = \frac{D.P.S. \times 100}{M.P.S.} + G.R.D.$$

C_e = Cost of equity

D.P.S. = Dividend per share

M.P.S.= Market Price per Share

G.R.D. = Growth rate in dividend

उदाहरण

बाबा बिल्डर्स लि. ने रू. 10 मूल्य के 10,000 समता अंशों का निर्गमन 10 प्रतिशत प्रीमियम पर किया, लाभांश की औसत दर पिछले पांच वर्षो में 30 प्रतिशत रही। कम्पनी की अर्जन क्षमता में 8 प्रतिशत वृद्धि अनुमानित है। समता अंशों का बाजार मूल्य रू. 15 प्रति अंश है। दोनों दशाओं में समता अंश पूंजी की लागत ज्ञात कीजिए।

हल –

1. प्राप्त शुद्ध धनराशि के आधार पर

$$C_e = \frac{D.P.S. \times 100}{M.P.S.} + G.R.D.$$

$$D.P.S. = \frac{10 \times 30}{100} = Rs.3$$

$$C_e = \frac{3 \times 100}{11} + 8\% = 35.3\%$$

$$M.P.S. = 10 + 1$$

2. बाजार मूल्य के आधार पर

$$C_e = \frac{D.P.S. \times 100}{M.P.S.} + G.R.D.$$

$$\frac{3 \times 100}{15} + 8\% = 28\%$$

सीमाएं (Limitation) इस विधि की कतिपय सीमाएं निम्न हैं।

1. इस विधि में यह माना जाता है कि लाभांश दर में होने वाली वृद्धि,

प्रति अंश अर्जन तथा प्रति अंश बाजार मूल्य में होने वाली वृद्धि के समान होगी। जब कि प्रायः व्यवहार में ऐसा नहीं होता ।

2. लाभांश में वृद्धि की दर ज्ञात करना कठिन होता है।

3. कम्पनी द्वारा भविष्य में होने वाले लाभांश की मात्रा में अनवरत वृद्धि का अनुमान यथार्थपूर्ण नहीं होता है। कम्पनी को भावी वर्षों में हानि होने की दशा में लाभांश की मात्र में कमी भी हो सकती है।

5.5 प्रतिधारित आय की लागत (Cost of Retained Earnings)

प्रायः कम्पनियाँ अपने द्वारा अर्जित समस्त लाभों में से सम्पूर्ण भाग वितरित न करके उसका कुछ भाग संगठन के विकास हेतु संचय के रूप में रख लेती है। इसका प्रयोग वित्त की भावी मांग को पूर्ण करने हेतु किया जाता है। इसी से की हुई आय को प्रतिधारित आय (Retained earnings) कहा जाता है। प्रतिधारित आय के रूप में संगठन को आन्तरिक साधनों से पूँजी प्राप्त होती है। इस परिप्रेक्ष्य में आम धारणा यह है कि प्रतिधारित आय के रूप में संग्रहीत पूंजी की कोई लागत नहीं होती है। व्यवहारिक तौर पर कम्पनी को यह राशि अत्यन्त सहजता से प्राप्त होती है। तथा इसके लिए किसी भी प्रकार का निर्गमन व्यय नहीं करना पड़ता, किन्तु वास्तविक रूप में प्रतिधारित आय की कुछ न कुछ लागत अवश्य होती है। क्योंकि अंश धारकों द्वारा अपने लिये उपलब्ध लाभ में से कुछ भाग का परित्याग करना पड़ता है। आय के एक भाग को प्रतिधारित करने से अंश धारक उस आय के पुर्नविनियोग अवसर से वंचित हो जाते हैं। वस्तुतः प्रतिधारित आय की लागत अंशधारकों द्वारा त्याग किये गये विनियोग अवसर की लागत होती है। प्रतिधारित आय की लागत आगणन हेतु दो परिस्थितियाँ विद्यमान हो सकती हैं।

1. जब अंश धारक को प्राप्त लाभांश पर कर एवं दलाली के रूप में कोई धनराशि व्यय नहीं करना पड़ता।

2. जब लाभांश की प्राप्ति पर कर भुगतान एवं विनियोजन पर दलाली इत्यादि का भुगतान करना पड़ता है।

प्रथम स्थिति में प्रतिधारित आय की अवसर लागत समता अंश पूंजी की लागत के समान होगी। इस प्रकार प्राप्त प्रतिधारिता आय भी निम्न सूत्र की सहायता से की जा सकती है।

$$C_{RE} = \frac{ED \times 100}{A.R.E.}$$

उदाहरण

डेविड के पास किसी कम्पनी के 100 रू. मूल्य वाले 500 अंश हैं। कम्पनी द्वारा समता अंशों पर 15 रू. प्रति अंश की दर से लाभांश घोषित किया जाता है। जिसमें से 10 रू. प्रति अंश की दर से लाभांश का भुगतान नगद एवं 5 रू. प्रति अंश कम्पनी द्वारा प्रतिधारित किया जाता है। अंशों का बाजार मूल्य रू. 125 प्रति अंश होने की दशा में प्रतिधारित आय की लागत ज्ञात कीजिए।

हल

प्रतिधारित आय की राशि (A.R.E) = 500 x 5 = 2500

प्रतिधारित आय से अंशधारक द्वारा क्रय कियेजा सकने वाले अंश

$$\frac{2500}{1250} = 20 \text{ अंश}$$

वैकल्पिक लाभांश (A.D.) = 20 x 15 = 300

$$C_{RE} = \frac{A.D \times 100}{ARE}$$

$$= \frac{300 \times 100}{2500} = 12\%$$

दूसरी स्थिति में जब अंश धारक को पुर्नविनियोग हेतु कमीशन, दलाली अथवा कर के रूप में कुछ न कुछ धनराशि देनी पड़ती है।

$$C_{RE} = \frac{E.D.(1 - P.T.R.) \times 100}{(1 - C.G.T.)\, A.R.E.}$$

E D = expected dividend

P.T.R. = Personal tax rate

C.G.T. = Capital gain tax

A.R.E. – Amount of retained earnings.

उदाहरण

एक्स. वाई. जेड. लि. ने 100 रू. मूल्य वाले 500 अंशों का निर्गमन किया। कम्पनी ने 20 रू. प्रति अंश की दर से लाभाँश की घोषणा की। जिसमें से 15 रू. प्रति अंश लाभाँश के रूप में तथा रू. 5 प्रति अंश प्रतिधारित किया गया। अंशों का बाजार मूल्य रू. 125 प्रति अंश है। अंश धारकों पर देय आयकर 30 प्रतिशत एवं पूंजी लाभ दर 20 प्रतिशत होने की दशा में प्रतिधारित आय की लागत ज्ञात कीजिए।

$$C_{RE} = \frac{ED(1-P.T.R.)}{(1-C.G.T.)\,A.R.E.} \times 100$$

$$= \frac{400(1-.30)\times 100}{(1-.20)\,2500} = \frac{28000}{2000} = 14\%$$

5.6 पूँजी की भारित औसत लागत (Weighted average cost of capital)

प्रायः किसी भी कम्पनी की पूँजी संरचना एक ही प्रकार की प्रतिभूति से निर्मित न होकर अपितु अनेक प्रकार की प्रतिभूतियों के मिश्रण द्वारा निर्मित होती है। पूँजी मिश्रण के सुनिश्चयन हेतु स्वामियों द्वारा स्वामित्व नियंत्रण, पूंजी की लागत, उपार्जन क्षमता आय की मात्र इत्यादि तत्वों को ध्यान में रखा जाता है वस्तुतः मिश्रित पूंजी की लागत की गणना सरल नहीं होती। क्योंकि इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रतिभूतियों जैसे पूर्वाधिकार अंश, समता अंश, ऋण पत्र, प्रतिधारित आय इत्यादि तत्वों का सन्तुलित समावेश होता है। प्रायः प्रबन्धकों द्वारा विभिन्न विनियोग प्रस्तावों की लाभदेयकता का मूल्यांकन करने हेतु सम्पूर्ण पूंजी की औसत लागत ज्ञात करने का प्रयास किया जाता है। किसी विनियोग प्रस्ताव की प्रत्याय दर उसकी सम्पूर्ण पूंजी की औसत लागत से अधिक होने पर विनियोग प्रस्ताव लाभकर तथा औसत लागत से कम होने पर विनियोग प्रस्ताव हानिकर होगा। संस्था का औसत अर्जन औसत लागत से कम होने पर अंश धारकों के मध्य लाभांश का वितरण सम्भव नहीं होगा। औसत लागत की गणना हेतु पूंजी ढांचे के प्रत्येक घटक की लागत को पूंजी

के सापेक्ष भारांकित किया जाता है। पूंजी मिश्रण के प्रत्येक घटक की भारित लागत के योग को 100 से विभाजित करने पर संगठन की पूंजी की मिश्रित लागत ज्ञात हो जाती है। इसे पूंजी की मिश्रित लागत (Mixed cost) पूंजी की समग्र लागत (Over all cost) के नाम से भी जाना जाता है।

गणना (Computation) – पूँजी की औसत लागत की गणना हेतु निम्न क्रियाओं को सम्पादित करना पड़ता है।

1. संगठन में प्रयुक्त समस्त पूँजी की राशि को 1 या 100 मानकर संगठन में उपलब्ध विभिन्न पूंजी स्रोतों को भारित किया जाता है। पूंजी को भारित करने हेतु पूंजी के विभिन्न स्रोतों के पुस्तक मूल्य (Book Value) अथवा बाजार मूल्य (Market value) को आधार बनाया जाता है।

2. प्रत्येक पूंजी साधन की अलग–अलग विशिष्ट लागत ज्ञात की जाती है।

3. पूंजी के किसी साधन पर लगने वाले करों का भी समायोजन कर लिया जाता है।

4. प्रत्येक साधन की पूंजी की विशिष्ट लागत एवं उसके भार का गुणनफल ज्ञात कर लेते हैं इसी गुणन फल का योग सम्पूर्ण पूंजी की औसत लागत कहलाता है।

उदाहरण

निम्न सूचनाओं के आधार पर पूंजी की औसत लागत की गणना कीजिए।

पूंजी के विभिन्न स्रोत	**धनराशि**	**पूंजी लागत की दर**
(Various sources of capital)	(Amount)	(Cost of capital)
समता अंश पूंजी (Equity share)	10,00,000	7 प्रतिशत
पूर्वाधिकार अंश पूंजी(Preference share)	20,00,000	90 प्रतिशत
ऋणपत्र पूंजी (Debentures capital)	40,00,000	15 प्रतिशत
प्रतिधारित आय (Retained earning)	2,00,000	12 प्रतिशत

हल

Weighted Average Cost of Capital

Sources of capital	Amount	Weight	Cost of capital	Average cost of capital
Equity share capital	10,00,000	10	7%	70
Preference share capital	20,00,000	20	20%	4.00
Debenture capital	40,00,000	40	15%	6.00
Retained earnings	2,00,000	02	12%	24
				10.94%

5.7 पूँजी की लागत का महत्व

परम्परा विचारधारा के अन्तर्गत वित्तीय प्रबन्धन के क्षेत्र में पूँजी की लागत अवधारणा को कोई महत्व नहीं दिया गया। क्योंकि इस अवधारणा में कोषों के संग्रहण पर अधिक बल दिया गया। न कि कोषों के समुचित उपयोग पर। किन्तु आधुनिक विचारधारा पूँजी की लागत अवधारणा को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान देती है। वर्तमान वैश्वीकरण (Globalisation) एवं मुक्तिकरण (Liberalisation) के परिवेश में विश्व समुदाय के साथ प्रतिस्पर्धा हेतु यह आवश्यक हो जाता है कि पूंजी की लागत अवधारणा को मात्र सैद्धान्तिक अध्ययन हेतु स्वीकार न करके अपितु व्यावहारिक धरातल पर लागत नियंत्रण, लाभ अधिकतमीकरण एवं धन अधिकतमीकरण हेतु प्रयोग में लाया जाय। पूंजी की लागत अवधारणा की सार्थकता का विवेचन निम्नलिखित शीर्षक के अन्तर्गत किया जा सकता है।

1. **पूंजी व्यय सम्बन्धी निर्णयन में सहायक** – पूंजी व्यय सम्बन्धी निर्णयन में पूंजी की लागत अवधारणा महत्वपूर्ण होती है। वस्तुतः किसी भी विनियोग प्रस्ताव की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति का आधार विनियोग की लागत होती है। वस्तुतः विनियोग की प्रत्याशित आय एवं पूंजी की लागत के मध्य अर्न्तसम्बन्ध होता है। यदि विनियोग से प्रत्याशित आय का वर्तमान मूल्य विनियोग की लागत (पूंजी की लागत) के समतुल्य अथवा अधिक हो तो वह

विनियोग प्रस्ताव स्वीकार्य होगा, किन्तु यदि विनियोग से प्रत्याशित आय का वर्तमान मूल्य विनियोग की लागत से कम हो तो वह विनियोग प्रस्ताव अस्वीकार्य होगा।

2. **वित्तीय निर्णयन में सहायक** – संगठन के अन्तर्गत प्रबन्धकों को अनेक प्रकार की वित्तीय निर्णयन लेने होते हैं जैसे लाभांश निर्णयन, कार्यशील पूँजी नीति सम्बन्धी निर्णयन, लाभों के पुर्नविनियोग सम्बन्धी निर्णयन आदि प्रबन्ध द्वारा इन बिन्दुओं पर निर्णय लेने से पूर्व पूंजी की लागत को ध्यान में रखा जाता है।

3. **संगठन हेतु पूंजी सरंचना का निर्धारण** – वस्तुतः विभिन्न स्रोतों से प्राप्य पूंजी की मात्रा का निर्धारण संगठन की अनुकूलतम पूंजी संरचना हेतु आवश्यक होता है। विभिन्न विकल्पों में से अनुकूल विकल्प के चयन का आध ार मात्र पूंजी की लागत होती है। अपेक्षाकृत कम लागत वाली पूंजी का चयन संगठन के हित में होता है।

4. **पूंजी मिलान का निर्धारण** – पूंजी मिलान दर वह दर है जिसके माध्यम से बाजार में उपलब्ध विभिन्न विनियोग विकल्पों के आर्थिक मूल्य का मूल्यांकन सहजता से किया जा सकता है। पूंजी मिलान दर का निर्धारण करने हेतु पूंजी की लागत का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। अनुकूलतम पूंजी ढॉचे के निर्धारण हेतु वित्तीय प्रबन्धक को पूंजी की लागत को न्यूनतम करने एवं संगठन की प्रत्याय दर को अधिकतम करने हेतु प्रभावी कदम उठाने चाहिये।

5.8 वित्तीय निर्णय में पूँजी की लागत की भूमिका (The role of cost of capital in financial decision making)

परम्परागत विचारधारा के अन्तर्गत वित्तीय निर्णयन में पूंजी की लागत का कोई स्थान नहीं था किन्तु नवीन विचारधारा के अन्तर्गत वित्तीय निर्णयन में पूंजी की लागत का महत्वपूर्ण स्थान है। वस्तुतः फर्म द्वारा लिये गये विनियोग सम्बन्धी निर्णयों में पूंजी की लागत का गहरा प्रभाव पड़ता है।

वित्तीय निर्णयन में पूंजी की लागत की भूमिका निम्नलिखित रूप में स्वीकार की गयी है।

1. **पूँजी बजटिंग सम्बन्धी निर्णयन** – पूँजी बजटिंग सम्बन्धी निर्णयों में पूंजी की लागत की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। वस्तुतः किसी भी फर्म की पूंजी की औसत लागत प्रत्याय की उस न्यूनतम दर अथवा मिलान बिन्दु की सूचक है जिससे कम दर पर पूंजी निवेश के किसी भी प्रस्ताव को स्वीकृति नहीं दी जा सकती। किसी परियोजना में विनियोग सम्बन्धी निर्णय विनियोग के शुद्ध वर्तमान मूल्य के धनात्मक होने पर ही लिया जाता है। वस्तुतः वर्तमान परिप्रेक्ष्य में पूंजी की लागत अवधारणा वित्तीय निर्णय के मापदण्ड स्वरूप अत्यन्त उपयोगी हो चुकी है।

2. **पूंजी ढाँचे के आयोजन सम्बन्धी निर्णय** – प्रत्येक औद्योगिक संगठन द्वारा संगठन के हित में अनुकूलतम पूंजी ढाँचे की संरचना का प्रयत्न किया जाता है। संगठन की कार्यक्षमता के समुचित विदोहन हेतु एवं पूंजी लागत को न्यूनतम करने हेतु अंश पूंजी तथा ऋण पूंजी का अनुकूलतम मिश्रण (Optimum mix) तैयार करने का प्रयत्न किया जाता है। जिससे संगठन की पूंजी की औसत लागत को न्यूनतम रखते हुए अंश पूंजी तथा ऋण पूंजी का अनुकूलतम मिश्रण तैयार करने का प्रयत्न किया जाता है। जिससे संगठन की पूंजी की औसत लागत को न्यूनतम रखते हुए अंशों के बाजार मूल्य को अधिकतम रखा जा सके।

3. **अन्य वित्तीय निर्णयन** – अन्य वित्तीय निर्णयों के अर्न्तगत पूंजी की लागत अवधारणा का प्रमुख बिन्दु पूंजी होती है। इसके माध्यम से कार्यशील पूंजी का प्रबन्ध अत्यन्त सुचारू रूप से किया जा सकता है। लाभांश एवं प्रतिध ारण नीतियों के निर्धारण में भी पूंजी की लागत का सिद्धान्त अत्यन्त उपयोगी होता है। इसके अतिरिक्त यह सिद्धान्त फर्म की वित्तीय कार्य निष्पत्ति के मूल्यांकन में प्रभावी भूमिका का निर्वहन करता है।

5.9 सारांश

जैसा कि हम जानते हैं कि किसी भी उद्यम के संचालन में पूंजी की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पूंजी के अभाव में हम किसी भी उद्यम के संचालन

की कल्पना भी नहीं कर सकते। वस्तुतः किसी भी उद्यम का उद्देश्य अधिकतम लाभ अर्जित करना होता है। हम अधिकतम लाभ की प्राप्ति समस्त प्रकार की लागतों को कम करके ही कर सकते हैं। अतः हमे विभिन्न स्रोतों से प्राप्त होने वाली पूंजी की लागत का विशेष ध्यान रखना चाहिए। अंश पूंजी के रूप में संगठित पूंजी की कोई निश्चित लागत नहीं होती किन्तु हमें अंश पूंजी पर लाभांश देना पड़ता है। लाभांश की घोषणा बाध्यकारी नहीं होती दूसरी ओर ऋणपूंजी पर एक निश्चित दर से ब्याज का भुगतान अनिवार्य रूप से प्रतिवर्ष करना पड़ता है। व्यवसाय में हानि की दशा में ब्याज की राशि अनावश्यक प्रकार के रूप में बहन करना पड़ता है। अतः हमें प्रयास करके अंश पूंजी एवं ऋण पूंजी का ऐसा मिश्रण प्रयोग में लाना चाहिए जिससे पूंजी की लागत न्यूनतम हो सके।

5.10 स्वपरख प्रश्न/अभ्यास

1. पूंजी की लागत से आप क्या समझते हैं?-
2. आप ऋण पूंजी की लागत का मापन कैसे करेंगे?
3. समता अंश पूंजी की लाभांश प्राप्ति विधि का विवेचन कीजिए।
4. प्रतिधारित आय क्या है? आप प्रतिधारित आय की लागत की गणना कैसे करेंगे?
5. वित्तीय निर्णयन में पूंजी की लागत की भूमिका पर लेख लिखो।
6. भारित औसत पूंजी की लागत से आप क्या समझते हैं?
7. पूंजी की लागत की महत्ता को समझाइये।

व्यावहारिक प्रश्न

1. लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद रू. 500000 के 10 प्रतिशत ऋण पत्रों का निर्गमन सममूल्य पर करते हैं कर की दर 20 प्रतिशत होने की दशा में ऋण पूजी की लागत ज्ञात कीजिए

उत्तर – 8 प्रतिशत

2. एक्स लि.में सतत ऋणपत्रों की कुल राशि रू. 1,00,000 है जिन पर 10 प्रतिशत ब्याज देय है। ऋण पत्रों के सममूल्य रू. 100 है। पूंजी की लागत ज्ञात करो जब ऋण पत्रों का निर्गमन किया जाता है । (1) सममूल्य पर (2) 10 प्रतिशत बट्टे पर (3) 10 प्रतिशत प्रीमियम पर ।

उत्तर – (1) 10 प्रतिशत (2) 11 प्रतिशत (3) 9.1 प्रतिशत

(3) मार्डन एग्रो फूड्स लि. द्वारा रू. 50000 के 10 प्रतिशत ऋणपत्रों का निर्गमन 5 प्रतिशत प्रीमियम पर किया गया। कर की दर 40 प्रतिशत है। ऋण पूंजी की लागत की गणना कीजिए। यदि फ्लोटेशन चार्जेज रू. 550 है।

उत्तर – 6.3 प्रतिशत

4. राहुल एण्ड सन्स ने 10 प्रतिशत पूर्वाधिकार अंशों का निर्गमन किया अंशों का सममूल्य रू. 100 प्रति अंश है, किन्तु निर्गमन मूल्य रू. 80 है निर्गमन की लागत ज्ञात करो। निर्गमन मूल्य रू. 120 होने की दशा में लागत क्या होंगे।

उत्तर – (1) 12.5 प्रतिशत (2) 8.33 प्रतिशत

खण्ड

2

विनियोग निर्णय (Investment Decisions)

इकाई - 1 5

जोखिम एवं आय विश्लेषण

इकाई - 2 9

पूँजी बजटन निर्णयन

इकाई - 3 41

पूँजी संरचना के सिद्धान्त

इकाई - 4 62

परिचालन एवं वित्तीय उत्तोलक

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	**कुलपति - अध्यक्ष**
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
श्री एम0 एल0 कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

संरचनात्मक सम्पादन

डॉ0 मंजूलिका श्रीवास्तव	निदेशक, दूरस्थ शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली

विषयगत सम्पादन

प्रो0 मूल मोतिहार	प्रोफेसर, मोनिरबा इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 डी0 डी0 बेडिया	रीडर, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

प्रस्तुत पाठ्य सामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के स्वयं के हैं।

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

खण्ड-2 परिचय

इस खण्ड में निम्नलिखित इकाइयों पर प्रकाश डाला गया है। प्रथम इकाई में जोखिम एवं आय विश्लेषण में बताया गया है कि आधुनिक व्यवसाय में आय का सम्बन्ध जोखिम से है। द्वितीय इकाई में पूँजी बजटन निर्णयन, तृतीय इकाई में पूँजी संरचना के सिद्धान्त व चतुर्थ इकाई में परिचालन एवं वित्तीय उत्तोलक की व्याख्या की गई है। इकाई में परिचालन एवं वित्तीय उत्तोलक के अर्थ, महत्व का विशद् व गहन अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

इकाई – 1 जोखिम एवम् आय विश्लेषण (Risk and Return Analysis)

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 जोखिम एवं आय

1.4 जोखिम एवं आय का विश्लेषण

1.5 सारांश

1.6 शब्दावली

1.7 स्व परक प्रश्न

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- जोखिम का अर्थ बता सकें।
- आय का अर्थ बता सकें।
- जोखिम एवं आय का विश्लेषण कर सकें।
- जोखिम एवं आय का चित्र के माध्यम से प्रस्तुत कर सकें।

1.2 प्रस्तावना

जोखिम एवं आय की प्रारम्भिक विचारधारा यह है कि आधुनिक व्यवसाय में आय का सम्बन्ध जोखिम से सम्बन्धित है। वर्तमान समय में व्यवसाय में लाभ कमाना जोखिम के ऊपर निर्भर करता है। जिस व्यवसाय या पेशें में जितना अधिक जोखिम होता है, उस व्यवसाय एवं पेशा में उतना अधिक लाभ की सम्भावना अधिक होती है। किसी भी संगठन में जोखिम एवं आय का सम्बन्ध है जिसे अलग नहीं किया जा सकता प्रस्तुत इकाई में जोखिम एवं आय का अर्थ इन विश्लेषण को दर्शाता है। जिसकी व्याख्या क्रमानुसार की

गई है और आय एवं जोखिम को विनियोग निर्णयन की प्रथम इकाई के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

1.3 जोखिम एवं आय

नकद पूँजी बहाव एवं जोखिम के आधार पर परियोजना स्वीकृत की जाती है। चालू नकद प्राप्तियों में से चालू नकद व्यय एवं विनियोग भुगतान घटाने से नकद पूंजी का सामान्य आकलन किया जाता है। समझने के लिए जोखिम एक बहुत ही कठिन सामान्य चालू अवधारणा है। एक परियोजना पर आवश्यक आय की दर का जब अनुमान लगाते हैं तो जोखिम का जरूर ध्यान दिया जाना चाहिए। अनुमानित परिणाम की अस्थिरता को अनुमानित आय से सम्भावित आय के अन्तर को जोखिम जोड़ती है। विनियोगकर्ता जोखिम पसंद नहीं करते और वे जितनी अधिक आय चाहेंगे, उतनी अधिक एक परियोजना पर आय की जोखिमता अधिक होगी। विनियोग अवसरों के लिये आय एवं जोखिम के बीच में जो लेन–देन बंद है वह विनियोग अवसरों के लिए प्रयोग की गयी कटौती दरों में परिलक्षित होना चाहिए।

1.4 जोखिम एवं आय का विश्लेषण

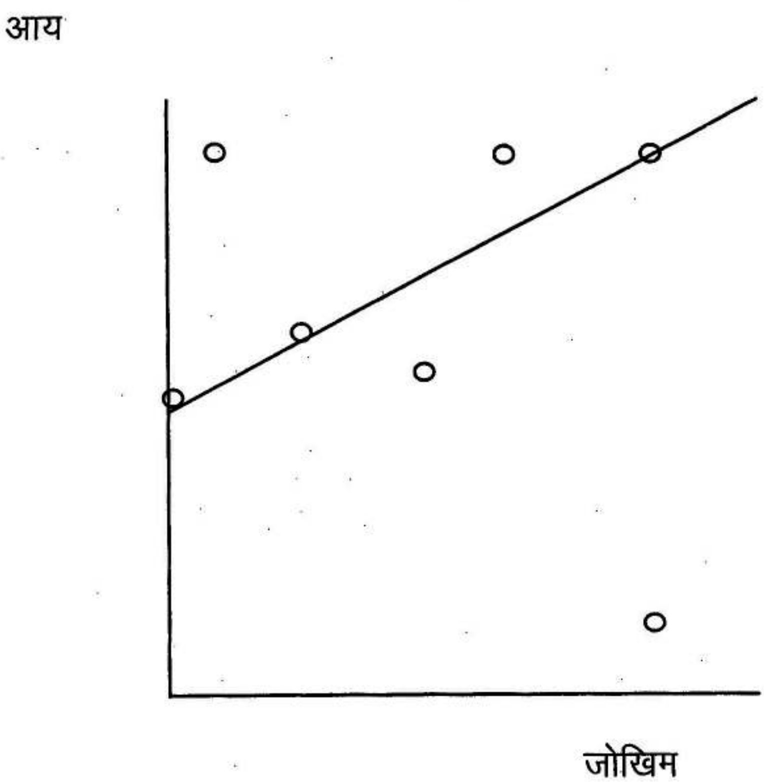

वैकल्पिक परियोजनाओं के लिए आअ और जोखिम में संबंध 1. सात परियोजना के संबंध में आय–जोखिम को दर्शाया गया है। सबसे अच्छी उपलब्ध परियोजना में 2 है यह अधिक आय एवं कम जोखिम वाली परियोजना है, और यह परियोजना आप जोखिम के सबसे अच्छे सम्बन्ध को दर्शाती है। न1 परियोजना सबसे कम स्वीकार करने योग्य है क्योंकि यह अधिक जोखिम एवं कम आय वाली परियोजना है। विनियोग परियोजना नं. 3 हमेशा पसंद की जायेगी, विनियोग न. 4 परियोजना जोखिम के उसी स्तर पर अच्छी आय प्राप्त करती है। परियोजना नं. 7 सबसे अधिक जोखिम वाली हे। लेकिन यह अधिक आय की अपेक्षा रखती है परियोजना नं. 6 जोखिम रहित है जो निश्चित प्रतिफल के साथ विनियोग करती है ऐसे विनियोग कम समय एवं सरकारी प्रतिभूतियों में होते हैं। जहॉ सही ब्याज दर की जानकारी पहले ही होती है।

यदि यह पाया जाय कि परियोजना नं. 6, 3, एवं 7 जो रेखा को छूती चली है वास्तविक दुनिया में जोखिम एवं आय के बीच कम लेन–देन को प्रदर्शित करती है और इन तीन परियोजनाओं को आगे भी मूल्यांकित किया जा सकता है। चूँकि तीन परियोजनाएं जोखिम आय रेखा पर हैं और उनका शुद्ध वर्तमान मूल्य शून्य है। विनियोगकर्ता यदि चयन कर सके तो अन्य जोखिम की रेखा के साथ 6 या 3 या 7 परियोजना पर अपने कुल विनियोग के परिवर्तित अनुपात में विनियोग कर सकते हैं। आधुनिक पूंजी बाजार अधिक प्रतियोगी हैं और प्रतिभूतियों के मूल्य जो कि इस अर्थ में प्रभावी रूप से विचार योग्य है उन प्रतिभूतियों से भावी नकद से संबंधित उपलब्ध सभी जानकारी उपलब्ध कराती है।

1.5 सारांश

आय और जोखिम एक दूसरे के प्रतिपूरक है। वर्तमान प्रतिस्पर्धी युग में आय और जोखिम के आधार पर व्यक्ति और संस्थान अपने लाभ को अधिक करने के लिए जोखिम उठाते है एवं जो व्यक्ति एवं संस्थान जोखिम नहीं उठाते वे लाभ कम मात्रा में उपार्जित कर पाते हैं। अतः सारांश रूप में आय

और जोखिम एक दूसरे से सम्बन्धित है और वर्तमान व्यवसाय जगत में इन दोनों का प्रयोग लाभ के उद्देश्यों के लिए अपरिहार्य है।

1.6 शब्दावली

जोखिम – जोखिम एक ऐसी साहस शक्ति है जिसके आधार पर लाभ कमाया जाता है। जोखिम व्यक्ति के अपने साहस से सम्बन्धित है। जो व्यक्ति या संस्थान जितने अधिक साहसी होते हैं वह उतना ही अधिक लाभ कमाते हैं।

आय – आय से आशय व्यक्ति या संस्थान के द्वारा विनियोग की गयी पूंजी के एवज में प्राप्त की गयी राशि, आय कहलाती है। यहॉ आय का सम्बन्ध जोखिम से सम्बन्धित है इसलिए आय अधिक करने के लिए अधिक जोखिम की आवश्यकता होती है।

विश्लेषण – विश्लेषण से आशय यह है कि आय और जोखिम के बीच में जो सम्बन्ध है उस सम्बन्ध को विश्लेषण के माध्यम से दर्शाया गया है।

1.7 स्व–परक प्रश्न

1. व्यवसाय (संगठन) में जोखिम सें क्या आशय है? सांख्यिकीय विधियों के प्रयोग से जोखिम को कैसे कम किया जा सकता है?

2. आय और जोखिम का विश्लेषण करते हुए चित्र द्वारा आय और जोखिम के सम्बन्ध को स्पष्ट कीजिए।

इकाई– 2 पूँजी बजटन निर्णयन (Capital Budgeting Decisions)

इकाई की संरचना

2.1 उद्देश्य

2.2 पूंजी बजटन

2.3 पूंजी बजटन का अर्थ

2.4 पूंजी बजटन का महत्व

2.5 पूंजी बजटन का क्षेत्र

2.6 पूंजी बजटन की प्रक्रिया

2.7 पूंजी बजटन की विधियाँ

2.8 सारांश

2.9 शब्दावली

2.10 स्व–परक प्रश्न

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- पूंजी बजटन का अर्थ बता सकेंगें।
- पूंजी बजटन का महत्व बता सकेंगे,
- पूंजी बजटन के क्षेत्र को समझा सकेंगे
- पूंजी बजटन की प्रक्रिया समझ सकेंगे, तथा
- पूंजी बजटन की विधियों की व्याख्या कर सकेंगे।

2.2 प्रस्तावना

किसी भी संगठन में पूंजी बजटन एक महत्वपूर्ण प्रकार्य है जो संगठन के सभी अंगों को आपस में जोड़कर वित्त का वितरण संगठन के सभी अंगों

की आवश्यकता के अनुरूप करते हैं। प्रस्तुत इकाई में पूंजी बजटन का अर्थ, महत्व, क्षेत्र प्रक्रिया, एवं विधियों को संगठन की आवश्यकता अनुरूप दर्शाया गया है। जिसकी क्रमानुसार व्याख्या की गई है। पूंजी बजटन को विनियोग निर्णयन में एक महत्वपूर्ण प्रकार्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

2.3 पूँजी बजटन का आशय

व्यावसायिक उपक्रम में व्यय दो प्रकार के होते है। आयगत व पूंजीगत। आयगत व्यय वे होते हैं जिसका लाभ अधिकतम एक वर्ष की अवधि ा तक प्राप्त होता है। इसके विपरीत, पूंजीगत व्यय का तात्पर्य ऐसे व्यय से होता है जिससे फर्म को अनेक वर्षों तक लाभ मिलता रहता है। पूंजीगत व्ययों के दीर्घकालीन नियोजन व प्रबन्ध के लिए जिस तकनीक का प्रयोग किया जाता है उसे पूंजी बजटन कहते हैं इसे स्थाई सम्पत्तियों में विनियोग का प्रबन्ध **(Management of Investment in Fixed Assets)**, पूंजी व्यय निर्णय **(Capital Expenditure Decisions)**, पूंजी व्यय प्रबन्ध **(Capital Expenditure Management)** तथा दीर्घकालीन विनियोग निर्णय **(Long Term Investment Decisions)** आदि संज्ञाओं से भी पुकारा जाता है।

पूंजी बजटन का आशय पूंजी विनियोग के लिए सुनियोजित व वैज्ञानिक रूपरेखा तैयार करने से होता है। इसके अन्तर्गत दीर्घकालीन लाभ प्रदाय करने वाले पूंजीगत व्ययों को नियोजित व नियंत्रित किया जाता है तथा उपलब्ध साधनों के सर्वोत्तम प्रयोग का चुनाव किया जाता है। यह दीर्घकालीन विनियोगों हेतु लागत–व्यय विश्लेषण **(Cost- Benefit Analysis)** करके सर्वोत्तम का चयन सुनिश्चित कराता है।

1. मिल्टन एवं स्पेन्सर के मत में, 'पूंजी बजटन सम्पत्तियों के लिए व्ययों का नियोजन है जिनसे भावी अवधियों में प्रत्यायें प्राप्त होती।'

2. पिटमैन के अनुसार, "पूंजी बजटन पूंजी व्ययों के लिए विभिन्न विकल्पों के सृजन, मूल्यांकन, चयन एवं अनुगमन कार्यों की प्रक्रिया है।

उपरोक्त परिभाषाओं के अध्ययन से स्पष्ट है कि पूंजी बजटन दीर्घकालीन नियोजन से सम्बन्धित प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत संसाधनों का सर्वश्रेष्ठ

उपयोग सुनिश्चित करके फर्म के लाभ को अधिकतम करने का प्रयास किया जाता है। एवं भविष्य के लाभ बढ़ाने की सम्भावनाओं को तलाशा जाता है।

2.4 पूँजी बजटन का महत्व (Importance of Capital Budgeting)

व्यावसायिक संस्था के कुल विनियोग का प्रमुख भाग पूंजीगत सम्पत्तियों में विनियोजित किया जाता है। पूँजीगत व्ययों के नियोजन, निर्णयन तथा नियंत्रण को निष्पादित करने की प्रक्रिया को पूँजी बजटन की एक प्रमुख तकनीक है। निम्न कारणों से इसके महत्व को और अधिक स्पष्ट कर सकते है –

(1) **उपयुक्त विनियोग (Ideal Investment)** –पूंजीगत परियोजनाओं में कितना, कब, कहॉ, विनियोग अनुकूलतम होता, इसके लिए विभिन्न विकल्पों में से सर्वोत्तम विकल्प का चुनाव पूँजी बजटन की सहायता से आसानी से हो जाता है।

(2) **लाभानुमान (Forecasting)** – पूँजी बजटन के द्वारा विभिन्न वैकल्पिक परियोजनाओं की लागत व लाभ का अनुमान करके तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है, इसके फलस्वरूप भावी लाभ का पूर्वानुमान सम्भव हो सकता है।

(3) **जोखिम एवं अनिश्चितता का विश्लेषण (Analysis of Risk and Uncertainity)** – चूँकि स्थाई सम्पत्तियों में बहुत अधिक धन का विनियोग दीर्घकाल के लिये किया जाता है, अतः इनमें बहुत अधिक जोखिम व अनिश्चितता रहती है। जरा सी चूक होने पर सम्पूर्ण राशि डूबने और व्यवसाय का अस्तित्व का संकट झेलना पड़ सकता है। पूँजी बजटन इन जोखिमों में अनिश्चितताओं का पूर्व विश्लेषण करके निदान का मार्ग प्रशस्त करता है।

(4) **लागत नियंत्रण (Cost control)** – पूँजी बजटन लागत पर नियन्त्रण रखने व लागत घटाने की विभिन्न विधियों पर निरन्तर विचार करने में सहायक होता है यह लागत के अनेक तत्वों जैसे ह्रास, अप्रचलन मरम्मत की रकम को कम रखने का प्रयास करता है।

(5) प्राथमिकता क्रमांकन (Ranking Priorities) – पूंजी बजटन के द्वारा विभिन्न परियोजनाओं के बीच प्राथमिकता का निर्धारण उनकी लाभोपार्जन क्षमता के आधार पर किया जा सकता है। पूँजी बजटन की सर्वोत्तम परियोजना के चयन में महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

(6) संसाधनों की व्यवस्था – पूँजी बजटन के माध्यम से पूंजी कार्यों का पूर्वानुमान किया जाता है। इस राशि को उचित समय पर व्यवस्था किन साधनों से होगी इसका निर्धारण भी पूँजी बजटन से हो जाता है।

(7) फर्म की सफलता (Success of Firm) – फर्म की भावी सफलता काफी हद तक पूँजी बजटन पर निर्भर करती है। यह पूँजी के सदुपयोग, लागत नियन्त्रण, लाभों में वृद्धि प्लाण्ट मशीनों के आधुनिकीकरण व प्रतिस्थापन, आदि के द्वारा फर्म की प्रगति पर अनुकूल असर डालता है।

2.5 पूँजी बजटन का क्षेत्र (Scope of Capital Budgeting)

पूंजी बजटन के क्षेत्र को स्पष्ट करने के लिए निम्नांकित परियोजनाओं का अध्ययन आवश्यक है –

- **प्रतिस्थापन परियोजनाएँ (Replacement Projects)** – इन परियोजनाओं के अन्तर्गत घिसी–पिटी या अप्रचलित मशीनों के स्थान पर नई मशीनों की स्थापना की जाती है। मशीनों व उपकरणों का प्रतिस्थापन परिचालन लागत में कमी, उत्पादन व लाभ में वृद्धि के उद्देश्य को ध्यान में रख कर किया जाना चाहिए।

- **विस्तार परियोजनाएं (Expansion Projects)** – चालू व्यवसाय को बढ़ाने के लिए विस्तार परियोजनाएं प्रबन्धक अपने हाथ में लेना चाहते हैं। नई मशीनों व भवन का क्रय, वर्तमान मशीनों व भवनों का विचार, किसी अन्य इकाई का क्रय इस तरह की विस्तार परियोजनाओं के उदाहरण है। विस्तार निर्णय विनियोग की लागत तथा भावी लाभ के आधार पर किए होते हैं।

- **शोध एवं विकास परियोजनाएँ (Research and Development**

Projects) – वृहदाकार औद्योगिक इकाइयों से शोध एवं विकास (R & D) का एक पृथक विभाग होता है जो बाजार शोध, नवीन वस्तु की खोज, गुण सुध ाार, आदि के लिए कार्य करता है। इसके लिए विशेषज्ञों, वैज्ञानिकों या सलांहकार फर्मो (Consultancy firms) की भी सहायता ली जा सकती है। इस प्रकार की परियोजनाओं के भारी पूँजी निर्णय भी पूंजी बजटिंग के अन्तर्गत आते हैं।

- **कल्याण परियोजनाएँ (Welfare Projects)** – श्रमिक कल्याण परियोजनाएँ प्रबन्धकों के दूरदर्शिता का प्रमाण होती है जिससे दीर्घकाल में कर्मचारियों की कार्यक्षमता, मनोबल व उत्पादकता पर अनुकूल असर पड़ता है। ऐसी परियोजनाओं में निवास भवन, कैण्टीन, खेल मैदान, विद्यालय, मनोरंजन गृह, प्रदूषण नियंत्रक, चिकित्सालय, आदि के व्यय शामिल होते हैं। ऐसी परियोनाओं के निर्णय को दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य में सोचना ही श्रेयस्कर होगा।

- **प्रतिष्ठा परियोजनाएँ (Prestige or Status Projects)** – कुछ प्रबन्धक अपने प्रतिष्ठान की ख्याति को जमाने हेतु भव्य व आलीशान विक्रय विभाग, प्रशासनिक संकाय व अतिथिगृह की स्थापना कराते हैं ऐसे पूंजीगत व्ययों से व्यापार को परोक्ष रूप में लाभोत्पादकता बढाने में सहायता मिलती है।

2.6 पूँजी बजटन की प्रक्रिया (Process of Capital Budgeting)

सामान्य पूँजी बजटन की प्रक्रिया में निम्न कदम उठाए जाते हैं –

- **प्रस्तावों की शुरूआत (Origin of Proposals)** – पूँजी बजटन प्रक्रिया का पहला चरण विनियोग प्रस्तावों की शुरूआत से होता है। इनका उदगम सामान्य कर्मचारी से लेकर सर्वोच्च प्रबन्ध तक किसी भी स्तर से हो सकता है। प्रत्येक विभागाध्यक्ष अपने विभाग के सभी प्रस्ताव एकत्र करने के बाद, जिन्हें वह उचित समझता है प्रार्थना पत्र के रुप में बजट समिति के पास भेज देता है। बहुधा विनियोग प्रस्तावों के प्रार्थना पत्र में निम्न ब्योरा दिया जाता है।

(1) प्रार्थना की तारीख, (2) विभाग, (3) परियोजना का वर्णन, (4) परियोजना का उद्देश्य एवं जोखिम (5) अनुमानित कुल लागत, (6) अनुमानित प्रारम्भ एवं समाप्ति की तारीखें, (7) परियोजना से अनुमानित बचत एवं वित्तीय जोखिम ।

- **प्रस्तावों का परीक्षण (Screening the Proposals)** – बजट समिति विभिन्न विभागाध्यक्षों द्वारा प्राप्त विनियोग प्रस्तावों की बारीकी से प्रारम्भिक जांच करती है। यह जाँच उच्च प्रबन्ध व बजट समिति के द्वारा निध ारित मापदण्डों के आधार पर की जाती है। समिति जानकारी प्राप्त करती है कि प्रस्ताव संस्था के दीर्घकालीन विकास कार्यक्रमों के अनुरूप है या नहीं। कभी–कभी विभिन्न विभागों द्वारा प्रस्तुत परस्पर विरोधी होते हैं और उन्हें व्यावहारिक अमलीजामा पहनाना सम्भव ही नहीं होता है। उदाहरण के लिए संस्था में बेकार पड़ी भूमि के उपयोग के लिए उत्पादन प्रबन्धक केण्टीन निर्माण का, कार्यालय प्रबन्धक अधिवेशन हाल का और विपणन प्रबन्धक बढ़िया शोरूम का प्रस्ताव अगर भेजे तो सबको स्वीकार करने का कोई व्यवहारिक औचित्य नहीं बनता है।

- **प्रस्तावों का मूल्यांकन (Evaluation of Projects)** – विनियोग प्रस्तावों की उपलब्धता का पता लगाने के लिए पूँजी बजटन की विभिंन्न तकनीकों का प्रयोग करके उनका आर्थिक मूल्यांकन किया जाता है। परियोजनाओं की लागत, प्रकाशित आय व सम्पत्तियों का कार्यकाल, आदि का अध्ययन अपरिहार्यता विधि, प्रत्यावर्तन अवधि विधि, विनियोग पर प्रत्याप की औसत दर, वर्तमान मूल्य विधि, प्रत्याय की आन्तरिक दर जैसे तकनीकों से किया जाता है। यह मूल्यांकन की क्रिया एक गठन परीक्षण होती है जिसमें आर्थिक, तकनीकी व वित्तीय पक्षों की जाँच परख विशेषज्ञ दल द्वारा की जाती है। तदुपरान्त साध्यता व जीव्यता प्रतिवेदन (Feasibility and Viability Report) तैयार किया जाता है।

- **परियोजना चयन (Project Selection)** – बजट जब विभिन्न

प्रस्तावों का विश्लेषण किया जाता है तो अलाभप्रद योजनाओं को छोड़ दिया जाता है। जो लाभप्रद परियोजनाएं बचती हैं उन्हें फर्म के वर्तमान व भावी साधनों की सामर्थ्यानुसार प्राथमिकता के आधार पर चुना जाता है फर्म की प्राथमिकताएं अलग–अलग समय पर भिन्न भिन्न होती है।वे प्राथमिकताएं अपूर्ण परियोजना को पूरा करने, प्रतिस्थापन परियोजना, वैधानिक व सुरक्षा परियोजना, लागत में कमी लाने वाली, आदि से सम्बन्धित हो सकती हैं।

- **अन्तिम अनुमोदन (Final Approval)** – बजट समिति विभिन्न परियोजनाओं की प्राथमिकता निर्धारित करके संचालक मण्डल के सम्मुख अन्तिम स्वीकृति के लिए प्रेषित करती है। अन्तिम निर्णय का अधिकार बहुधा मात्र संचालकों के पास रहता है। वे अनिवार्यता, लाभप्रदता व वित्तीय क्षमता को ध्यान में रखते हुए जब अन्तिम अनुमोदन दे देते हैं तो परियोजना की लागत को वार्षिक पूंजी बजट में सम्मिलित कर दिया जाता है।

- **व्यय अधिकृतीकरण (Expenditure Authorisation)**–किसी परियोजना को जब वार्षिक पूंजी बजट से शामिल कर लिया जाता है तो विभिन्न विभागाध्यक्ष को अपने–अपने विभागों की योजनाओं को क्रियान्वित करने हेतु अधिकृत किया जाता है। विभागाध्यक्षों के प्रार्थना पत्रों के आधार पर वित्तीय नियंत्रण का प्रबन्धक व्यय अधिकृतीकरण का कार्य करता है।

- **परियोजना क्रियान्वयन एवं अनुगणन (Project Execution and Feedback)** – परियोजना के खर्चे के लिए वास्तविक स्वीकृति के बाद दिशा–निर्देशों व कार्य योजना (Guidelines and work plan) के अनुसार कार्य प्रारम्भ किया जाता है। फिर वास्तविक व्ययों का बजट व्ययों से निश्चित समय पर मिलान करना चाहिए तथा अन्तर पूर्व निर्धारित सीमा से अधिक होने पर उनका विश्लेषण करके लागत अनुमानों में संशोधन किया जाना चाहिए। परियोजना व्ययों पर प्रभावी नियंत्रण के लिए मासिक बजट रिपोर्ट तैयार करवानी चाहिए जिसमें नियोजित कुल राशि, वास्तविक व्यय राशि और उपयुक्त राशि का स्पष्ट उल्लेख हो।

2.7 पूँजी बजटन की विधियाँ (Methods of Capital Budgeting)

परियोजनाओं में पूँजी विनियोगों के वैकल्पिक प्रस्तावों के मूल्यांकन की प्रमुख विधियाँ निम्नानुसार हैं –

1. औसत प्रत्याय दर विधि (Average Rate of Return Method)
2. अपलेखित रोकड़ प्रवाह विधि (Discounted cash flow method)
3. अपरिहार्यता विधि (Urgency method)
4. प्रत्यावर्तन अवधि विधि (Pay-back Period Method)

1. औसत प्रत्याय दर विधि (Average Rate of Return Method)-

इस विधि को वित्तीय विवरण विधि (Financial Statement Method) लेखांकन विधि (Accounting Method), असमायोजित प्रयाय दर विधि **(Unadjusted rate of Return Method)** आदि नामों से भी जाना जाता है। इसे असमायोजित प्रत्याय दर विधि इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसमें किसी परियोजना में किए गये विनियोग पर प्रत्याय की दर तो ज्ञात की जाती है परन्तु विभिन्न वर्षों के अर्जनों के वर्तमान मूल्य के अन्तरों का समायोजन नहीं किया जाता है। इस विधि के अनुसार जब विभिन्न परियोंजनाओं में से किसी एक का चयन करना होता है तो उसका चयन करेंगे, जिसकी प्रत्याय दर सर्वाधिक होगी। सामान्यतः यह विधि दीर्घकालीन परियोजनाओं के चयन हेतु प्रयुक्त होती है।

औसत प्रत्यय दर की गणना

इस विधि में औसत प्रत्याय दर की गणना कर व ह्रास के पश्चात औसत वार्षिक आय को औसत विनियोग से विभाजित करके की जाती है।

सूत्र रूप में,

$$\text{Average Rate of Return} = \frac{(\text{Average Annual Income After Tax \& Depreciation} \times 100)}{\text{Average Investment}}$$

कर व ह्रास के पश्चात औसत वार्षिक आय (Average Income After Tax and

Depreciation) की गणना हेतु परियोजना के जीवन काल के भावी लाभों (कर व ह्रास घटाने के बाद) को जोड़कर वर्षों की कुल संख्या से विभाजित किया जाता है। औसत विनियोग की राशि की गणना प्रारम्भिक विनियोग + अवशिष्ट मूल्य (यदि हो) को दो से भाग देकर की जाती है।

- यह विधि समझने में सरल एवं गणना में आसान होती है।
- इस विधि में परियोजना के सम्पूर्ण आर्थिक जीवन को ध्यान में रखा जाता है।
- इसमें विनियोग की लाभदायकता को अधिक महत्व दिया जाता है।
- ह्रास व कर के पश्चात शुद्ध आय के प्रयोग होने के कारण यह विधि वास्तविक के नजदीक होती है।
- इस विधि का प्रयोग भिन्न प्रकृति की परियोजनाओं की पारस्परिक तुलना के लिये भी किया जा सकता है।
- यह विधि समय तत्व की उपेक्षा करती है जिसके कारण प्रथम वर्ष में प्राप्त आय व पॉचवे वर्ष में प्राप्त आय में कोई अन्तर नहीं किया जाता, जो कि अनुचित है।
- न्यूनतम या उचित प्रत्याय दर को प्रमाप के रूप में निर्धारित करना एक कठिन कार्य है। बहुधा इसके निर्धारण में कृत्रिमता व काल्पनिकता का सहारा लिया जाता है।
- इस विधि में प्रयुक्त सूत्र में आय एवं विनियोग शब्दों का प्रयोग किया जाता है जिनके अर्थों के बारे में मतभेद रहता है।
- इस विधि में प्रत्याय दर की गणना के लिए लेखांकन लाभ का प्रयोग किया जाता है जो कि परियोजना से प्राप्त होने वाले रोकड़ अन्तर्प्रवाह का सही रूप नहीं होता है।

उदाहरण – 1

इस परियोजना की लागत 80,000 रू. है और इसका अवशिष्ट मूल्य 20 000 रू. है। इससे प्रथम पांच वर्षों के अन्तर्गत ह्रास एवं करों से पूर्व आय

15,000 रू., 19,000 रूपया, 21,000 रू., 27,000 रू., और 40,000 रू. है। कर की दर 50 प्रतिशत एवं ह्रास सीधी आधार से मानिए। परियोजना की औसत प्रत्याय दर की गणना कीजिए।

Solution,

Calculation of Average Annual Income After tax and Depreciation

average Income before tax and depreciation-

	Rs.
(Rs. 15,000 + 19000 + 21000 + 27000 + 40000) ÷ 5	24400
$Less\ Depreciation = \frac{(80,000 - 20.000)}{5}$	12000
	6400
Less Tax @ 50%	3200
Average Annual income after Tax and Deprecationew	3200
(ii) Average Investment = 80,000 + 20,000 = Rs.	50000

$$(iii)\ Average\ Rate\ of\ Return = \frac{Average\ Annual\ Income\ After\ Tax\ \&\ Depreciation \times 100}{Average\ investment}$$

$$\frac{Rs.3,200 \times 100}{50,000} = 8.20\%$$

उदाहरण – 2

निम्नलिखित विनियोग प्रस्तावों की लाभदायकता A प्रत्यार्वन अवधि विधि तथा B औसत प्रत्याय दर विधि से श्रेणीयन कीजिए।

Projects	A	B	C	D	E
Initial outlay (Rs.)	25000	3000	12000	20000	40000
Annual Cash flow	3000	1000	2000	4000	8000
Life in Years	10	5	8	10	12

Solution,

a) Ranking According to pay back period method

Projects	Initial Outlay	Annual Cash Flow	Pay back Period in yrs	Rank
A	25000	3000	8.33	V
B	3000	1000	3	I
C	12000	2000	6	IV
D	20000	4000	5	II
E	40000	8000	5	II

b) Ranking According to Average Rate of Return Method

Projects	Initial outlay	Average Investment	Life in Yrs.	Annual cash flows	Annual Depre-ciation 2-4	Net Inc-ome	Average rate of return 7-3x100	Rank
A	25000	12500	10	3000	2500	500	4%	V
B	3000	1500	5	1000	600	400	26.67%	I
C	12000	6000	8	2000	1500	500	8.33%	IV
D	20000	10000	10	4000	2000	2000	20%	III
E	40000	20000	12	8000	3333	4667	23.33%	II

निष्कर्ष – प्रत्यावर्तन अवधि विधि तथा औसत प्रत्याय दर विधि दोनों की दृष्टि से परियोजना 'अ' का चुनाव अधिक लाभप्रद है।

(II) अपलेखित रोकड़ प्रवाह विधि (Discounted Cash Flow method or DCP method)

प्रत्यायवर्तन अवधि विधि व औसत प्रत्याय दर विधि में समय तत्व की उपेक्षा की जाती है। अतः अपलेंखित रोकड़ प्रवाह विधि में मुद्रा के समय मूल्य पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता है। इसीलिए इस विधि को कुछ

विद्वान वर्तमान मूल्य विधि (Present Value Method) अथवा समय समायोजित प्रत्याय विधि (Time Adjusted Rate of Return Method) भी कहते हैं। इस विधि की सर्वप्रथम चर्चा श्री जोयल डीन ने 1951 में प्रकाशित अपनी पुस्तक पूँजीगत बजटन में की थी। यह विधि इस वास्तविक धारणा पर आधारित है कि भविष्य में प्राप्त होने वाले एक रूपये का मूल्य वर्तमान काल के एक रूपये से कम होता है। किसी परियोजना पर धन का विनियोग तो वर्तमान में करना होता है जबकि उससे आय भविष्य की विभिन्न तिथियों पर होती हैं। अतः विनियोग की लागत की तुलना उसकी भावी आयो के वर्तमान मूल्य पर को जानी चाहिए। किसी विनियोग के भावी आय को वर्तमान मूल्य मिश्रित ब्याज की तरह ज्ञात किया जाता है। इसके लिए रोकड अन्तप्रवाहों को एक रूपये के वर्तमान मूल्य से अपलेखित किया जाता है। अपलेखित रोकड़ प्रवाह विधि के अन्तर्गत निम्नलिखित तीन विधियाँ प्रयुक्त की जा सकती हैं–

(अ) शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि

(ब) आन्तरिक प्रत्याय दर विधि तथा

(स) लाभदायकता सूचकांक विधि

इसका विस्तृत विवरण इस प्रकार है –

(अ) शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि –

यह विधि मुद्रा के समय मूल्य पर आधारित है इस विधि में शुद्ध वर्तमान मूल्य की गणना करने के लिए विनियोग से भविष्य में प्राप्त होने वाले रोकड़ अन्तर्प्रवाहों का वर्तमान मूल्य ज्ञात किया जाता है, इसमें से विनियोग लागत घटाने पर शुद्ध वर्तमान मूल्य की राशि ज्ञात की जाती है।

"शुद्ध वर्तमान मूल्य की गणना रोकड़ अन्तर्प्रवाहों के वर्तमान मूल्य के योग में रोकड़ बाह्‌य प्रवाहों के कुल मूल्य को घटा कर की जाती है। जबकि अन्तर्प्रवाहों एवं बाह्‌यप्रवाहों को संस्था की पूँजी लागत के बराबर कटौती दर से अपलेखित किया जाता हैं।"

यदि यह शुद्ध वर्तमान मूल्य धनात्मक हो तो विनियोग परियोजना

को स्वीकृत किया जाना चाहिए अन्यथा नहीं। इसी प्रकार अनेक परियोजनाओं में प्राथमिकता का निर्धारण उनके शुद्ध वर्तमान मूल्य के आधार पर किया जाता है। जिस विनियोग पर शुद्ध वर्तमान मूल्य अधिकतम होगा, उसे सर्वश्रेष्ठ कहा जाएगा।

शुद्ध वर्तमान मूल्य की गणना–किसी भी परियोजना का शुद्ध वर्तमान मूल्य निम्न प्रकार से सरलतापूर्वक ज्ञात किया जा सकता है।

1. व्यावसायिक उपक्रम की पूँजी लागत के आधार पर प्रकाशित प्रत्याय दर का निर्धारण किया जाता है।

2. भविष्य में प्राप्त होने वाले रोकड़ अन्तर्प्रवाहों के वर्तमान मूल्य को निध ारित करके जोड़ दिया जाता है।

3. उपरोक्त कुल वर्तमान मूल्य में से विनियोग लागत घटाकर शुद्ध वर्तमान मूल्य ज्ञात हो जाता है। सूत्र रूप में इस गणना विधि को निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

Net Present Value - Total Present Vaule-Investment

$$NPV = \frac{(I_1}{(1+r)} + \frac{I_2}{(1+r)^2} + \frac{I_3}{(1+r)^3} \ldots. \frac{I_n)}{(1+r)^n} - 0$$

Example 1:

एक्स लिमिटेड का प्रबन्ध एक मशीन क्रय करने का विचार कर रहा है जिसके रोकड़ अन्तप्रवाह इसके पांच जीवन वर्षों में निम्न प्रकार होंगे।

Rs.2000, Rs.4000, Rs.4000, Rs.2000 and Rs.1000

Cost of Machine - Rs. 6000

Expected Rate of Return - 10%

मशीन के शुद्ध वर्तमान मूल्य को ज्ञात कीजिए तथा इसकी लाभदायकता पर टिप्पणी कीजिए।

Solution

Year	Cash Inflows	Present Value Or Re.1 at 10% Or 0.1	Total present value at 10%
1	2000	1/1+.1=0.909	1818
2	4000	$1/1+.1)^2$=0.826	3304
3	4000	$1/1+ 1)^3$=0.751	3004
4	2000	$1/1+ 1)^4$=0.683	1366
5	1000	$1/1+ 1)^5$=0.621	621
		Total Present Value	10,113
		Less Initial Investment	6000
		Net Present value	4113

मशीन का वर्तमान मूल्य इसके विनियोग से अधिक है अतः शुद्ध वर्तमान मूल्य 4113 रू. धनात्मक है। इस मशीन को क्रय करना प्रबन्ध के लिए लाभदायक रहेगा।

Example : 2

एक्स इण्टरप्राइजेज लिमिटेड एक नया प्लाण्ट लगाने का विचार कर रही है। दो वैकल्पिक प्लाण्ट और उपलब्ध है, जिनमें से प्रत्येक की लागत रु0 40000 है। प्लाण्टों की लाभदाययकता की तुलना करने में बट्टे की दर 10 प्रतिशत प्रयोग करनी है। कर के बाद प्रत्याशित आय इस प्रकार से होगी–

Year	1	2	3	4	5
Plant (X) Rs.	15000	25000	20000	20000	15000
Plant (Y) Rs.	8000	15000	25000	30000	22000

कौन सा प्लाण्ट अधिक लाभप्रद विनियोग होगा? (नोट – एक रूपये का वर्तमान मूल्य 10 प्रतिशत के बट्टे पर 1,2,3,4 और 5 वर्ष के अन्त में क्रमश: 0.9091, 0.8264, 0.7513, 0.6830 और 0.6209 है)

Solution

Present Value of Cash Inflows-

Year	Cash Inflows		Present Value of Re.1 at 10% discounting	Total Present value	
	Machine X	Machine Y		Machine X	Machine Y
1	15000	8000	0.9091	13637	7273
2	25000	15000	0.8264	20660	12396
3	20000	25000	0.7513	15026	18783
4	20000	30000	0.6830	13660	20490
5	15000	22000	0.6209	9314	13660
Total Present Value				72797	72602
Less: Initial Investment				40000	40000
Net Present Value				32297	32602

निर्णय: चूँकि प्लाण्ट Y का कुल वर्तमान मूल्य प्लाण्ट X की तुलना में अधिक है, अत: प्लाण्ट का प्रस्ताव स्वीकार करना अधिक लाभप्रद होगा।

(ब) आन्तरिक प्रत्याय दर विधि (Rate of Return Method) -

परियोजना मूल्यांकन की इस विधि में आन्तरिक प्रत्याय दर (Internal Rate of Return or IRR) की गणना की जाती है यह वह दर है जिससे भावी रोकड़ प्रवाहों का वर्तमान मूल्य परियोजनाओं के प्रारम्भिक पूंजी विनियोग के ठीक बराबर होता है। ऐसी दशा में, शुद्ध वर्तमान मूल्य शून्य हो जाता है।

आन्तरिक प्रत्याय दर की परिभाषा – अमेरिका की नेशनल एसोसिएशन

ऑफ एकाउण्टेन्ट्स के अनुसार, "आन्तरिक प्रत्याय दर ब्याज की वह अधिकतम दर होती है जो किसी विनियोग में विनियोजित पूंजी पर बिना किसी हानि के उठाए भुगतान की जा सकती है।"

"आन्तरिक प्रत्याय दर को प्रत्याय की एक ऐसी दर के रूप में परिभाषित किया जाता है जो विनियोजन से प्राप्त होने वाले प्रत्याशित कुल रोकड़ अन्तर्प्रवाहों के वर्तमान मूल्य को विनियोजन के उठाए भुगतान से की जा सकती है।"

इस विधि का प्रयोग तब किया जाता है जबकि प्रत्याशित आय की दर (Required Rates of Return) न मालूम हो। यहाँ पर विचाराधीन परियोजनाओं से सम्बन्धित प्रारम्भिक पूंजी विनियोग की स्वयं की आन्तरिक दर को प्राप्त किया जाता है, न कि बाजार में प्रचलित बाहरी दर को। इसलिए इसे आन्तरिक प्रत्याय की दर कहा जाता है। कुछ विद्वान इसे समय समायोजित प्रत्याय दर (Time adjested rate of return), अपलेखित रोकड़ प्रवाह दर (Discount cash flow rate) आदि नामों से भी पुकारते हैं। निम्न बीजगणितीय सूत्र से आन्तरिक प्रत्याय दर ज्ञात की जा सकती है।

$$\frac{1_1}{(1+r)}+\frac{1_2}{(1+r)^2}+\frac{1_3}{(1+r)^3}\ldots\ldots\frac{1_n}{(1+r)^n}-0$$

IRR = Internal Rate of Return

$1^1\ 1^2\ 1^3$ = Inflows for different year

R = Rate of Return

O = Outflows

आन्तरिक प्रत्याय दर की गणना – आन्तरिक प्रत्याय दर ज्ञात करने हेतु निम्न दो परिस्थितियां हो सकती है : (क) रोकड अन्त प्रवाह की राशि समान होने पर, (ख) रोकड अन्तर्प्रवाह की राशि असमान होने पर।

(क) रोकड़ अन्तर्प्रवाह की राशि समान होने पर (In the case of even cash inflows)

ऐसी दशा में प्रारम्भिक विनियोग की राशि में रोकड़ अन्तर्प्रवाह की राशि से भाग दे दिया जाता है।प्राप्त भागफल की राशि को वर्तमान मूल्य कारक (Present value factor) कहते हैं। इस वर्तमान मूल्य कारक को वार्षिकी सारणी में दिए गये मूल्य के सामने देखा जाता है और यह जिस दर के अन्तर्गत आती है वही आन्तरिक प्रत्याय दर होती है।

उदाहरण के लिए,

यदि परियोजना की लागत 80000 रू. है और उसका जीवनकाल 5 वर्ष है तथा वार्षिक रोकड़ अन्तर्प्रवाह 20000 रू. है तो ऐसी दशा में

वर्तमान मूल्य कारक $\frac{80000}{20000} = 4$

यदि संचयी वर्तमान मुख्य सारणी में 5 वर्ष के सामने 4 को खोजें तो यह 8 प्रतिशत के नीचे ज्ञात होता है। 8 प्रतिशत पर वर्तमान मूल्य सारणी में 3993 आता है जो लगभग 4 वर्ष के बराबर है। अतः आन्तरिक प्रत्याय की दर 8 प्रतिशत होगी।

(ख) रोकड़ अन्तर्प्रवाह की राशि असमान होने पर (In the case of uneven cash inflows)-

यदि परियोजना से रोकड़ अन्तर्प्रवाहों की राशियाँ विभिन्न वर्षों में असमान हों तो आन्तरिक प्रत्याय दर की गणना भूल एवं सुधार (Trial and Error) – विधि द्वारा ज्ञात की जाती है। इसके अन्तर्गत कई दरों पर रोकड़ अन्तर्प्रवाहों के वर्तमान मूल्य की गणना की जाती है। और जिस दर पर रोकड़ अन्तर्प्रवाहों के वर्तमान मूल्य का योग उसकी विनियोग लागत के बराबर हो जाता है, वही आन्तरिक प्रत्याय दर मानी जाती है। इसके लिए निम्न तीन कदम उठाने पड़ते हैं।

1. प्रथम जांच दर का निर्धारण – प्रथम जांच दर के लिए वर्तमान मूल्य कारक की गणना निम्न प्रकार से की जाएगी।

$$\text{PV Factor} = \frac{\text{Initial Investment}}{\text{Average Annual Cash Inflows}}$$

फिर संचयी वर्तमान मूल्य सारणी में परियोजना के आर्थिक जीवन के वर्ष की पंक्ति में दिए गये कारकों में PV Factor के निकटतम कारक को ज्ञात किया जाता है। इस कारक की पंक्ति में खड़ी और दी गई दर प्रथम जांच हर होगी। इस दर से सभी वर्षों के रोकड़ अन्तर्प्रवाहों का वर्तमान मूल्य प्राप्त किया जाएगा।

2. द्वितीय जांच दर–प्रथम जांच दर से ज्ञात किये गए वर्तमान मूल्य के योग की तुलना विनियोग लागत से की जाएगी। यदि वह अधिक आता है तो अगली जांच के लिए ऊंची दर का प्रयोग करके रोकड़ अन्तर्प्रवाहों का वर्तमान मूल्य निकाला जाएगा। सके विपरीत, यदि वर्तमान मूल्य विनियोग लागत से कम आता हो, तो दूसरी जांच दर के लिए नीची दर का प्रयोग करके रोकड़ अन्तर्प्रवाहों का वर्तमान मूल्य निकाला जाएगा।

3. वास्तविक प्रत्याय दर – वास्तविक प्रत्याय दर प्रथम व द्वितीय जांच दर के बीच होती है जिसकी गणना के लिए सांख्यिकी के निम्न आन्तरगणन सूत्र का प्रयोग किया जाता है।

$$IRR = LDR + \frac{P1 - O}{P1 - P2} \times (HDR - LDR)$$

IRR = Internal rate of return

LDR = Lower Discount rate

HDR = Higher Discount Rate

P1 = Present value at lower rate of interest

P2 = Present value at higher rate of interest

O = Net Cash Outflow

Example : 1

एक परियोजना के निम्न विवरणों से आन्तरिक प्रत्याय दर की गणना कीजिए–

Cash Inflows per year : 1 Nil: 2 Rs. 5000 : 3 Rs. 8000 : 4 Rs. 12000 : 5 Rs. 15000 : 6 Rs. 15000.

Solution,

Calculation of Internal Rate of Return

Year	Cash Inflows	First Attempt at 18%		Second Attempt at 20%	
		PV Factor	Present Factor	PV Factor	Present Factor
1	-	-	-	-	-
2	5000	0.178	3590	0.694	3470
3	8000	0.609	4872	0.579	4632
4	12000	0.516	6192	0.482	5784
5	15000	0.437	6555	0.402	6030
6	15000	0.370	5550	0.335	5025
	Total Present Value		26759		24941

सर्वप्रथम 18 प्रतिशत की दर प्रयुक्त करने पर वर्तमान मूल्य 26759 रू. है जो विनियोग 25000 रू. से अधिक है। अतः ऊँची दर 20 प्रतिशत का प्रयोग किया। 20 प्रतिशत की दर से वर्तमान मूल्य 24941 रू. आया जो 25000 रू. से काफी नजदीक है। अतः आन्तरिक प्रत्याय दर 20 प्रतिशत कही जा सकती है। इसे अगर पूर्णतया शुद्ध ज्ञात करना चाहें तो निम्न सूत्र का प्रयोग करेंगे:

$$IRR = KDR + \frac{P_1 - O}{P_1 - P_2} \times (HDR - LDR)$$

$$= 18 + \frac{26,759 - 25,000}{26,759 - 24,941} \times 20 - 18$$

$$= 18 + \frac{1,759}{1,818} \times 2$$

IRR = 18 + 1.93 = 19.93%

आन्तरिक प्रत्याय दर विधि के गुण – परियोजना मूल्यांकन की यह विधि निम्न कारणों से अधिक प्रयुक्त होती है :

- इसमें विनियोग के सम्पूर्ण जीवनकाल में होने वाली आय का विचार किया जाता है। यह विधि समय तत्व पर ध्यान देती है।
- इस विधि में परियोजना के मूल्यांकन हेतु पहले से प्रत्याशित प्रत्याय दर ज्ञात होना जरूरी होता है।
- आन्तरिक प्रत्याय दर की तुलना पूंजी लागत से करके प्रस्तावों की स्वीकृति एवं प्राथमिकता का क्रम निर्धारण आसानी से किया जा सकता है।
- आन्तरिक प्रत्याय दर विधि के दोष (Demerits) इस विधि में निम्न कमियां पाई जाती हैं।
- इस विधि को समझना तुलनात्मक रूप से कठिन है। और जटिल गणित प्रक्रिया प्रयुक्त होते हैं।
- यह विधि इस मान्यता पर आधारित है कि संस्था अपने वार्षिक रोकड़ अन्तर्प्रवाहों का पुनर्विनियोजन तत्काल करके आन्तरिक प्रत्याय दर अर्जित करेगी, परन्तु व्यवहार में सदैव ऐसा नहीं होता है।
- इस विधि में परियोजना की स्वीकार्यता ज्ञात करने के लिए प्रत्याशित प्रत्याय दर निर्धारित करनी होती है जो कि एक दुष्कर कार्य है।
- यदि किन्हीं वर्षों में रोकड़ अन्तर्प्रवाह ऋणात्मक हो तो समान रोकड़ अन्तर्प्रवाहों से हमें दो या अधिक प्रत्याय दरें उपलब्ध हो सकती हैं।
- यह विधि खुले बाजार में बाजार दर पर उधार लेने व देने की सम्भावनाओं पर ध्यान नहीं देती है।

शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि तथा आन्तरिक प्रत्याय दर विधि का तुलनात्मक अध्ययन (Comparative study of Net Present Vlaue Method and Internal Rate of Return Method)

परियोजनाओं के मूल्यांकन की ये दोनों ही विधियां मुद्रा के समय मूल्य (Time Value & Money) को महत्व हेती है। और रोकड़ अन्तर्प्रवाहों को अपलेखित किया जाता है। परन्तु इन समानताओं के बावजूद भी दोनों विधियों में निम्न अन्तर पाया जाता है:–

– शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि में अपलेखन की दर या पूंजी की लागत पहले से दी हुई होती है जबकि आन्तरिक प्रत्याय दर विधि में इसे बाद में ज्ञात किया जाता है।

– शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि में प्रत्याशित प्रत्याय दर **(Required rate of return)** एक ज्ञात चल होती है जबकि आन्तरिक प्रत्याय दर विधि में यह अज्ञात चल होती है।

– शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि में यह ज्ञात किया जाता है कि किसी परियोजना में अधिकतम कितनी राशि विनियोजित की जाए ताकि सम्भावित आय से विनियोग की राशि बाजार दर पर ब्याज सहित चुकाई जा सके। जबकि आन्तरिक प्रत्याय दर विधि में ब्याज की वह अधिकतम दर ज्ञात की जाती है। जिससे किसी भी परियोजना में विनियोजित धन को परियोजना की आयों से चुकाया जा सके।

शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि दूसरी विधि से अधिक सरल है क्योंकि इसमें भूल और सुधार की आवश्यता नहीं होती है।

शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि में पूंजी बाजार के अस्तित्व को स्वीकार किया जाता है। जबकि आन्तरिक प्रत्याय दर विधि में नहीं।

(स) y kHkn k; d r k l p d ka fo f/k **(Profitability Index Method)-**

इस विधि को लाभ–लागत अनुपात विधि **(Benefit-Cost Ratio Method)-** के नाम से भी जाना जाता है। जब परियोजना में विनियोग की लागत भिन्न–भिन्न हो तो सर्वश्रेष्ठ परियोजना का चुनाव करने के लिए लाभदायकता सूचकांक की गणना की जाती है। इसकी गणना करने का सूत्र है।

$$Profitability\ Index = \frac{Net\ Present\ Value\ of\ Cash\ Outflows}{Initial\ Investment}$$

व्यवहार में यदि विभिन्न परियोजनाओं की विनियोग लागतों में बहुत अन्तर हो तो शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि उनकी लाभदायकता का सही मूल्यांकन नहीं कर पाती है। ऐसी दशा में लाभदायकता सूचकांक की गणना ठीक मानी

जाती है। यदि विधि विभिन्न मात्रा के विनियोग प्रस्तावों में तैयार तुल्यता प्रदान करती है। यदि सूचकांक एक से अधिक हो तो विनियोग प्रस्ताव को स्वीकार किया जाता है, अन्यथा नहीं। विभिन्न परियोजनाओं के चुनाव में वह परियोजना श्रेष्ठ मानी जाती है जिसका सूचकांक सर्वाधिक हो। किसी विनियोग प्रस्ताव का लाभदायकता सूचकांक जितना अधिक हो, उसे उतना ही आकर्षक माना जाता है।

Example : 1

वाय लिमिटेड तीन स्वतंत्र प्रस्तावों पर विचार कर रही है। कम्पनी कुल पूंजी लागत 10 प्रतिशत है तथा परियोजनाओं से प्रत्याशित रोकड़ प्रवाह नीचे दिये गये हैं।

Project	Investment Required Now	Cash Inflows				
		1st Year	2nd Year	3rd Year	4th Year	5th Year
A	10000	12000	3000	-	-	-
B	14000	-	-	10000	5000	7000
C	9000	-	4000	5000	5000	2000

लाभदायकता सूचकांकों के आधार पर प्रस्तावों को क्रमबद्ध कीजिए।

Solution

Year	Cash Inflows			PV Factors @ 10%	Present values		
	Project A	Project B	Project C		Project A	Project B	Project C
1	12000	-	-	0.909	10908	-	-
2	3000	-	4000	0.826	2478	-	3304
3	-	10000	5000	0.751	-	7510	3755
4	-	5000	5000	0.683	-	3415	3415
5	-	7000	2000	0.621	-	4347	1242
	Total Present value				13386	15272	11716
	Less: Initial Investment				10000	14000	9000
	Net Presetn values				3386	1272	2716

$$Present\ Value\ Index = \frac{Present\ Value\ of\ Cash\ Inflows}{Initial\ Investment}$$

$$Project\ A = \frac{Rs.13,386}{Rs.10,000} = 1.339$$

$$Project\ B = \frac{Rs.15,272}{Rs.14,000} = 1.091$$

$$Project\ C = \frac{Rs.11,716}{Rs.9,000} = 1.302$$

चूँकि परियोजना ए का लाभदायकता सूचकांक सर्वाधिक है अतः वह प्रथम स्थान पर परियोजना सी को द्वितीय स्थान पर, और परियोजना बी को तृतीय स्थान पर रखा जाना चाहिए।

(III) अपरिहार्यता विधि (Urgency Method)-

किसी व्यावसायिक संस्था के जीवनकाल में कई बार पूंजी व्यय निर्णय किसी पूर्व निश्चित योजना के आधार पर न लिए जाकर अपरिहार्यता के आधार पर लिए जाते हैं। इस विधि के अनुसार ऐसी परियोजनाओं को पहले लिया जाता है जो अत्यावश्यक हो और जिन्हें स्थगित करना सम्भव न हो। जैसे, किसी पुरानी मशीन के ध्वस्त (Break down) हो जाने पर शीघ्रता के कारण उसकी मरम्मत न कराकर तुरन्त नई मशीन से प्रतिस्थापन ही उचित होगा। यद्यपि यह निर्णय आर्थिक दृष्टि से अवांछनीय हो सकता है, परन्तु उत्पादन कार्य चालू करने हेतु अपरिहार्य होता है। "समस्त फर्मों में परियोजना की वांछनीयता की जाँच करने का सर्वाधिक प्रचलित तरीका अपरिहार्य होता है।" कभी कभी वैधानिक प्रावधानों को क्रियान्वित करने के कारण भी स्थाई विनियोग अपरिहार्य हो जाता है भले ही उसकी आर्थिक उपादेयता न हो।

गुण–दोष – यह विधि सरल व बोधगम्य होने के बावजूद दीर्घकालीन प्रभाव वाली परियोजनाओं के लिए प्रभावहीन होती है। अपरिहार्यता के आधार पर लिए गये निर्णय संयोग से उचित सिद्ध हो जावें नहीं तो इनका कोई आर्थिक व वैज्ञानिक आधार नहीं होता। कभी–कभी विभागीय अधिकारी लागत व लाभ की अवहेलना करके उच्च–स्तरीय प्रबन्ध की चापलूसी के

द्वारा अपरिहार्यता बताकर परियोजना हेतु धन स्वीकृत करा लेते हैं। संस्था में आन्तरिक संघर्ष की स्थिति भी पैदा हो सकती है।

(IV) प्रत्यावर्तन अवधि विधि (Pay Back or Recoupment Period Method)-

व्यावसायिक संस्था लाभ को अधिकतम करने के साथ ही साथ स्थाई सम्पत्तियों में विनियोजित लागत को न्यूनतम अवधि में वसूल करना भी चाहती है। प्रत्यावर्तन अवधि यह समय होता है जिसमें परियोजना की मूल लागत वापस प्राप्त कर ली जाती है। यह विधि पूंजी विनियोग और उससे प्राप्त होने वाले सम्भावित लाभों के बीच समय के रूप में सम्बन्ध स्थापित करती है। प्रत्यावर्तन अवधि की परिभाषा निम्नलिखित है।

"प्रत्यावर्तन अवधि परियोजना की संख्या बताती है। जिसमें परियोजना की मूल रोकड़ लागत वापस प्राप्त हो जाती है।"

"प्रत्यावर्तन अवधि परियोजना की लागत के प्रत्याशित पुर्नभुगतान को प्रदर्शित करती हैं।"

इस प्रकार प्रत्यावर्तन अवधि वह अवधि होती है जिसमें परियोजना की लागत की अदायगी होने की सम्भावना होती है। इसे रोकड़ वसूली अवधि (Cash Recovery Period) वसूली अवधि (Payment or Recoupment Period) भी कहते हैं। प्रत्यावर्तन अवधि की गणना निम्न दो प्रकार से कर सकते हैं।

(1) समान रोकड़ अर्न्तप्रवाह की दशा में (In the case of even cash inflows)-

यदि विनियोग से रोकड़ अन्तर्प्रवाह की दर प्रति वर्ष समान हो तो विनियोग की लागत में वार्षिक रोकड़ अन्तर्प्रवाह की राशि से भाग देकर प्रत्यावर्तन अवधि प्राप्त की जाती है।

सूत्र रूप में,

$$Payback\ Period = \frac{Original\ Investment}{Annual\ Cash\ Inflow}$$

उदाहरणार्थ,

यदि किसी परियोजना में 100000 रू. विनियोग करके 10 वर्ष तक 20000 रू. वार्षिक आय (शुद्ध रोकड़ अन्तर्प्रवाह) होता है तो प्रत्यावर्तन अवधि होगी –

$$Pay back\ Period = \frac{100000}{20000} = 5\,Years$$

(2) असमान रोकड़ अन्तर्प्रवाह की दशा में (In the case of uneven cash inflows)-

यदि विनियोग से रोकड़ अन्तर्प्रवाह की दर प्रति वर्ष असमान रहती है तो प्रत्यावर्तन अवधि की गणना संचयी शुद्ध रोकड़ अन्तर्प्रवाह के द्वारा की जाती है। प्रत्येक वर्ष के रोकड़ अन्तर्प्रवाह को अगले वर्ष की राशि से जोड़ा जाता है और जिस अवधि में संचयी रोकड़ अन्तर्प्रवाह की राशि विनियोग की राशि के बराबर हो जाती है, उसे प्रत्यावर्तन अवधि कहते हैं।

उदाहरणार्थ,

यदि किसी परियोजना में 100000 रु. का विनियोग करने पर पहले, दूसरे, तीसरे व चौथे वर्ष में क्रमशः 10,000 रू, 20,000 रू, 30000 रू, और 40,000 रू. की रोकड़ अन्तर्प्रवाह हो तो प्रत्यावर्तन अवधि अग्रगणना के अनुसार चार वर्ष होगी।

Year	Initial Investment Rs	Cash Inflows Rs	Commulative Cash Inflows Rs
1	100000	10000	10000
2	-	20000	30000
3	-	30000	60000
4	-	40000	100000

Pay-back period = 4 years

परियोजना का मूल्यांकन (Evaluation of the project)

जिस परियोजना की प्रत्यावर्तन अवधि जितनी कम होगी, वह अपनी

लागत को उतनी जल्दी वापस कर देगी। इस विधि में परियोजना की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति का आधार यह होता है कि जिसकी प्रत्यावर्तन अवधि उच्च प्रबन्ध द्वारा निर्धारित मानक प्रत्यावर्तन अवधि (Standard pay back period) से अधिक होती है उसे अस्वीकार कर दिया जाता है। पाश्चात्य देशों विशेषकर अमेरिका व ब्रिटेन में चार पांच वर्षों में जो योजना अपनी लागत पूरी कर दे, उसे ही आमतौर पर स्वीकृति दी जाती है। अनेक वैकल्पिक परियोजनाओं की दशा में सबसे कम प्रत्यावर्तन अवधि अपनी परियोजना को प्रथम स्थान दिया जाता है। और शेष को उसी क्रम में क्रमबद्ध कर लिया जाता है।

विधि के गुण (Merits) – प्रत्यावर्तन अवधि विधि के मुख्य गुण निम्नलिखित है।

- इसको समझना व प्रयोग करना बहुत सरल है।
- ऐसी संस्थाओं के लिए जिनके पास रोकड़ की कमी हो यह विधि उपयुक्त है। क्योंकि लघु प्रत्यावर्तन अवधि वाली योजना का चयन करने से विनियोजन लागत शीघ्रता से वसूल हो जाती है।
- ऐसे उद्योग ज़िनमें तकनीकी परिवर्तन तेजी से हो रहे हों, मशीनों के अप्रचलित होने का भय रहता है। अतः उन परियोजनाओं का चुनना बेहतर रहता है जिसकी प्रत्यावर्तन अवधि कम हो और अपचजन से होने वाली हानि को कम किया जा सकता हो।
- प्रत्यावर्तन अवध्रि पूर्व निश्चित होने के कारण जोखिम व अनिश्चितता की मात्रा में कमी होती है।

विधि के दोष (Demerits) – प्रत्यावर्तन अवधि के दोष इस प्रकार हैं –

- यह पद्धति विनियोग की लागत वापसी पर जोर देती है तथा लाभदायकता को अनदेखा कर देती है। कुछ चिन्तक इस विधि को मछली ध ।ारा कसौटी (Fish bait Criterion) के रूप में सम्बोधित करते हैं क्योंकि इसमें मछली के आकार (अर्थात लाभ) की बजाय चारों की वसूली (लागत) पर ही बल दिया जाता है।

यदि विधिस प्रत्यावर्तन अवधि के बाद के रोकड़ अन्तर्प्रवाहों की भी उपेक्षा करती है।

यह विधि 'समय तत्व' (Time element) पर ध्यान नहीं देती है। बाद के वर्षों में प्राप्त होने वाली राशि का वर्तमान मूल्य इस विधि में नहीं निकाला जाता है।

इसमें सम्पत्ति के अवशेष मूल्य को पूर्णतया विस्तृत कर दिया गया है।

यह रीति पूँजी की लागत, जो विनियोग निर्णय का सबसे प्रमुख कारक है को ध्यान में नहीं रखती हैं।

इस विधि में पूंजी विनियोग के प्रारम्भ के वर्षों में होने वाली आय के आधार पर निर्णय किया जाता है जो कभी कभी उचित सिद्ध नहीं होता। कुछ परियोजनाएं ऐसी होती है। जो प्रारम्भिक वर्ष में लाभार्जन कम करती हैं बाद में बहुत अधिक लाभार्जन करती है जबकि ऐसी परियोजना को इस विधि में अस्वीकृत कर दिया जाएगा।

Example-1

कैमिकल इण्डस्ट्रीज लिमिटेड एक मशीन क्रय करना चाहती है। दो मशीने अ और ब उपलब्ध हैं, जिनमें प्रत्येक का मूल्य 30,000 रू. है । अग्र सूचनाओं के आधार पर दोनों विकल्पों का मूल्यांकन प्रत्यावर्तन अवधि विधि के अनुसार कीजिए।

	Machine A	Machine B
Sales Revenue	Rs.40,000	Rs.45,000
Variable cost	60% of sales	50% of sales
Fixed cost (Other than depreciation)	Rs. 1,500	Rs.3,000
Life of Machine	8 years	10 years
Income Tax Rate	50%	50%

Solution

Statement showing cash inflows and Pay-Back Period

Particulars	Machine A	Machine B
Sales	40,000	45,000
Less: Variable cost	24,000	22,500
	16,000	22,500
Less : Fixed cost	1,500	3,000
	14,500	19,500
Less: Depreciation	3,750	3,000
	10,750	16,500
Less; Income tax 50%	5,375	8,250
Profit after Tax	5,375	8,250
Add: Depreciation	3,750	3,000
Net Annual cash inflows	9,125	11,250
	$\frac{30,000}{9,125}$ = 3.3 Years	$\frac{30,000}{11,250}$ = 2.7 years

दोनों मशीनों में मशीन ब की प्रत्यावर्तन अवधि कम है, इसलिए इसे ही क्रय करना उत्तम रहेगा।

दो परियोजनाओं के सम्बन्ध में निम्न विवरण है :

Example -2

	Project X	Project Y
Cost of Machines	Rs.1,00,000	Rs. 60,000
Cost of Indirect Materials p.a.	3,200	2,400
Additional cost of Supervision p.a.	6,400	4,800
Additional Cost of Maintenance p.a.	4,400	2,800
Estimated Savings in Scrap p.a.	6,000	4,000
Estimated Savings in Wages		
A) Wages per workers p.a.	2,400	2,400
B) No. of workers not required	200	150

कर की दर लाभ का 50 प्रतिशत है (कर की गणना के लिए ह्रास को ध्यान मे न रखें) प्रत्यावर्तन अवधि के आधार पर आप किस परियोजना की संस्तुति देंगे?

Solution,

Statement of profitability and pay-back period.

Particulars	Project X	Project Y
Estimated Savings in Scrap	6,000	4,000
Estimated savings in wages	48,000	36,000
(A) Total savings	54,000	40,000
Cost of Indirect materials	3,200	2,400
Cost of Supervision	6,400	4,800
Cost of Maintenance	4,400	2,800
(B) Total cost	14,000	10,000
(C) Net Savings (A-B)	40,000	30,000
Less: Tax @ 50%	20,000	15,000
(D) Net Savings (After tax)	20,000	15,000
(E) Cost of Machines	1,00,000	60,000
(F) Pay-Back Period (E/D)	5 Years	4 Years

दोनों परियोजनाओं में वाई की प्रत्यावर्तन अवधि कम है अतः उसे क्रय करने की संस्तुति देना उत्तम रहेगा।

Example -3

गुड लक कम्पनी एक मशीन के क्रय का विचार कर रही है। दो मशीने अ तथा ब उपलब्ध हैं प्रत्येक की लागत 50,000रू. है। कर उपरान्त निम्न आय प्रत्याशित है।

Year	Machine A	Machine B
1	15,000	5,000
2	20,000	15,000
3	25,000	20,000
4	15,000	30,000
5	10,000	20,000

प्रत्यावर्तन अवधि और प्रत्यावर्तन अवधि के उपरान्त लाभदायकता की गणना करते हुए समझाइये कि किस मशीन को चुनना चाहिए।

Solution,

(1) Pay back period method

Year	Machine A		Machine B	
	Cash Inflow	Cumulative Cash Inflow	Cash Inflow	Cumulative Cash Inflow
	Rs	Rs	Rs	Rs
1	15000	15000	5000	5000
2	20000	35000	15000	20000
3	25000	60000	20000	40000
4	15000	75000	30000	70000
5	10000	85000	20000	90000

Pay Back period of Method A = 2 Years + 15000/25000 years

= 2-3/5 Years

Pay back period of method B = 3 years + 10000/30000 years

= 3-1/3 Years

प्रत्यावर्तन अवधि विधि के अनुसार मशीन अ का क्रय उत्तम रहेगा क्योंकि उसकी अवधि कम है।

(2) Pay back Period Method

Machine A		Machine B	
	Rs		Rs
3rd Year (2/5)	10000	4th Year (2/3)	20000
4th Year	15000	5th year	20000
5th Year	10000		
	35000		40000

प्रत्यावर्तन अवधि उपरान्त विधि के निर्णयानुसार मशीन ब की लांभोत्पादकता मशीन अ से उत्तम है अतः मशीन ब का क्रय उचित रहेगा।

2.9 सारांश

पूंजी बजटन प्रबन्धकीय निर्णय की एक महत्वपूर्ण व. जटिल समस्या है। इसका सम्बन्ध एक क्रमबद्ध विनियोग कार्यक्रम को बनाने व लागू करने से होता है। इसमें ऐसे खर्चों का नियोजन शामिल हैं जिनसे कई वर्षों तक प्रतिफल प्राप्त होने की संभावना होती है। पूंजी बजटन के अन्तर्गत प्रस्तावित पूंजी खर्चों व उनके अर्थ प्रबन्धन पर विचार किया जाता है और उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम लाभप्रद प्रयोग देने वाली परियोजना का ही चुनाव किया जाता है अर्थात् दीर्घकालीन विनियोगों में विनियोजन करते समय लाभ व धन का अधिकतमीकरण है।

2.10 शब्दावली

- आन्तरिक प्रत्याय दर – यह रीति समय समायोजित उस प्रत्याय की दर का मापन करती है जिसे आयों के द्वारा विनियोग प्राप्त करने की आशा की जाती है।
- अपरिहार्यता – जहाँ किसी पूंजी खर्च की अपरिहार्यता महत्वपूर्ण हो

वहाँ पर निर्णय लागत व लाभ की तुलना भुलाकर पूंजी खर्च का निर्णय तदर्थ रूप से लिया जाता है।

- पे बैक पीरियड – पे बैक पीरियड सें आशय कुल लागत अर्थात् विनियोग को पुनः वापस लाने में लगे समय से है। अर्थात अनुमानित वार्षिक बचत के आधार पर कितने वर्षों में पूंजी खर्च की कुल रकम वापस प्राप्त हो जाएगी।

- नेट प्रेजेन्ट वैल्यू – इस विधि के अन्तर्गत वर्तमान मूल्य विनियोगों की लागत के बराबर या उससे अधिक होती है तो परियोजना का अनुमोदन किया जाता है। यदि वर्तमान मूल्य लागत से कम हो तो परियोजना को लाभप्रद नहीं माना जा सकता।

2.11 स्व–परक प्रश्न

1. पूंजी बजटन को समझाते हुए इसके महत्व पर प्रकाश डालिए।
2. पूंजी बजटन की विभिन्न विधियों की विस्तारपूर्वक व्याख्या कीजिए।
3. पूंजी बजटन की प्रक्रिया का एक औद्योगिक संस्था के दृष्टिकोण से क्या महत्व है?
4. पूंजी बजटन के विभिन्न विधियों का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उदाहरण सहित परीक्षण कीजिए।
5. पूंजी बजटन की अपलेखित रोकड़ प्रवाह विधि को विस्तार से स्पष्ट कीजिए तथा शुद्ध वर्तमान मूल्य तथा आन्तरिक प्रत्याय दर उपागमों का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।

इकाई – 3 पूंजी संरचना के सिद्धान्त (Capital Structure Theories)

इकाई की सरचना

3.1 उद्‌देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 पूंजी संरचना का अर्थ

3.4 पूंजी संरचना के सिद्धान्त

3.5 सारांश

3.6 शब्दावली

3.7 स्व–परक प्रश्न

3.1 उद्‌देश्य

आप इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त इस योग्य हो सकेंगे कि –

- पूंजी संरचना को समझा सकें,
- पूंजी संरचना के सिद्धान्तो को बता सकें,
- पूंजी संरचना के सिद्धान्तों का विश्लेषण कर सकें,
- पूंजी संरचना की भूमिका का संगठन में महत्व बता सकें।

3.2 प्रस्तावना

किसी भी संगठन में पूंजी संरचना के सिद्धान्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जिससे एक कम्पनी अपनी पूंजी संरचना का निर्माण अपनी आवश्यकताओं के आधार पर निर्धारित करती है। पूंजी संरचना के सिद्धान्त कम्पनी की पूंजी की संरचना कैसे मजबूत हो सके उन सिद्धान्तों के आधार पर पूंजी का निर्माण किया जाता है। पूंजी संरचना के सिद्धान्तों को प्रस्तुत इकाई में क्रमानुसार दर्शाया गया है।

अतः पूंजी मिश्रण का स्वरूप अर्थात प्रतिभूतियों के बीच अनुपात निर्धारित करते समय अनेक तथ्यों को ध्यान में रखना पड़ता है। पूंजी ढांचे का निर्माण करते समय प्रतिभूतियों को अपनी विशेषताएं, विभिन्न प्रतिभूतियों की औसत लागत, संस्था पर नियंत्रण का स्वरूप, जोखिम की मात्रा इत्यादि बातों को ध्यान में रखना चाहिए।

3.3 पूँजी संरचना का अर्थ

वित्तीय प्रबन्धक विभिन्न प्रतिभूतियों के बीच पारस्परिक अनुपात का निर्धारण अनेक मान्यताओं एवं परिस्थितियों के संदर्भ में करता है। पूंजी ढाँचा का स्वरूप अर्थात प्रतिभूतिओं के बीच अनुपात निर्धारित करते समय अनेक तथ्यों को ध्यान में रखना पड़ता है। पूंजी ढांचा इस तरह होना चाहिये कि कम्पनी के स्वामियों के हितों की सुरक्षा हो सके और उन्हें अनुकूलतम आय हमेशा मिलती रहे। पूंजी ढांचा अनुकूलतम आय की उपलब्धता प्रदान करता है। पूंजी ढांचे का निर्माण करते समय प्रतिभूतियों की निजी विशेषताएं, औसत लागत, संस्था पर नियंत्रण का स्वरूप और जोखिम की मात्रा आदि तत्व महत्वपूर्ण हैं।

3.4 पूंजी संरचना के सिद्धान्त (Theories of Capital Structure)

पूंजी ढांचा, पूंजी की लागत और कम्पनी के मूल्यांकन के बीच सम्बन्ध को नियंत्रित करने वाले अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। कम्पनी के मूल और पूंजी की कुल लागत के बीच जो सम्बन्ध होता है जबकि अन्य मतानुसार दोनों में कोई सम्बन्ध नहीं होता है। किसी संस्था के कुल पूंजीकरण में ऋण एवं समता पूंजी का मिश्रण संस्था की पूंजी की लागत एवं उसके कुल मूल्य को प्रभावित करता है। किसी संस्था का कुल मूल्य संभावित अर्जनों एवं पूँजी की लागत पर निर्भर करता है। अतः किसी संस्था की पूंजी संरचना के सम्बन्ध में निर्णय लेने से पूर्व पूंजी की लागत एवं उसका संस्था के मूल्य पर पड़ने वाले प्रभावों का ज्ञान होना आवश्यक है। इस दृष्टि से पूंजी संरचना के सिद्धान्त किसी संस्था की पूंजी संरचना में पूंजी की लागत एवं उसका संस्था के मूल्य पर पड़ने वाले प्रभावों को बताते हैं। पूंजी संरचना के

निम्नलिखित चार प्रमुख सिद्धान्त हैं।

1. शुद्ध आय सिद्धान्त (Net Income Theory) –

यह उपागम डूरण्ड के द्वारा दिया गया था। इस सिद्धान्त के अनुसार पूंजी की लागत और संस्था के मूल्य में सम्बन्ध होता है। अर्थात पूंजी संरचना के परिवर्तन से संस्था की पूंजी की लागत एवं उसका कुल मूल्य प्रभावित होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार एक संस्था को अपने पूंजी संरचना में ऋण पूंजी का अधिक से अधिक प्रयोग करना चाहिये। ऐसा करने से संस्था की पूंजी की लागत न्यूनतम हो जाती है और समता अंश पूंजी पर प्रत्याय की दर में वृद्धि हो जाती है। यह सिद्धान्त निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है–

- पूंजी संरचना में ऋण पूंजी में वृद्धि होने पर समता अंशधारियों की दृष्टि से जोखिम धारणा में कोई परिवर्तन नहीं आता है।
- इस उपागम के अनुसार अनुकूलतम पूंजी संरचना, पूंजी की लागत न्यूनतम और संस्था का कुल मूल्य अधिकतम हो इसी मान्यता पर आधारित है।
- समता पूंजी की लागत ऋण पूंजी की लागत से अधिक होती है।
- आयकर पर ध्यान नहीं दिया जाता है।

शुद्ध आय सिद्धान्त के अनुसार संस्था का कुल मूल्य समता अंशों के बाजार मूल्य एवं ऋण के बाजार मूल्यों के योग के बराबर होता है। इसे निम्न सूत्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

Total value of Firm = Market value of equity shares + market value of Debt.

or $V = S + D$

उपर्युक्त सूत्र में समता अंशों के बाजार मूल्य का निर्धारण निम्न प्रकार किया जाता है –

Market value of equity shares

$$= \frac{Earnings\ available\ for\ Equity\ Shareholders}{Cost\ of\ Equity\ Capital\ or\ Equity\ Capitalisation\ Rate}$$

$$S = \frac{E}{Ke} \quad or \quad \frac{EBIT - I}{Ke}$$

उपर्युक्त चरण में संस्था की पूंजी की समस्त लागत (Overall cost of capital) का निर्धारण निम्न प्रकार किया जाता है -

Overall cost of capital = Earnings before Interest and Tax
Value of the firm

$$Or \ K_o = \frac{EBIT}{V}$$

Example : 1

एंक्स लिमिटेड की ब्याज और कर से पूर्व आय 1,10,000 रू. है कम्पनी के पास 9 प्रतिशत वाले 4,50,000 रू. के ऋण पत्र हैं। समत पूंजीकरण की दर 15 प्रतिशत है। शुद्ध आय सिद्धान्त के अनुसार निम्न परिस्थितियों में कम्पनी का मूल्य ज्ञात कीजिये।

(अ) कम्पनी का वर्तमान कुल बाजार मूल्य एवं पूंजी की समग्र लागत,

(ब) यदि ऋणपत्रों को 2,50,000 रू.से बढ़ा दिया जाये और प्राप्ति को समता अंशों से कम कर दिया जाये तथा

(स) यदि ऋणपत्रों को 2,50,000 रू. से घटा दिया जाये और नये समता अंशों का निर्गमन किया जाये जिससे ऋणपत्रों का शोधन कर दिया जाये।

Solution,

(a) (i) Calculation of Existing Total Market Value of the company:

	Rs.
Earnings before interest and tax (EBIT)	1,10,000
Less Interest on Debentures (I)	40,500
Earnings available to equity shareholders (E)	69,500
Equity capitalization rate (Ke)	15%
Market value of equity shares (S) $S = \frac{69,500}{15\%} =$	4,63,333.33
Add Market value of Debentures (D)	4,50,000
Total value of the company (V = S +D)	9,13,333.33

Calculation of Existing Overall Cost of Capital:

$$Ko = \frac{EBIT}{V} \times 100 \, or \, \frac{1,10,000}{9,13,333.33} \times 100 = 12.04\%$$

(b) (i) Effect on Value of Company if Debentures is increased to Rs 7,00,000

Earnings before interest and tax (EBIT)	1,10,000
Less : Interest on debentures (I)	63,000
Earnings available for equity shareholders (E)	47,000
Equity capitalization rate (Ke)	15%
Market value of equity shares (S)	3,13,333

$$(S = \frac{E}{Ke} \, or \, \frac{47000)}{15\%} = 3,13,333$$

Add : Market value of debentures (D)	7,00,000
Total value of the company (V=S+D)	10,13,333

(ii) Effect on Overall cost of capital

$$KO = \frac{EBIT}{V} \times 100 \, or \, \frac{1,10,000}{10,13,333} \times 100 = 10.85\%$$

(C) (i) Effect on Value of Company if Debentures its decreased to Rs. 2,50,000 :

Earnings before interest and tax (EBIT)	1,10,000
Less Interest on Debentures (1)	18,000
Earnings available for equity shareholders (E)	92,000
Equity capitalization rate (Ke)	15%
Market value of equity shares (S)	6,13,333

$$\left(S = \frac{E}{Ke} \, or \, \frac{92,000}{15\%}\right)$$

Add : Market value of debentures (D)	2.50.000
Total value of company (V = S+D)	8,64,333

(ii) Effect on Overall cost of capital:

$$Ko = \frac{EBIT}{V} \times 100 \, or \, \frac{1,20,000}{8,63,333} \times 100 = 12.74\%$$

उपर्युक्त गणना से स्पष्ट होता है कि यदि कम्पनी की पूंजी संरचना में ऋण पूंजी में परिवर्तन किया जाता है तो इसका प्रभाव कम्पनी के कुल मूल्य एवं पूंजी की लागत पर भी पड़ता है। जब पूंजी संरचना में ऋण पूंजी की मात्रा को बढ़ाया जाता है तो इससे एक ओर तो कम्पनी का मूल्य बढ़ जाता है तथा दूसरी ओर पूंजी की लागत कम हो जाती है। इसके विपरीत जब ऋण पूंजी की मात्रा कम कर दी जाती है तो इससे कम्पनी का मूल्य घट जाता है और पूंजी की लागत बढ़ जाती है इस प्रकार निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि ऋण की मात्रा में वृद्धि होने वे पूंजी की लागत में कमी होती है और कम्पनी का बाजार मूल्य बढ़ जाता है ।

2. शुद्ध परिचालन आय सिद्धान्त (Net Operating Income Theory)–

शुद्ध परिचालन आय सिद्धान्त का प्रतिपादन भी डेविड (Devid Durand) द्वारा ही किया गया था। परन्तु यह सिद्धान्त शुद्ध आय यसिद्धान्त से एकदम विपरीत है। इस सिद्धान्त के अनुसार पूंजी की लागत और कम्पनी के मध्य किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं होता है अर्थात पूंजी संरचना में परिवर्तन से कम्पनी के मूल्य में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता है। कम्पनी की पूंजी संरचना में जब ऋण पूंजी का अनुपात बढ़ाया जाता है तब पूंजी की कुल लागत में कमी होती है क्योंकि ऋण वित्त का सबसे सस्ता साधन होता है। परन्तु इसके साथ ही ऋा पूंजी में वृद्धि होने से ब्याज का भार भी बढ़ता जाता है। जिससे वृद्धि हो जाती है। और वे अधिक प्रत्याय की आशा कम्पनी में करने लगते हैं। इसके परिणामस्वरूप समता लागत में जो कुछ भी कमी आती है, वह समता अंश पूंजी में जोखिम में वृद्धि के कारण समाप्त हो जाती है। और पूंजी संरचना में परिवर्तन का कम्पनी के मूल्य पर पड़ने वाला प्रभाव शून्य हो जाता है। इस प्रकार शुद्ध परिचालन आय सिद्धान्त यह बताता है कि कोई पूंजी संरचना अनुकूलतम नहीं होती है जो कम्पनी की पूंजी लागत एवं कम्पनी के मूल्य को प्रभावित करती हो।

शुद्ध परिचालन आय का सिद्धान्त **निम्नलिखित** मान्यताओं पर आधारित है–

1. ऋण पूंजी की लागत स्थिर रहती है।

2. निगम कर का अस्तित्व नहीं होता है।

3. संस्था की कुल पूंजी को समता पूंजी एवं ऋण पूंजी में विभाजित करना महत्वहीन है क्योंकि विनियोक्ता संस्था की कुल आय का पूंजीकरण करके संस्था का मूल्य ज्ञात करता है।

4. पूंजी संरचना में ऋण पूंजी के अनुपात में वृद्धि होने से अंशधारियों की जोखिम धारणा में परिवर्तन होता है।

5. पूंजी की कुल लागत ऋण एवं समता मिश्रण के सभी स्तरों पर एक समान रहती है।

इस सिद्धान्त के अनुसार संस्था का कुल मूल्य शुद्ध परिचालन आय को समग्र पूंजीकरण दर से पूंजीकृत करके ज्ञात किया जाता है। इसकी गणना के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है –

$$Total\ value\ of\ Firm = \frac{Earnings\ before\ Interest\ and\ Tax}{Overall\ Cost\ of\ Capital} \quad or\ V = \frac{EBIT}{Ko}$$

उपर्युक्त सूत्र के अन्तर्गत समता पूंजी के बाजार मूल्य (B) की गणना फर्म के कुल मूल्य (V) में से ऋण के बाजार मूल्य (D) को घटाकर की जाती है–

Market value of equity = Total value of firm - Market value of debt

S = V-D

उपर्युक्त गणना के अंतर्गत समता पूंजी की लागत, क्रमबद्ध निम्न प्रकार ज्ञात की जाती है –

$$Cost\ value\ of\ equity\ capital = \frac{Earnings\ available\ to\ equity\ shareholders}{Value\ of\ equity} \quad or\ Ke = \frac{EBIT - 1}{S\ or\ V - D}$$

Example : 1

जेड लिमिटेड ने निम्न विवरण प्रस्तुत किया-

ब्याज और कर से पूर्व आय	200000
10 प्रतिशत ब्याज की दर से ऋण लिया	700000
समग्र पूंजीकरण की दर	12.5 प्रतिशत

शुद्ध परिचालन आय सिद्धान्त के अनुसार फर्म का मूल्य ज्ञात कीजिए।

1. वर्तमान पूंजी संरचना के लिए
2. जब ऋण 600000 रू. से बढ़ाया जाता है एवं
3. जब ऋण 600000 से घटाया जाता है।

Solution,

(a) (i) Calculation of market value of the Company under Existing Capital structure

	Rs.
Earning before interest and tax (EBIT)	2,00,000
Overall capitalisation rate (Ko)	12.5%

Market value of the company (V) $\frac{EBIT}{Ko} = \frac{2,00,000 \times 100}{12.5} = 16,00,000$

(ii) **Calculation of Equity Capitalization Rate (Ke) under Existing Capital Structure**

	Rs.
Mareket value of debentures (D)	16,00,000
Less : Total value of debentures (D)	7,00,000
Total Market value of equity (S=V-D)	9,00,000
Earnings before interest and tax- (EBIT)	2,00,000
Less: Interest (I)	70,000

Earnings available for equity shareholders (E) 1,30,000

Equity capitalization rate =

$$\frac{Earnings\ available\ for\ Equity\ Shareholders \times 100}{Market\ value\ of\ Equity}$$

$$Or \qquad Ko = \frac{E}{S} \times 100$$

$$= \frac{1,30,000}{9,00,000} \times 100 = 14.44\%$$

(B) (i) Calculation of Market Value of the Company when debt is increased by Rs. 6,00,000:

Earnings before interest and tax (EBIT)	2,00,000
Overall capitalization rate (Ko)	12.5%

Market value of the company $(V) \frac{EBIT}{Ko} = \frac{2,00,000 \times 100}{12.5}$

16,00,000

(ii) Calculation of Equity Capitalization Rate (Ke)

	Rs.
Market value of the company (V)	16,00,000
Less: Total value of debentures (D)	13,00,000
Total market value of equity (S = V-D)	3,00,000
Earnings before interest and tax (EBIT)	2,00,000
Less: Interest (I)	1,30,000
Earnings available for equity shareholders (E)	70,000

Equiry capitalization rate =

$$\frac{Earnings\ available\ for\ equity\ shareholders \times 100}{Market\ Value\ equity}$$

$$Ko = \frac{E}{S} \times 100$$

$$\frac{1,15,000 \times 100}{6,50,000} = 23.33\%$$

(C) (i) Calculation of Market value of the company when debt is decreased byRs. 6,00,000:

Earnings before interest and tax (EBIT)	2,00,000
Overall capitalization rate (Ko)	12.5%
Market value of the company $(V)\frac{EBIT}{Ko}=\frac{2.00,000\times 100}{12.5}$	
	16,00,000

(ii) Calculation of Equity capitalization rate (Ke) :

Market value of the company (V)	16,00,000
Less : Total value of debentures (D)	1,00,000
Total market value of equity (S=V-D)	15,00,000
Earnings before interest and tax (EBIT)	2,00,000
Less: Interest (I)	10,000
Eanings available for equity shareholders (E)	1,90,000

Equity capitalization rate =

$$\frac{Earnings\ available\ for\ equity\ shareholders\times 100}{Market\ Value\ of\ Equity}$$

$$Ko=\frac{E}{S}\times 100$$

$$\frac{1.90,000\times 100}{15,00.000}=12.66\%$$

उपर्युक्त गणना से स्पष्ट होता है कि पूंजी संरचना में ऋण की मात्रा में वृद्धि होने पर समता की लागत बढ़कर 23.33 प्रतिशत हो गयी है। इसी प्रकार पूंजी संरचना में ऋण की मात्रा में कमी होने पर समता की लागत भी घटकर 12.66 प्रतिशत हो गयी।

3. मोदीगिलयानी व मिलर सिद्धानत या एम.एम. सिद्धान्त (Modigilliani and Miller Theory or M.M. Theory)-

मोदीगिलयानी व मिलर सिद्धान्त, शुद्ध परिचालन आय सिद्धान्त के समान ही है और इस सिद्धान्त के द्वारा प्रस्तुत दृष्टिकोण का समर्थन करता है। इन दोनों ही सिद्धान्तों के अनुसार पूंजी संरचना में परिवर्तन का संस्था की समस्त पूंजी लागत एवं संस्था के कुल मूल्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है परन्तु एम.एम.सिद्धान्त के अन्तर्गत प्रयुक्त कार्य प्रणाली, शुद्ध परिचालन आय सिद्धान्त से भिन्न है। जहाँ शुद्ध संचालन आय सिद्धान्त संस्था के मूल्य पर पूंजी संरचना की अप्रासंगिकता के पक्ष में कोई संचालनात्मक औचित्य प्रस्तुत नहीं करता है, वहीं एम.एम.सिद्धान्त इसके लिए व्यावहारिक औचित्य प्रस्तुत करता है और इसको सिद्ध करने के लिये एम.एम. सिद्धान्त इसके लिए व्यावहारिक औचित्य प्रस्तुत करता है। और इसको सिद्ध करने के लिए एम. एम. सिद्धान्त में अन्तरपणन (Arbitrage process) नीति का प्रयोग किया गया है–

(1) निगम कर की अनुपस्थिति में मोदीगिलयानी व मिलर सिद्धान्त (Modigilliani and Miller Theory in the absence of corporate tax)–

निगम करों की अनुपस्थिति में एस. एम.सिद्धान्त शुद्ध परिचालन आय सिद्धान्त के समान होता है इस सिद्धान्त के अनुसार संस्था की पूंजी संरचना में परिवर्तन में संस्था की समस्त पूंजी लागत एवं संस्था का कुल मूल्य अप्रभावित रहता है। इसका कारण यह है कि किसी संस्था की पूंजी संरचना में ऋण पूंजी का एक निश्चित सीमा से अधिक प्रयोग करने पर संस्था की वित्तीय जोखिम बढ़ जाती है जिससे ऋण पूंजी की लागत बढ़ती है व समता पूंजी की लागत घटती है और इस प्रकार ऋण व समता पूंजी की लागतों का पुनः सन्तुलन हो जाता है। यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि संस्था के कुल मूल्य निर्धारण में संस्था की परिचालन आय प्रमुख तत्व है। इस सिद्धान्त के अनुसार पूंजी संरचना के अतिरिक्त अन्य दृष्टि से समान दो संस्थाओं की समस्त पूंजी लागत एवं संस्था का मूल्य अन्तरपणन प्रक्रिया (arbitrage process) के कारण अलग–अलग नहीं हो सकते हैं। अन्तरपणन

से आशय किसी वस्तु को कम मूल्य वाले बाजार से खरीदने व अधिक मूल्य वाले बाजार में बेचने की क्रिया से है। यह अन्तरपणन की प्रक्रिया वस्तु बाजार से सम्बन्धित है। इस सिद्धान्त में एम. एम. अपने तर्क को इसी आधार पर उचित कहते हैं।

	A. Ltd.	B Ltd.
	Rs.	Rs.
EBIT	2,00,000	2,00,000
14% debentures	6,00,000	
Equity capitalization rate	20%	17.5%

एम.एम. सिद्धान्त के अनुसार उपर्युक्त दोनों कम्पनियों का मूल्य एक समान होना चाहिए, अतः पहले इन दोनों कम्पनियों के मूल्य की गणना करना चाहिए।

		A Ltd.	B Ltd.
		Rs.	Rs
EBIT		2,00,000	2,00,000
Less: Interest (I)		84,000	
earnings available for equity shareholder		11,4000	2,00,000
Equity Capitalisation rate (Ke)		20%	17.5%
Market value of equity (S)		114000x100/20	200000x100/17 5
	=	570000	1142857
Add Market value of debt.(D)	=	600000	
Total market value of company(V=S-D)		1170000	1142857
		$\frac{200000 \times 100}{1170000}$	$\frac{200000 \times 100}{1142857}$
Overall cost of capital (Ko)		17.09%	17-5%

उपर्युक्त गणना से स्पष्ट होता है कि A Ltd. का मूल्य से जिसने अपनी पूंजी संरचना में ऋण पूंजी का प्रयोग किया है, B Ltd. के मूल्य अधिक है। एम.एम. सिद्धान्त के अनुसार यह स्थिति अधिक समय तक नहीं रहेगी क्योंकि अन्तरपणन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जायेगी और दोनों कम्पनियों का मूल्य समान स्तर पर आ जायेगा।

मोदीगिलयानी व मिलर सिद्धान्त निम्नलिखित मान्यताओं पर आध ाारित हैं -

अ) व्यक्तिगत विनियोक्ताओं को भी बिना किसी बाधा के उन्हीं शर्तों पर ऋण प्राप्त होता है जिन शर्तों पर किसी संस्था को प्राप्त होता है।

ब) पूंजी बाजार में प्रतिभूतियों के क्रय–विक्रय करने पर कोई लागत नहीं आती है और विनियोक्ता समान शर्तों पर ही ऋण ले सकता है या ऋण दे सकता है।

स) संस्था का मूल्यांकन करने के लिए सभी विनियोजन परिचालन लाभ के सम्बन्ध में समान प्रत्याशा (Expectaticus) रखते हैं।

द) पूंजी बाजार पूर्ण है अर्थात विनियोजक प्रतिभूतियों को ऋण एवं विक्रय करने के लिए स्वतंत्र होते हैं । विवेकशील विनियोजकों को सभी प्रकार की सूचनायें समान रूप से उपलब्ध होती है।

य) संस्था अपने समस्त लाभों का वितरण अंशधारियों को कर देती है अर्थात संस्था का लाभाश्र भुगतान अनुपात 100 प्रतिशत है, कोई प्रतिधारित आय नहीं है।

र) संस्था को कोई निगम कर का भुगतान नहीं करता।

ल) सभी संस्थाओं को सजातीय जोखिम वर्गों (Homogenous Risk Class) में विभाजित किया जा सकता है तथा प्रत्येक वर्ग में वर्गीकृत की गयी संस्था में व्यापारिक जोखिम का स्तर समान होता है।

2. निगम कर की विद्यमानता में मोदीगिलयानी व मिलर सिद्धान्त (Modigilliani and Miler theory in the presence of corporate tax)–

मोदीगिलयानी व मिलर का यह सिद्धान्त है कि संस्था की पूंजी संरचना में परिवर्तन से संस्था की समस्त पूंजी लागत एवं संस्था का कुल मूल्य अप्रभावित रहता है, निगम कर की विद्यमानता में सही नहीं है। व्यावसायिक जगत में निगम कर एक वास्तविकता है। अतः वर्ष 1993 से उन्होंने अपनी मूल अवधारणा में संशोधन करते हुए यह स्वीकार किया कि कर निर्धारण के उद्देश्य से ब्याज की कटौती योग्य व्यय मानने से ऋण पूंजी के प्रयोग की लागत कम हो जाती है। अतः यदि कोई संस्था अपनी पूंजी संरचना में ऋण पूंजी का प्रयोग करती है तो उस संस्था की समस्त पूंजी लागत कम हो जाती है तथा संस्था का मूल्य बढ़ जाता है इस प्रकार उन्होंने स्वीकार किया कि उत्तोलक (Levered) वाली संस्था का कुल मूल्य बिना उत्तोलक वाली (Unlevered) संस्था के कुल मूल्य से अधिक होगा निगम करों की विद्यमानता में किसी संस्था के कुल मूल्य की गणना निम्न प्रकार की जाती है –

Value of Levered Firm (VL) : VL = Vu + D x T

Value of Unlevered Firm (Vu)

$$Vu = \frac{Earnings\ available\ for\ Equity\ Shareholders}{Equity\ Capitalisation\ Rate} \ or\ Vu = \frac{EBIT(1-t)}{Ke}$$

here

VL	=	Value of levered Firm
Vu	=	Values of Unlevered Firm
D	=	Amount of Debt
T	=	Tax rate applicable to companies
EBIT	=	Earnings before Interest and Tax
Ke	=	Equity capitalization rate

Example :1

एक्स लिमिटेड एवं वाय लि जो सभी दृष्टियों में समान हैं, सिवाय इसके कि एक्स लि. अपनी पूंजी संरचना में ऋण का उपयोग नहीं करती है, जबकि वाय लि. की पूंजी संरचना में 12 प्रतिशत वाले 150000 रू.के ऋणपत्र हैं। दोनों कम्पनियों की ब्याज व कर से पूर्व आय 400000 रू. वार्षिक है और समता पूंजीकरण की दर 16 प्रतिशत है। निगम वाय की दर 35 प्रतिशत मानते हुये मोदीगिलयानी मिलर सिद्धान्त द्वारा इनका मूल्य ज्ञात कीजिये।

Solution,

(1) The Market value of X Ltd. (unlevered Co.) which does not use any debt.

$$Vu = \frac{EBIT(1-t)}{Ke}$$

= 400000 (1- 0.35) / 16%

= (400000 x 0.65) x 100 / 16 = Rs. 16,25,000

(2) The Market value of Y Ltd. (levered Co.) which debt of Rs. 200000

VL = Vu + D x t

= 1625000 + 150000 x .35

= 1625000 + 52500 = Rs. 16,77,500

उपर्युक्त गणना से स्पष्ट होता है कि वाय लि. जो कि Levered Co. है। का कुल मूल्य Unlevered Co. एक्स लि. से अधिक है।

मोदीगिलयानी व मिलर सिद्धान्त की सीमाएँ (Limitations of Modigilliani and Miller Theory)-

इस सिद्धान्त की कुछ प्रमुख सीमायें निम्न हैं –

(1) निगम कर की अनुपस्थिति (Absence of Corporate Tax) – इस सिद्धान्त की सीमा यह है कि इसमें निगम कर को ध्यान में नहीं रखा जाता है। ऋणपत्रों पर देय ब्याज कर के लिये कटौती योग्य व्यय है जबकि

समता अंशों पर भुगतान किया गया लाभांश कर के लिये कटौती योग्य नहीं होता है। ऐसे स्थिति में लीवर्ड कम्पनी अपने विनियोजनाओं को अनलीबर्ड कम्पनी की तुलना में अधिक प्रत्याय दर से भुगतान करते हैं। इसके फलस्वरूप लीवर्ड कम्पनी का बाजार मूल्य अनलीवर्ड कम्पनी से सदैव अधिक होता है।

(2) कारोबार लागत की अनुपस्थिति (Absence of transaction costs)– एम.एम. सिद्धान्त के अनुसार कारोबार अर्थात क्षतिपूर्तियों के लेन–देन की कोई लागत नहीं होती है लेकिन वर्तमान व्यावसायिक जगत में यह सम्भव नहीं है प्रतिभूतियों के लेन देन की लागत होती है। व्ययों के कारण प्रतिपूर्तियों के विक्रय पर प्राप्त शुद्ध राशि वास्तविक राशि से कम हो जाती है। इस प्रकार विनियोग योग्य राशि के कम हो जाने के कारण अन्तरपणन प्रक्रिया भी दूषित हो सकती है।

(3) जोखिम तत्व (Risk Factor) – यह सिद्धान्त इस विचारधारा पर आधारित है कि एक कम्पनी व व्यक्तिगत विनियोक्ता बाह्य स्रोतों से एक निश्चित राशि एक ही दर पर प्राप्त कर सकते हैं लेकिन व्यवहार में जोखिम तत्व से भी बहुत भिन्नता होती है। अंशधारी के रूप में एक विनियोक्ता का दायित्व उसके द्वारा धारित अंशों के अनुपात तक ही सीमित होता है परन्तु व्यक्तिगत ऋण की दशा में उसका दायित्व असीमित होता है।

(4) संस्थागत प्रतिबंध (Institutional restrictions) – एम.एम. सिद्धान्त अन्तरपणन प्रक्रिया के सफल संचालन पर आधारित है परन्तु अनलीवर्ड कम्पनी से लीवर्ड कम्पनी में परिवर्तन सभी विनियोक्ताओं के लिए सम्भव नहीं होता है। ऐसी स्थिति में व्यक्तिगत लीवरेज निगम लीवरेज का पूर्ण स्थानापन्न नहीं हो सकता जो कि अन्तरपणन प्रक्रिया के लिये आवश्यक है।

4. परम्परागत सिद्धान्त (Traditional Theory)–

परम्परागत सिद्धान्त शुद्ध आय सिद्धान्त एवं शुद्ध परिचालन सिद्धान्त के बीच का सिद्धान्त है इस कारण इसे मध्यवर्ती सिद्धान्त भी कहते हैं। जहाँ

शुद्ध आय सिद्धान्त यह कहता है कि पूंजी संरचना में ऋण का प्रयोग संस्था के मूल्य को बढ़ाता है और पूंजी की लागत कम करता है, वहीं शुद्ध परिचालन आय सिद्धान्त यह कहता है कि ऋण का प्रयोग संस्था के मूल्य और पूंजी की संयुक्त लागत को प्रभावित नहीं करता है और पूंजी संरचना निर्णय का कोई औचित्य नहीं है। परम्परागत सिद्धान्त में इन दोनों विचारध ााराओं की अनेक विशेषतायें समाहित हैं ऋण पूंजी की लागत समता पूंजी की लागत की तुलना से कम होती है। इस सिद्धान्त के अनुसार एक संस्था अपनी पूंजी संरचना में एक सीमा तक ऋण पूंजी में वृद्धि करके अपने समस्त पूंजी की लागत को कम कर सकती है परन्तु पूंजी संरचना में एक सीमा से अधिक ऋण बढ़ाने पर संस्था की समस्त पूंजी लागत में वृद्धि होती है एवं संस्था का कुल मूल्य कम हो जाता है। अतः इस सिद्धान्त के अनुसार ऋण पूंजी एवं समता पूंजी के विवेकपूर्ण मिश्रण द्वारा एक संस्था अपनी समस्त पूंजी की लागत को कम करके अपने कुल मूल्य को बढ़ा सकती है। इस प्रकार यह सिद्धान्त संस्था के अन्दर अनुकूलतम पूंजी संरचना की अवधारणा को स्वीकार करता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार किसी संस्था की पूंजी संरचना में परिवर्तन का पूंजी की लागत एवं कुल मूल्य पर पड़ने वाले प्रभाव को निम्न तीन चरणों से विभाजित करके स्पष्ट किया जा सकता है।

Example : 1

एक कम्पनी के सम्बन्ध में निम्न सूचनायें उपलब्ध हैं –

ब्याज एवं कर के पूर्व आय	300000 रू.
ऋण	400000 रू.
ऋण की लागत	9 प्रतिशत
समता की लागत	14 प्रतिशत

परम्परागत सिद्धान्त का प्रयोग करते हुए कम्पनी के मूल्यकी गणना कीजिए।

Solution,

Computation of value of the company and cost of capital under Tradiitonal Theory.

(i)	Total Market value of the company	Rs.
	Earnings before interest and tax (EBIT)	3,00,000
	Less : Interest (I)	36,000
	Earnings available to equity shareholders (E)	2,64,000
	Equity capitalization rate (Ke)	14%
	Market value of equity shares (S)	18,85,714

$$\left(S = \frac{E}{Ke} \ or \ \frac{2,64,000 \times 100}{14}\right)$$

	Add : Market value of debt (D)	4,00,000
	Total Market value of the company (V=S+D)	22,85,714

(ii) Overall cost of Capital (Ko)

$$Ko = \frac{KBIT}{V} \times 100 \ or \ \frac{3,00,000 \times 100}{22,85,714} = 13.12\%$$

Example : 2

एक्स लिमिटेड के 3000000 रू. के विनियोग पर ब्याज व कर से पूर्व आय 300000 रू. है। वर्तमान में कम्पनी ऋण का प्रयोग नहीं कर रही है परन्तुउसके पास अपनी पूँजी संरचना में परिवर्तन के निम्न प्रस्ताव हैं –

(1) 6 प्रतिशत के 6,00,000 रू. कें ऋणपत्र अंश पूंजी के स्थान पर प्रतिस्थापित कर दिये जायें। इससे समता पूजी की लागत में 10.35 प्रतिशत की वृद्धि होगी।

(2) अंश पूंजी के स्थान पर 7 प्रतिशत 12,00,000 रू. के ऋणपत्र ले लिये जायें। इससे अंश पूंजी की लागत में 12.5 प्रतिशत वृद्धिहोने की आशा है।

परम्परागत सिद्धान्त का प्रयोग करते हुये विभिन्न परिस्थितियों में कम्पनी का बाजार मूल्य और पूंजी की सम्पूर्ण लागत ज्ञात कीजिए।

Solution,

Computation of Market value of the Company and cost of capital under Traditional Theory.

	Present Capital Structure Rs.	Proposals 6% Debenture (Rs.600000)	7% Debenture (Rs.1200000)
(i) Total market value of the company			
Earnings before interest and tax(EBIT)	300000	300000	300000
Less: Interest (I)	-	36000	84000
Earnings available to equity shareholds(E)	300000	264000	216000
Equity capitalization rate (Ke)	10%	10.35%	12.5%
Market value of equity shares (S) S=E/Ke	3000000	2550725	1728000
Add Market Value of debt (D)		600000	1200000
Total Market value of the company(V=S+D)	3000000	3150725	2928000
(ii) Overall cost of capital (Ko)			
(Ko = EBIT/V x 100)	10%	9.52%	10.25%

3.5 सारांश

पूंजीकरण की राशि निर्धारित करने के बाद वित्तीय योजना का दूसरा तत्व पूंजी के स्वरूप के निर्धारण से सम्बन्धित होता है । पूंजी के दीर्घकालीन साधनों में पारस्परिक अनुपात से है और इनमें स्वामी पूंजी, पूर्वाधिकार पूंजी एवं दीर्घकालीन ऋण पूंजी शामिल करते हैं। सम्पत्ति के ढांचे का अर्थ सम्पूर्ण सम्पत्तियों के स्वरूप से होता है। इसमें चल सम्पत्ति तथा स्थायी सम्पत्ति दोनों को शामिल करते हैं लेकिन पूंजी ढांचा एवं वित्तीय ढांचा इससे भिन्न

है। पूंजी ढांचे में सतत जोखिम विहीन ऋण तथा समअंश वित्त के स्रोत होते हैं। वित्तीय प्रबन्धक इन विभिन्न प्रतिभूतियों के बीच पारस्परिक अनुपात का निर्धारण अनेक मान्यताओं एवं परिस्थितियों के सन्दर्भ में करता है। किसी संस्था के कुल पूंजीकरण में ऋण एवं समता पूंजी का मिश्रण संस्था की पूंजी की लागत एवं उसके कुल मूल्य को प्रभावित करता है। अतः किसी संस्था की पूंजी संरचना के सम्बन्ध में निर्णय लेने से पूर्व पंजी की लागत एवं उसका संस्था के मूल्य पर पड़ने वाले प्रभावों का ज्ञान होना आवश्यक है।

3.6 शब्दावली

- **शुद्ध संचालन आय** : शुद्ध संचालन आय से आशय कुल आय से संचालन व्ययों के घटाने के बाद जो आय शेष रहती है उसे शुद्ध संचालन आय कहते हैं।
- **अंश पूंजी** : अंश पूंजी से आशय कम्पनी की स्वामी पूंजी से है अर्थात समता अंश पूंजी से है।
- **पूर्वाधिकार अंश पूंजी** : पूर्वाधिकार अंश पूंजी से आशय ऐसी पूंजी से है जो कम्पनी के विघटन के समय पूर्वाधिकार अंशधारियों को वापस की जाती है। उन्हें पहले वापस लेने का अधिकार होता है।
- **पूंजी ढांचा** : पूंजी ढांचा से आशय कम्पनी के ऋण पूंजी अथवा अंश पूंजी से है।
- **वित्तीय ढांचा** : वित्तीय ढांचा, पूजी ढांचे से व्यापक शब्द है और इसमें पूंजी एवं दायित्व दोनों बातों को शामिल किया जाता है।
- **सम्पत्ति ढांचा** : सम्पत्ति ढांचे का अर्थ, सम्पूर्ण सम्पत्तियों के स्वरूप से होता है। इसमें चल सम्पत्ति तथा स्थायी सम्पत्ति दोनों को शामिल करते हैं।

3.7 स्व–परक प्रश्न

1. पूंजी संरचना से क्या आशय है? पूंजी संरचना के सिद्धान्तों को संक्षेप में समझाइये।

2. शुद्ध आय सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए। यह सिद्धान्त शुद्ध संचालन आय सिद्धान्त से किस प्रकार भिन्न हैं?

3. मोदीगिलयानी व मिलर सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए एवं इसकी सीमाएं बताइये।

4. "पूंजी संरचना महत्वपूर्ण नहीं है" इस कथन की पूंजी संरचना सिद्धान्त की मोदीगिलयानी व मिलर के योगदान के विस्तृत सन्दर्भ में आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

5. पूंजी संरचना और फर्म के उद्देश्यों के बीच सम्बन्धों के परम्परागत सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए।

इकाई – 4 परिचालन एवं वित्तीय उत्तोलक
(Operating and Financial Leverage)

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 जोखिम एवं आय

4.4 परिचालन उत्तोलक का अर्थ

4.5 वित्तीय उत्तोलक का अर्थ

4.6 वित्तीय उत्तोलक का महत्व

4.7 संयुक्त उत्तोलक

4,8 सारांश

4.9 शब्दावली

4.10 स्व–परक प्रश्न

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- परिचालन उत्तोलक का अर्थ बता सकें।
- वित्तीय उत्तोलक का अर्थ बता सकें।
- परिचालन एवं वित्तीय उत्तोलकों को उदाहरण के द्वारा समझा सकें।
- कम्पनी की पूंजी की उत्पादकता को उत्तोलकों के द्वारा बता सकें।

4.2 प्रस्तावना

किसी भी कम्पनी में उत्तोलक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है जिसके

आधार पर पूंजी संरचना निर्णयों में उत्तोलक अपनी महती भूमिका निभाते हैं। प्रस्तुत इकाई में परिचालन उत्तोलक एवं वित्तीय उत्तोलक को क्रमानुसार प्रस्तुत किया गया है उत्तोलक दन्तिकरण का कार्य कम से कम प्रयास किये जायें एवं अधिक से अधिक लाभ उपार्जित किया जाये अर्थात कम शक्ति से अधिक से अधिक वजन उठाने का प्रयास

उत्तोलक में किया जाता है। संयुक्त उत्तोलक परिचालन एवं वित्तीय उत्तोलक का समग्र रूप है जिसमें दोनों को संयुक्त रूप से समझाया गया है। उत्तोलक संस्था की लाभार्जन क्षमता, जोखिम एवं वित्तीय सुदृढ़ता को प्रभावित करते हैं।

4.3 उत्तोलक (Leverage)

हिन्दी भाषा में लिवरेज के लिये उत्तोलक शब्द का प्रयोग किया गया है परन्तु अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इसे लीवरेज शब्द का प्रयोग करना उचित होगा। लिवरेज एक ऐसी स्थिति का परिचायक है जिसमें संस्था द्वारा स्थिर लागत में कमी या वृद्धि अथवा ऋण पूंजी में कमी या वृद्धि के फलस्वरूप समतांशधारियों की आय पर पड़ने वाले प्रभावों का पता लगाया जाता है। 'उत्तोलक शब्द यान्त्रिकीय विज्ञान से लिया गया है। यह उत्तोलन (Lever) की क्रिया के कारण प्राप्त यांन्त्रिक लाभ और प्रभावोत्पादकता को बतलाता है। उत्तोलन से आशय ऐसी स्थिति से है जिसमें कम बल लगाकर अधिक से अधिक वजन उठाया जा सकता है। या अधिक से अधिक कार्य किया जा सकता है। कम्पनी के वित्त प्रबन्धन में स्वामिगत तथा ऋणगत प्रतिभूतियों की अलग–अलग लागत होती है। समता अंश परिवर्तनशील लागत वाली प्रतिभूतियाँ होते हैं जबकि ऋणपत्र, बन्धपत्र व पूर्वाधिकार अंश कम्पनी की आय पर स्थिर लागत उत्पन्न करते हैं। इस स्थिर लागत का अथवा ऋण वित्त प्रबन्धन का अंशधारियों की आय पर क्या प्रभाव पड़ेगा इसका अध्ययन करने के लिए उत्तोलक की गणना की जाती है। उत्तोलक तीन प्रकार के होते हैं – (1) परिचालन उत्तोलक (Operating Leverage) (2) वित्तीय उत्तोलक (Financial Leverage), तथा (3) संयुक्त उत्तोलक

(Combined Leverage)। इनका विवरणात्मक विवेचन आगे दिया जा रहा है।

4.4 परिचालन उत्तोलक (Operating Leverage)

परिचालन उत्तोलक, लागत–मात्रा–लाभ विश्लेषण के सिद्धान्त पर आधारित है। परिचालन उत्तोलक ऐसी स्थिति का परिचायक है जिसमें एक संस्था को अपने उत्पादन कार्य में स्थायी लागत अथवा स्थायी व्ययों का भार वहन करना होता है। और जिसका उत्पादन की मात्रा से कोई सम्बन्ध नहीं होता। पूंजी संरचना निर्णयों में उत्तोलक (पर्यायवाची–दन्तिकरण व तोलक) का प्रमुख स्थान होता है। परिचालन उत्तोलक की मात्रा को ज्ञात करने के विविध सूत्र निम्नवत हैं, जिनमें से कोई एक का प्रयोग किया जा सकता है।

(1) $$Operating\ Leverage = \frac{Sales - Variable\ costs}{Earnings\ Before\ Interest\ \&\ Taxes\ (EBIT)}$$

(2) $$Operating\ Leverage = \frac{Contribution}{Operating\ Profit}$$

(3) $$Operating\ Leverage = \frac{Percentage\ Change\ in\ EBIT}{Percentage\ Change\ in\ Sales}$$

यह परिचालन उत्तोलक उच्च या निम्न स्तर का हो सकता है। उच्च परिचालन उत्तोलक प्रबन्ध के लिए जोखिमपूर्ण है, क्योंकि इसमें सुरक्षा की सीमा बहुत कम होती है। निम्न परिचालन उत्तोलक प्रबन्धकों के लिए बहुत सुविधाजनक होता है, क्योंकि इसमें सुरक्षा की सीमा बहुत अधिक होती है।

परिचालन उत्तोलक की विशेषताएँ –

1 व्यावसायिक जोखिम

2. सम–विच्छेद बिन्दु के नजदीक

3. स्थायी लागतों से सम्बन्धित

Example - 1

निम्न तीन कम्पनियों के लिए परिचालन उत्तोलक की गणना कीजिए।

Particulars	Company X	Company Y	Company Z
Output (Units)	30000	40000	50000
Selling price per unit (Rs)	9.50	10.00	10.50
Variable cost per unit (Rs)	3.50	4.00	4.50
Fixed cost (Rs)	90000	190000	240000

Solution

Statements showing operating leverage

Items	Companies		
	X	Y	Z
Sales (Output x selling price per unit	285000	400000	525000
Less variable costs	105000	160000	225000
Contribution (Sales-variable costs)	180000	240000	300000
Less: Fixed costs	90000	190000	240000
Operating profit or EBIT	90000	50000	60000
Operating Leverage (Contribution/ EBIT)	2	4.8	5

Example: 2

यू.पी. कारखाने की स्थापित क्षमता 50,000 इकाइयां प्रति वर्ष हैं वास्तविक प्रयुक्त क्षमता 30,000 इकाइयाँ प्रति वर्ष हैं। विक्रय मूल्य 10 रू.प्रति इकाई है। परिवर्तनशील लागत 6 रू. इकाई है। निम्न तीनों स्थितियों में परिचालन उत्तोलक की गणना कीजिए।

1. यदि स्थायी लागतें 30,000 रू. प्रति वर्ष हो।
2. यदि स्थायी लागतें 90,000 रू. प्रति वर्ष हो।
3. यदि स्थायी लागतें 1,10,000 रू. प्रति वर्ष हों।

Solution

Statement showing Operating Average

Items	Situation-! Rs	Situation-2 Rs	Situation-3 Rs
Sales	300000	300000	300000
Less: Variable costs	180000	180000	180000
Contribution	120000	120000	120000
Less: Fixed costs	30000	90000	110000
Operating profit or EBIT	90000	30000	10000
Operating leverage (Contribution/EBIT)	1.33	4	12

उपर्युक्त उदाहरण से प्रदर्शित होता है कि जैसे–जैसे कुल लागत में स्थायी लागत की मात्रा बढ़ती जाती है वैस–वैसे परिचालन उत्तोलक की मात्रा भी बढ़ती जाती है। इस उदाहरण की तृतीय स्थिति में परिचालन उत्तोलक की मात्रा 12 है अर्थात विक्रय की राशि में 01 गुना परिवर्तन होने पर लाभ में 12 गुना परिवर्तन होगा।

परिचालन उत्तोलक की मात्रा (Degree of Operating Leverage)-

परिचालन उत्तोलक विक्रय में होने वाली प्रतिशत वृद्धि अथवा कमी के कारण परिचालन लाभों में होने वाली प्रतिशत वृद्धि या कमी के मात्रा इसे निम्न प्रकार से बताया जा सकता है –

$$DOL = \frac{\%\,Change\ in\ EBIT}{\%\,Change\ in\ Sales}$$

4.5 वित्तीय उत्तोलक (Financial Leverage)

वित्तीय उत्तोलक वास्तव में व्यापार का ही समानार्थी है। संस्था के

परिचालन लाभ में परिवर्तन का स्थिर वित्तीय व्ययों के भुगतान पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है अर्थात परिचालन लाभ की मात्रा कम क्यों न हो, इन स्थिर वित्तीय व्ययों का भुगतान करना ही होता है। इन व्ययों के भुगतान के पश्चात शेष परिचालन लाभ पर समतांशधारियों का अधिकार होता है। वित्तीय उत्तोलक का सम्बन्ध कर व ब्याज से पूर्व लाभ में परिवर्तन का अंशध ारियों के लिए उपलब्ध लाभ पर पड़ने वाले प्रभाव से हैं कोई भी व्यावसायिक संस्था वित्त प्रबंधन हेतु पूंजी की लागत के दृष्टिकोण से स्थिर या परिवर्तनशील लागत वाली पूंजी का प्रयोग कर सकती है। पूर्वाधिकार अंश, ऋण पत्र, दीर्घकालीन ऋण, बन्धपत्र आदि पर निश्चित दर से लाभांश या ब्याज का भुगतान किया जाता है जबकि समता अंशधारी बची हुई आय के हकदार होते हैं। और इसलिए इसे परिवर्तनशील लागत वाली पूंजी स्रोत माना जाता है। वित्तीय उत्तोलक यह बतलाता है कि पूंजी संरचना में स्थायी लागत पूंजी व समता पूंजी का प्रयोग किस अनुपात में किया गया है। प्राचीन ब्रिटिश वित्तवेत्ता उत्तोलक को स्थिर लागत वाली प्रतिभूतियों और परिवर्तनशील लागत वाली प्रतिभूतियों के पारस्परिक अनुपात के रूप में प्रयोग करते रहे हैं। वित्तीय उत्तोलक को समता पर व्यापार (Trading on Equity) का समानार्थी माना जाता रहा है। वे इसे समता पर व्यापार का ही परिष्कृत स्पष्ट व युक्तिपूर्ण प्रस्तुतीकरण बताते हैं। परन्तु आधुनिक अमेरिकी वित्तवेत्ता वित्तीय उत्तोलक का प्रयोग ऋण वित्त प्रबन्धन का स्वामित्व पूंजी की प्रति अंश आय (Earnings per share or EPS) में होने वाले परिवर्तन से आंकते हैं। यह ऋण द्वारा लिये गये धन कोषों के प्रयोग तथा उनसे साधारण अंशों के उपार्जन पर पड़ने वाले प्रभाव को स्पष्ट करता है। विभिन्न विद्वानों ने वित्तीय उत्तोलक को निम्नांकित ढंग से परिभाषित किया है।

इजरा सोलामन के मतानुसार. "वित्तीय उत्तोलक संस्था के वित्त में ऋण और समता के मिश्रण को बताता है।"

जैम्सस सी. वैन हार्न के शब्दों में, "वित्तीय उत्तोलक में स्थायी लागत कोषों का प्रयोग साधारण अंशधारियों के प्रतिफल को बढने की आशा से किया जाता है।"

वेस्टन होल्ट के अनुसार, "वित्तीय उत्तोलक को कुल पूंजी के साथ कुल ऋण पूंजी–अनुपात या कुल समपत्तियों में ऋण–पूंजी के अनुपात के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।"

जे.ई.वाल्टर के शब्दों में, "वित्तीय उत्तोलक साधारण अंशधारियों को मिलने वाले प्रत्याय प्रतिशत तथा कुल पूंजीकरण की प्रत्याय प्रतिशत के पारस्परिक अनुपात को कहते है।"

एल. जे. गिटमैन के अनुसार, "वित्तीय उत्तोलक एक फर्म की स्थिर वित्तीय प्रभार को प्रयोग करने की क्षमता को इंगित करता है जिससे कि फर्म के प्रति अंश अर्जन (EPS) पर ब्याज एवं कर पूर्व आय (EBIT) में होने वाले परिवर्तनों के प्रभाव को बढ़ाया जा सके।

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि वित्तीय उत्तोलक उस दशा को प्रदर्शित करता है जबकि एक कम्पनी स्थिर लागत वाले कोषों से उनके लागत की तुलना में अधिक आय अर्जित करती है। स्वाभाविक रूप से यह अतिरिक्त आय समता अंशधारियों की आय को बढाता है।

वित्तीय उत्तोलक की मात्रा (Degree of Financial Leverage) –

वित्तीय उत्तोलक धनात्मक अथवा ऋणात्मक (अनुकूल अथवा प्रतिकूल) हो सकता है। धनात्मक उत्तोलक तब माना जाता है जब ब्याज एवं कर पूर्व आय (EBIT) की दर ऋण पर देय ब्याज की दर से अधिक होती है। इसके विपरीत, जब ब्याज एवं कर पूर्व आय (EBIT) की दर ऋण–पूंजी पर देय ब्याज की दर से कम होती है। तो उत्तोलक ऋणात्मक माना जाता है। ऐसा उत्तोलक हानिकारक होता है जो समता अंशधारियों की आय में कमी कर देता हें और उनके मूल्य को भी गिरा देता है। यदि ब्याज एवं कर पूर्व आय (EBIT) की दर ऋण पर ब्याज की दर के बराबर होती है तो ऐसी स्थिति में वित्तीय उत्तोलक नहीं होगा और प्रति अंश अर्जन (EPS) भी अप्रभावित रहेगा। वित्तीय उत्तोलक का स्तर भी उच्च या निम्न हो सकता है। वित्तीय उत्तोलक की गणना निम्न सूत्र से की जा सकती है।

$$Financial\ Leverage = \frac{EBIT}{EBIT - Interest}$$

यहाँ पर, EBIT = Earnings Before Interest and Taxes

EBT = Earnings before Tax

Example : 1

तीन कम्पनियों के वित्तीय उत्तोलक की गणना कीजिए।

	A Co. Rs	B. Co. Rs	C Co. Rs
Equity Capital	25000	10000	40000
Debt.	25000	40000	10000
EBIT	5000	5000	5000
Interest @ 10% on debts in all cases			

Solution

Statement showing Financial Leverage

	Company		
	A	B	C
	Rs	Rs	Rs
Earnings before interest & Taxes(EBIT)	5000	5000	5000
Less:Interest (10% on bedt)	2500	4000	1000
Earnng before tax (EBT)	2500	1000	4000
Financial Leverage (EBIT/EBT)	2	5	1.25

उपर्युक्त उदाहरण में वित्तीय उत्तोलक की मात्रा तीनों कम्पनियों का क्रमशः 2, 5, 1.25 है।

वित्तीय उत्तोलक की मात्रा ज्ञात करने का वैकल्पिक सूत्र–वित्तीय

उत्तोलक की मात्रा की गणना ब्याज एवं कर से पूर्व आय **(EBIT or OP)** तथा प्रति अंश अर्जन **(EPS)** के आधार पर भी की जाती है। यह **EBIT** तथा **EPS** विश्लेषण फर्म के ऋण प्रबन्धन करता है। इस वैकल्पिक विधि का सूत्र है।

$$Financial\ Leverage = \frac{Percentage\ Change\ in\ EPS}{Percentage\ Change\ in\ EBIT\ or\ OP}$$

Calculation of Earnings per share

	Rs.
Sales	---------------
Less: All costs including depre. but excluding interest on Debt.	---------------
EBIT	---------------
Less: Interest on Debt	---------------
Earnngs before Tax (EBT)	---------------
Less: Tax	---------------
Earning after tax (EAT)	---------------
Less: Preference Dividend	---------------
Earnings available to Equity shareholders (EAS)	---------------
Earnings per share (EPS)=EAS/No.of Equity share	---------------

ऐसी दशा में EPS की गणना विधि निम्न है–

Example:2

X Company has the following Capital Structure:

80,000 Equity share of Rs. 10 each = Rs. 8,00,000

18,000 10% pref. shares of Rs. 100 each = Rs. 18,00,000

18,000 10% Debentures of Rs.100 each = Rs. 18,00,000

ब्याज एवं कर से पूर्व आय के निम्न प्रत्येक स्तर के लिए प्रति अंश अर्जन ज्ञात कीजिए।

(1) 800000 रू (2) 5,00,000 रू. (3) 12,00,000 रू.

कम्पनी के लिए आय की दर 50 प्रतिशत

उपर्युक्त स्थिति में 8,00,000 रू. ब्याज एवं कर से पूर्व आय को आध ाार लेते हुए वित्तीय उत्तोलक की भी गणना कीजिए।

Solution

	(i)	(ii)	(iii)
	Rs	Rs	Rs
EBIT	800000	500000	1200000
Less: Interest on Debentures	180000	180000	180000
Earning before tax (EBT)	620000	320000	1020000
Less: Income Tax	310000	160000	510000
Earning after Tax (EAT)	310000	160000	510000
Less: Preference Dividend	180000	180000	180000
Earning Available for Equity Share-holders (EAS)	130000		330000
Earnings per share (EPS)	Rs. 1.62	Nil	Rs.4.12

Calculation of Financial Leverage

Financial leverage = Percentage change in EPS/Percentage Charge in EBIT.

(ए) स्थिति (1) एवं (2) के मध्य EPS 1.26 से –0.25 रू. घटी है जबकि EBIT 37.5 प्रतिशत (8,00,000 रू. से 5,00,000 रू.) घटी है।

Financial Leverage - 119.84% / 37/5% = 3/19

(बी) स्थिति (1) एवं (3) के मध्य EPS 154.32 प्रतिशत (1.62 रू. से 4.12 रू.) बढ़ी है जबकि EBIT 50 प्रतिशत (8,00,000 रू. से 12,00,000 रू.) बढ़ी है।

Financial Leverage - 119.84%/37.5% = 3.19

इस सूत्र के आधार पर वित्तीय उत्तोलक की मात्रा 3.19 यह बताती है कि EBIT में 1 प्रतिशत का परिवर्तन होने पर EPS में 3.19 प्रतिशत का परिवर्तन उसी दिशा में होगा। स्थिति (2) में EBIT के 50 प्रतिशत के घटने पर EPS 159.5% (50 x 3.19) घट जाता है। अर्थात EPS 1.62 रू. से –0. 25 रह जाता है। इसी प्रकार स्थिति (3) में EBIT के 50 प्रतिशत बढ़ने पर EPS 159.5% (50 x 3.19) बढ़ जाता है। अर्थात EPS 1.62 रू. से 4.12 रू. हो जाता है।

4.6 वित्तीय उत्तोलक का महत्व (Importance of Financial Leverage)

वित्तीय प्रबन्ध के क्षेत्र में वित्तीय उत्तोलक एक महत्वपूर्ण प्रविधि के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। यह वित्तीयन और विनियोग निर्णयों में व्यापक रूप में प्रयोग किया जा रहा है। इसकी सहायता से फर्म के लिए पूंजी संरचना का सर्वोत्तम निरूपित किया जा सकता है। यह पूंजी की लागत को न्यूनतम करने की दृष्टि से कुल पूंजीकरण में आय कर को देखते हुए विभिन्न प्रतिभूतियों के अनुपात को निर्धारित करता है। दूसरी ओर विनियोग सम्बन्धी निर्णयों में भी यह तकनीक उपयोगी है। व्यापार विस्तार किस सीमा तक होना चाहिए, इस सम्बन्ध में वित्तीय उत्तोलक की तटस्थ नीति (Indifference Policy) मार्गदर्शक का कार्य करती है। तटस्थ नीति वित्तीय प्रबन्धक को यह परामर्श देती है कि अगर व्यापार के भावी विस्तार कार्यक्रमों में विनियोजित पूंजी की सम्भावित प्रत्याय दर उस पर व्यय होने वाली स्थिर पूंजी लागत से कम है तो व्यापार के विस्तार का विचार छोड़ देना चाहिए। साथ ही वित्तीय उत्तोलक, प्रविधि के उपयोग से वित्तीय प्रबन्धक अपने अंशधारियों को प्रति

अंश अर्जन (EPS) अधिकतम दे सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वित्तीय उत्तोलक एक फर्म की पूंजी संरचना निर्धारित करने में, अंशधारियों को अधिक लाभांश देने और औसत पूंजी लागत में कमी करने का एक महत्वपूर्ण उपकरण है। मगर यह ध्यान रहे कि वित्तीय उत्तोलक एक दोधारी अस्त्र (Double Edged Weapon) के समान है। कम्पनी का प्रयत्न यह रहना चाहिए कि स्थिर लागत वाली पूंजी का प्रयोग करके लागत से अधिक आय अर्जित करे जिससे कि समता पूंजी की प्रत्याय को बढ़ाया जा सके। यदि व्यवहार में स्थिर प्रभार लागत की मात्रा आय से अधिक है तो समता पूंजी की प्रत्याय घटने लगती है। उदाहरण के लिए अगर कम्पनी 15 प्रतिशत के ब्याज पर ऋण प्राप्त करे और इस कोष का सम्पत्तियों में विनियोजन करके 25 प्रतिशत अर्जित करे तो कम्पनी 10 प्रतिशत की आय अर्जित करे तो शुद्ध कमी 5 प्रतिशत होगी जो हानि समता अंशधारियों को सहनी होगी। इस प्रकार स्पष्ट है कि वित्तीय उत्तोलक एक दोधारी तलवार के समान है जो अंशधारियों की आय को बढ़ाने की सम्भावना प्रस्तुत करता है लेकिन साथ–साथ उनके हानि उठाने की जोखिम भी सृजित करता है।

वित्तीय उत्तोलक की सीमाएँ (Limitations of Financial Leverage)-

इस प्रविधि की प्रमुख प्रबन्धकीय सीमाएँ निम्न प्रकार हैं :

1. यह इस मान्यता पर आधारित है कि ऋणी–पूंजी की लागत सदैव स्थिर रहती है। किन्तु यह मान्यता अव्यावहारिक है। बढ़ती जोखिम के साथ ब्याज दर भी बढ़ती है।

2. यह प्रविधि ऋण–पूंजी की स्पष्ट लागत (Explicit Cost) को ही ध्यान में रखता है, अस्पष्ट लागत (Implicit Cost) को नहीं।

4.7 संयुक्त उत्तोलक (Combined Leverage)

स्थायी परिचालन व्ययों एवं वित्तीय व्ययों के आधार पर ज्ञात किया गया कुल उत्तोलक ही संयुक्त या मिश्रित उत्तोलक के नाम से जाना जाता

है। संयुक्त उत्तोलक की गणना से परिचालन उत्तोलक एवं वित्तीय उत्तोलक के संयुक्त प्रभाव को स्पष्ट किया जा सकता है। संयुक्त उत्तोलक वास्तव में परिचालन एवं वित्तीय उत्तोलक के संयुक्त प्रभाव का मापन करता है। साधारण शब्दों में, संयुक्त उत्तोलक की मात्रा परिचालन उत्तोलक में वित्तीय उत्तोलक का गुणा करके ज्ञात की जाती है।इस उत्तोलक की गणना का सूत्र है।

$$Combined\ Leverage = \frac{S-VC}{(s-VC)-FC} \times \frac{(S-VC)-FC}{(S-VC-FC-INT)}$$

$$= \frac{C}{EBIT} \times \frac{EBIT}{PBT}$$

$$= \frac{C}{PBI}$$

यहाँ पर S = Sales

VC = Variable Costs

FC = Fixed Costs

INT = Interest on Debt Capital

C = Contribution

EBIT = Earnings Before Interest & Taxes

PBT = Profit Before Tax

Example : 1

एक्स लिमिटेड कम्पनी का आर्थिक चिट्ठा निम्न प्रकार है।

Liabilities	Amount	Assets	Amount
	Rs		
Equity capital		Net Fixed Assets	270000
(Rs.10 per share)	110000	Current Assets	80000
10% long term earnings	150000		
Retained earnings	30000		
Current liabilities	60000		
	350000		350000

कम्पनी का कुल सम्पत्ति आवर्त अनुपात 3.0 है इसकी स्थायी परिचालन लागतें 1,50,000 रू. है तथा परिवर्तनशील परिचालन लागतों का अनुपात 30 प्रतिशत है। आय कर की दर 50 प्रतिशत है। कम्पनी के लिए उत्तोलकों की गणना कीजिए।

Solution,

Income Statement of the Company

	Rs.
Sales (Rs. 3,50,000 x 3)	10,50,000
Less: Variable Costs (30% of sales)	3,15,000
Contribution	7,35,000
Less: Fixed Costs	1,50,000
EBIT	5,85,000
Less: Interest	15,000
Profit Before Taxes (PBT)	5,70,000
Less Taxes	2,85,000
Earnings After Taxes (EAT)	2,85,000

Computation of Leverage

1. Operating Leverage = C/EBIT

   = 7,35,000/5,85,000=1,256 (Approx.)

2. Financial Leverage = EBIT / PBT

   = 5,85,000/5,70,000=1.026 (Approx)

3. Combined Leverage = C/PBT or Operating Leverage Financial Leverage

   = 7,35,000/5,70,000

   = 1.2894 (Approx)

   CL = 1.256 x 1.026

   = 1.288

Example : 2

एक्स कम्पनी की बिक्री 350000 रू. है। परिवर्तनशील लागत बिक्री की 40 प्रतिशत है जबकि स्थिर परिचालन लागत 105000 रू. है। ऋण पत्रों पर देय ब्याज का भार 21000 रू. है। आप परिचालन वित्तीय तथा संयुक्त उत्तोलकों की गणना कीजिए। यदि बिक्री में 5 प्रतिशत की वृद्धि हो तो, इसके प्रभावों को समझाइये।

Solution,

Statement showing computation of income of the Company

		Rs.
	Sales	350000
Less:	Variable costs (40%)	140000
	Contribution	210000
Less:	Fixed costs	105000
	EBIT	105000
Less:	Interest on debentures	21000
	EBT	84000

(1) Operating Leverage = C/EBIT

= 210000 / 105000 = 2

(2) Financial Leverage = EBIT / PBT

= 105000/84000 = 1.25

(3) Combined Leverage = C/PBT or Operating Leverage x Financial Leverage

= 21000 / 84000

= 2.5

CL = 2 x 1.25

= 2.5

संयुक्त उत्तोलक की गणना से स्पष्ट होता है कि बिक्री में 1 प्रतिशत की वृद्धि, कर से पूर्व लाभ में 2.5 प्रतिशत की वृद्धि होती है। अतः 5 प्रतिशत वृद्धि होने पर कर से पूर्व लाभ में (2.5 x 5) 12.5 प्रतिशत वृद्धि होगी।

संयुक्त उत्तोलक की मात्रा : संयुक्त उत्तोलक की मात्रा इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि बिक्री की मात्रा में परिवर्तन का प्रति अंश आय पर पड़ने वाले प्रभाव को स्पष्ट किया जा सकता है। विशेष रूप से नये विनियोग प्रस्तावों के लिए योजना बनाते समय इसका अधिक प्रयोग किया जाता है।

संयुक्त उत्तोलक का प्रभाव : परिचालन एवं वित्तीय उत्तोलक के सामूहिक प्रभावों के आधार पर अनिश्चितता एवं जोखिम की सीमा का विश्लेषण एवं निर्धारण किया जा सकता है।

4.8 सारांश

लीवरेज एक ऐसे उपकरण के समान है जो दो तरफा काट करता है। यह एक ओर जोखिम में वृद्धि करता है तो दूसरी ओर विनियोजित पूंजी पर प्रत्याय की दर में भी वृद्धि करने का अवसर प्रदान करता है। जब तक विक्रय से प्राप्त होने वाली आय का स्तर ऊँचा रहता है । उच्च उत्तोलक स्वामी पूंजी पर अनुपात से अधिक लाभ प्रदान करने में सफल होता है परन्तु विक्रय आय में कमी होने पर यह स्वामित्व पूंजी पर लाभ के प्रतिशत में अनुपात से अधिक कमी कर देता है। लीवरेज शब्द अभियंत्रिकी से लिया गया है। यह लीवर की क्रिया के कारण प्रायः यांत्रिक लाभ को बतलाता है। जिस प्रकार लीवर की क्रिया से भारी से भारी मशीनों में गति उत्पन्न हो जाती है। उसी प्रकार लीवरेज में वृद्धि या कमी संस्था की लाभदायकता में अनुपात से अधिक वृद्धि या कमी उत्पन्न कर सकती है। लीवर का कार्य शक्ति है अर्थात प्रभावशीलता। वित्तीय प्रबन्ध में कुल सम्पत्तियों के अर्थ प्रबन्धन में ऋण पूंजी को लीवन के रूप में माना गया है। अतः यह कहना उचित होगा कि ऊँचे लीवरेज के आधार पर व्यवसाय संचालन के लिये ऊँचे स्तर की दक्षता एवं सतर्कता की अपेक्षा की जाती है।

4.9 शब्दावली

लीवरेज : लीवरेज का आशय प्रभावशीलता से है अर्थात प्रेरित या बाध्य करने वाली शक्ति से है।

परिचालन लीवरेज : परिचालन लीवरेज उस समय उत्पन्न होता है जब विक्रय की मात्रा में होने वाले परिवर्तन संस्था के परिचालन लाभों में भी परिवर्तन कर देते हैं।

वित्तीय लीवरेज : वित्तीय उत्तोलक यह बतलाता है कि, पूंजी संरचना में स्थायी लागत पूंजी च समता पूंजी का प्रयोग किस अनुपात में किया गया है। तथा इसका समता अंशधारियों की आय पर क्या प्रभाव हुआ?

संयुक्त लीवरेज : स्थायी परिचालन व्ययों एवं स्थायी वित्तीय व्ययों के आध ार पर ज्ञात किया गया कुल लीवरेज ही संयुक्त या मिश्रित लीवरेज के नाम से जाना जाता है।

4.10 स्व–परक प्रश्न

1. लीवरेज को समझाते हुए इसके प्रकारों की व्याख्या कीजिए?

2. परिचालन लीवरेज से क्या आशय है। परिचालन लीवरेज की विस्तृत व्याख्या कीजिए?

3. वित्तीय लीवरेज क्या है इसकी गणना कैसे की जाती है।, उदाहरण द्वारा स्पष्ट कीजिए।

4. संयुक्त लीवरेज से क्या आशय है । इसकी मात्रा का मापन कैसे किया जाता है?

5. ई.बी.आई.टी. – ई.पी.एस. का विश्लेषण कीजिए एवं इसके तटस्थता बिन्दु निर्धारण विधि की व्याख्या कीजिए।

6. "लीवरेज एक ऐसे उपकरण के समान है जो दो तरफा काट करता है एक ओर जोखिम में वृद्धि करता है तो दूसरी ओर विनियोजित पूंजी प्रत्याय की दर में भी वृद्धि करने का अवसर प्रदान करता है।" उपर्युक्त कथन की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

B.Com.-504
वित्तीय प्रबन्ध

खण्ड
3
वित्तीय निर्णय

इकाई - 1 5
वित्त के साधन

इकाई - 2 17
कार्यशील पूँजी प्रबन्ध

इकाई - 3 32
कार्यशील पूँजी का अनुमान

इकाई - 4 45
स्कन्ध एवं प्राप्य बिलों का प्रबन्ध

इकाई - 5 61
रोकड़ प्रबन्ध

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
श्री एम0 एल0 कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

संरचनात्मक सम्पादन

डॉ0 मंजूलिका श्रीवास्तव	निदेशक, दूरस्थ शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली

विषयगत सम्पादन

प्रो0 एम0 बी0 शुक्ला	डीन वाणिज्य एवं प्रबन्ध संकाय, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

लेखक

डॉ0 डी0 डी0 बेडिया	रीडर, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

प्रस्तुत पाठ्य सामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के स्वयं के हैं।

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

खण्ड-3 परिचय-

इस खण्ड में वित्तीय प्रबन्धन के अन्तर्गत वित्तीय निर्णय की व्याख्या निम्नलिखित पाँच इकाईयों में की गई है। इकाई एक में वित्त के साधनों की विस्तृत व्याख्या की गई है। इकाई दो में कार्यशील पूँजी प्रबन्ध को भली-भाँति स्पष्ट किया गया है। इकाई तीन में कार्यशील पूँजी का अनुमान लगाने की विधि का गहन विवरण प्रस्तुत किया गया है। इकाई चार में स्कन्ध एवं प्राप्त बिलों का प्रबन्ध का विश्लेषण किया गया है। इकाई पाँच में रोकड़ प्रबन्ध को विधिवत समझाया गया है।

इकाई – 1 वित्त के साधन (Source of Financing)

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 दीर्घकालीन वित्त के स्रोत

1.4 मध्यकालीन एवं अल्पकालीन वित्त के साधनों का अर्थ

1.5 मध्यकालीन वित्त के साधन

1.6 अल्पकालीन वित्त के साधन

1.7 सारांश

1.8 शब्दावली

1.9 स्व–परक प्रश्न

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- दीर्घकालीन वित्त के स्रोत को समझा सकें।
- मध्यकालीन वित्त के साधन बता सकें।
- अल्पकालीन वित्त के साधन बता सकें।
- एक संगठन में अल्पकालीन एवं मध्यकालीन वित्त के साधनों के महत्व को स्पष्ट कर सकें।

1.2 प्रस्तावना

किसी भी संगठन में वित्त के साधनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है जिसके आधार पर एक संगठन अथवा संस्था का जन्म होता है। दीर्घकालीन, मध्यकालीन एवं अल्पकालीन वित्त के साधन संगठन के जीवन क्रम में अपरिहार्य है।

प्रस्तुत इकाई में इनकी क्रमानुसार व्याख्या की गई है जो एक कम्पनी के जीवन चक्र को निश्चित करते हैं वित्त के स्रोत वर्तमान प्रतिस्पर्धी युग में वित्तीय प्रबन्धकों के लिए महत्वपूर्ण निर्णय होता है। जिसके आधार पर वे यह तय करते

हैं कि, वित्त के किस स्रोत से पूंजी की औसत लागत कम हो और उसकी उत्पादकता अधिकतम हो ज़िससे संगठन को उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति कर प्रतिस्पर्धी बना सकें।

1.3 दीर्घकालीन वित्त (Long Term Finance)

दीर्घकालीन वित्त से आशय ऐसी वित्तीय आवश्यकताओं से है जो सात वर्ष से लेकर दस वर्ष या अधिक अवधि के लिए वित्त का प्रबन्ध करना पड़ता है। दीर्घकालीन वित्त का विनियोग स्थायी सम्पत्तियों में किया जाता है अर्थात तरलता नहीं के बराबर होती है। अतः दीर्घकालीन वित्त को अंश पूंजी, ऋण पूंजी तथा कम्पनी के प्रतिधारित लाभों से प्रबन्ध किया जाता है। नयी कम्पनियाँ लाभों को प्रतिधारित करने की स्थिति में नहीं होती है वे केवल अंश एवं ऋण पूंजी के स्रोत से वित्त व्यवस्था करती है।

दीर्घकालीन वित्त के स्त्रोत –

1. **अंश पूंजी** अंश से आंशय पूंजी के एक भाग से है जो अनेक हिस्सों में विभाजित होते हैं अर्थात पूंजी का अनुपातिक भाग जिसका प्रत्येक सदस्य अधि ाकारी होता है अंश कहलाता है।

विशेषताएँ –

– अंश चल सम्पत्ति माने जाते हैं जो अंशधारियों के इच्छानुसार बेचे जाते हैं।

– अंशधारियों का दायित्व अंश में अंकित मूल्य तक सीमित होता है।

– अंशधारी कम्पंनी के स्वामी होते हैं और उन्हें प्रबन्ध का अधिकार होता है।

– अंश पूंजी जोखिम पूंजी होती है जो अंशधारियों को वापस होने की गारंटी नहीं देती।

– अंशधारियों को अंश पर लाभांश प्राप्त करने का अधिकार होता है।

– अंश दीर्घकालीन स्थायी पूंजी के स्रोत होते हैं।

(अ) समताश अंश पूंजी –

समताश अंश धारी कम्पनी के वास्तविक स्वामी होते हैं जो कम्पनी के

जोखिम को सहन करते हैं और लाभांश प्राप्त करने का अधिकार पूर्वाधिकार अंशों पर भुगतान के बाद होता है। इन अंशों पर लाभांश की दर निश्चित नहीं होती। इनका लाभांश कम्पनी की आय के अनुपात में घटता बढ़ता रहता है। समतांश धारियों के द्वारा संचालकों की नियुक्ति होती है एवं इन्हीं के द्वारा संचालकों का चयन किया जाता है।

(ब) पूर्वाधिकार अंश पूंजी

कम्पनी के समस्त व्ययों का भुगतान करने के बाद शेष बचे लाभ पर पूर्वाधिकार अंशधारियों को पहले लाभांश प्राप्त करने का अधिकार होता है। इन अंशों पर भुगतान के बाद समता अंशधारियों को लाभांश का भुगतान किया जाता है। कम्पनी के विघटन की दशा में समस्त देनदारियों भुगतान करने के पश्चात शेष बची सम्पत्तियों से पूर्वाधिकार अंशधारियों की पूंजी वापस की जाती है लेकिन पूर्वाधिकार अंशधारियों को प्रबन्ध पर नियंत्रण का अधिकार नहीं होता। पूर्वाधिकार अंशधारियों के प्रकार निम्न है-

1. संचयी पूर्वाधिकार अंश
2. असंचयी पूर्वाधिकार अंश
3. भागीदार पूर्वाधिकार अंश
4. गैरभागीदार पूर्वाधिकार अंश
5. शोध्य पूर्वाधिकार अंश
6. अशोध्य पूर्वाधिकार अंश
7. परिवर्तनशील पूर्वाधिकार अंश
8. अपरिवर्तनशील पूर्वाधिकार अंश
9. संरक्षित पूर्वाधिकार अंश
10. प्रत्याभूतित पूर्वाधिकार अंश

2. ऋण पूंजी-

व्यवसाय उपक्रमों की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अंश पूंजी के अलावा जिस पूंजी का उपयोग किया जाता है उसे ऋण पूंजी कहते हैं। यह पूंजी ऋणदाताओं द्वारा प्रदान की जाती है और यह ऋण निगमों द्वारा ऋण पत्रों, बन्ध पत्रों एवम् सावधि ऋणों के माध्यम से प्राप्त की जाती है।

ऋण पूंजी से आशय कम्पनी द्वारा लिये गये ऋण की लिखित स्वीकृति एक पत्र के द्वारा दी जाती है जिस पर कम्पनी की मुहर लगी होती है और उस पर ऋण की राशि एवं ब्याज दर व अन्य शर्तों का उल्लेख रहता है अर्थात ऋण पत्र कम्पनी के सामान्य मुहर के अधीन निर्गमित एक ऐसा प्रपत्र है जो ऋण की स्वीकृति प्रदान करता है और उन शर्तों को भी स्पष्ट करता है जिनके अधीन वे निर्ममित किए गये हैं और उनका शोधन होता है।

(अ) ऋणपत्र-

ऋणपत्र में ऋणपत्र स्तंभ और कम्पनी की अन्य प्रतिभूतियों को सम्मिलित किया जाता है। चाहे वे कम्पनी की सम्पत्तियों पर प्रभार उत्पन्न करे या नहीं। ऋणपत्रों को समझने के लिए निम्न बिन्दु समझना आवश्यक है-

1. ऋणपत्रधारी कम्पनी के ऋणदाता होते हैं स्वामी नहीं। इन्हें मत देने का अधिकार नहीं है।
2. ऋणपत्रों का स्कन्ध बाजार में क्रय-विक्रय किया जा सकता है।
3. कम्पनी प्रविवरण जारी करके ऋणपत्रों के माध्यम से सार्वजनिक जनता से ऋण प्राप्त करती है।
4. ऋणपत्रों की अवधि बहुधा दीर्घकालीन होती है जिनका शोध्य दस वर्षों से पूर्व नहीं होता।

6. कम्पनी विघटन की स्थिति में ऋणपत्रों की रकम वापसी अंश पूंजी से पहले होती है।

ऋणपत्रों के प्रकार निम्नवत् हैं-

1. शोध्य एवं अशोध्य ऋणपत्र
2. पंजीकृत एवं वाहक ऋणपत्र
3. परिवर्तनीय एवं अपरिवर्तनीय ऋणपत्र
4. सुरक्षित एवं असुरक्षित ऋणपत्र

(ब) सार्वजनिक ऋण –

यह पूंजी का मुख्य स्रोत है। यह ऋण बहुधा बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं से प्राप्त किये जाते हैं जिनका भुगतान तीन वर्ष की अवधि से लेकर दस वर्ष तक की अवधि तक होता है। ये संस्थाएँ निम्न हैं। जैसे-– IDBI,

IFCI, ICICI, FCI and Commercial Bank etc.

(स) प्रतिभूतियाँ एवं बॉण्ड –

दीर्घकालीन वित्त के साधनों के रूप में बन्ध पत्र एवं बांण्डों का काफी प्रचलन है। अर्थात ऐसे ऋणपत्र जो कम्पनी की सम्पत्तियों को बन्धक रखकर निर्गमित किये जाते हैं जिन्हें भारत में सुरक्षित या प्रत्याभूतित ऋणपत्र कहा जाता है। अन्य देशों में इसे बॉण्ड की रूप में जाना जाता है। बन्ध पत्र कम्पनी द्वारा लिये गये ऋण का प्रमाणपत्र है। जिससे कम्पनी की सम्पत्तियों पर प्रभाव उत्पन्न होता है। बन्ध पत्र विभिन्न प्रकार के होते हैं जो निम्न हैं –

(1) **ब्याज के आधार पर** – वाहक एवं पंजीकृत बंधपत्र।

(2) **सुरक्षा के आधार पर** – बन्धक बन्धपत्र, गारंटी युक्त, सम्पारिर्वक एवं उपकरण न्यास बन्धपत्र।

(3) **प्रावधान के आधार पर** – संगठित, विकास एवं विस्तार, निधिक्रण एवं पुनर्निधिकरण, समायोजन एवं पुनर्गठन, विकास एवं विस्तार एवं क्रय धनराशि बन्धपत्र।

(4) **आय के आधार पर** – आय, निश्चित ब्याज, भागीदार एवं लाभभागिता, स्थिरीकरण एवं कर रहित बन्धपत्र।

1.4 मध्यकालीन एवं अल्प कालीन वित्त के साधन (Sources of Medium-Term and Short-Term Finance)

व्यावसायिक वित्त का विभाजन काल क्रमानुसार अल्पकालीन, मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन वित्त के रूप में किया जाता है। मध्यकालीन वित्त में एक वर्ष से लेकर सात वर्ष तक के लिये होते हैं। वे ऋण कभी स्थायी पूंजी के प्रबन्ध के काम में आते हैं तो कभी कार्यशील पूंजी की आवश्यकताओं की पूर्ति करते है। दीर्घकालीन वित्त मध्यकालीन वित्त की तुलना में अधिक अवधि के लिए होते हैं जिन्हें स्थायी सम्पत्तियों में समायोजित किया जाता है। वर्तमान व्यावसायिक जगत में मध्यकालीन वित्त के साधन बहुत महत्वपूर्ण भूमिका कम्पनी की स्थायी पूंजी में निभाते हैं जिसके आधार पर कम्पनियाँ या संगठन अपने आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए विभिन्न स्रोतों से वित्त प्रबन्ध करते हैं। मध्यकालीन वित्त की आवश्यकता एक वर्ष से लेकर तीन, पांच या सात वर्षों तक के लिए होती

है। सामान्यतया इस वित्त का प्रयोग व्यवसाय के विकास एवं विस्तार, अतिरिक्त संयत्रों व उपकरणों का क्रय, मशीनों का प्रतिस्थापन, पुराने ऋणपत्रों व बॉण्डों की अदायगी, बाजार सर्वेक्षण, विज्ञापन अभियान आदि के लिए होता है। भारत में मध यकालीन वित्त को प्रमुखतया निम्न साधनों से जुटाया जाता है।

(1) बैंक ऋण (Bank Loan) –

वर्तमान प्रतिस्पर्धा के युग में बैंकों द्वारा मध्यकालीन ऋण प्रदान करना, विकास करना एवं वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए त्वरित प्रबन्ध करने में वाणिज्य बैकों की महत्वपूर्ण भूमिका है। मध्यकालीन वित्त प्रदान करने के निम्न तरीके हैं – (1) रोकड़ साख, (2) अधिविकर्ष, (3) प्रतिभूति ऋण (4) अंशों व ऋणपत्रों को क्रय करना व (5) अंशों व ऋणपत्रों का अभिगोपन करना। वाणिज्यिक बैंक प्रायः कम ब्याज दर पर मध्यमकालीन ऋण प्रदान करते हैं। वे बैक औद्योगिक उपक्रमों, निगमों ने कम्पनियों को इस प्रकार का ऋण दे करके देश के त्वरित आर्थिक विकास को सुनिश्चित कर रहे हैं।

(2) शोध्य पूर्णाधिकार अंशों का निर्गमन (Issue of Redeemable Preference Shares) –

वर्तमान व्यवसाय जगत में शोध्य पूर्वाधिकार अंश मध्यमकालीन वित्त के सबसे सस्ते एवं लोकप्रिय साधन हैं भारत में इन अंशों पर एक निश्चित दर से लाभांश दिया जाता है। यह अंश पॉच से सात वर्षों में जनता को लौटा दिये जाते हैं।

(3) शोध्य ऋण पत्रों का निर्गमन (Issue of Redeemable Debenture)–

कुछ विशेष क्षेत्रों अर्थात् उद्योगों में शोध्य ऋण पत्रों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह क्षेत्र निम्न है – कम्प्यूटर उद्योग, जूट उद्योग, सूती वस्त्र उद्योग, ज़हाजरानी, विद्युत एवं कागज उद्योग। इन उद्योगों में विशेष रूप से शोध्य ऋण पत्रों का निर्गमन किया जाता है। भारत में इन ऋण पत्रों के निर्गमन में पूर्व निर्धारित ब्याज का भुगतान करना होता है और निश्चित समय पूरा होने पर इनकी मूल रकम भी वापस कर दी जाती है। यदि इनके शोधन के पूर्व ही कम्पनी का समापन हो जाता है तो ऋण पत्रों की राशि और उन पर देय ब्याज की राशि का भुगतान असुरक्षित लेनदारों और अंशधारियों की राशि के भुगतान से पहले

किया जाता है। इसी कारण से शोध्य ऋण पत्रों के धारक अधिक सुरक्षित रहते हैं और वे आसानी से शोध्य ऋण पत्रों को क्रय कर लेते हैं।

(4) जन निक्षेप (Public Deposits) –

वर्तमान जगत में मध्यकालीन वित्त की आवश्यकता की पूर्ति के लिए कम्पनियां सार्वजनिक लोगों से एक निश्चित ब्याज दर पर निक्षेप स्वीकार करती हैं। भारत में जनता से निक्षेप प्राप्त करने की परम्परा अति प्राचीन है। भारत में जनता से जमा स्वीकार करवाना एक पुरानी परम्परा है जो विशेषकर अहमदाबाद, सूरत तथा मुम्बई में इस वित्तीय स्रोत का प्रचलन था। भारतीय रक्षित कोष के अध्ययन के अनुसार जन निक्षेप की लोकप्रियता महाराष्ट्र में सर्वाधिक है लेकिन पश्चिमी बंगाल, तमिलनाडु, दिल्ली तथा गुजरात में भी इसकी लोकप्रियता बढ़ती जा रही है। जन निक्षेप से मिलने वाले लाभ हैं सरल, कम खर्चीली, लोचपूर्ण, व जमाकर्ताओं के हितों की सुरक्षा। फिर भी, जन निक्षेप आज अच्छे समय के साथी के समान होते हैं। जब अच्छी परिस्थितियां होती हैं तब तो जन निक्षेप आसानी से मिल जाते हैं परन्तु बुरे व संकट के समय में जनता भयभीत होकर उनको वापस मांग लेती है। 1929 के महान विश्वव्यापी मंदी के समय ऐसी स्थिति पाई गई थी। वर्तमान व्यवसायिक मन्दी में जनता से जमा स्वीकार करवाना कठिन कार्य हो गया है। जिसका परिणाम व्यावसायिक जगत में परिलक्षित हो रहा है क्योंकि, उद्योगों को आसानी से वित्त उपलब्ध होना कठिन हो गया है। जनता जनार्दन अपना पैसा ऐसी स्थिति में वापस चाहती है।

(5) विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं से ऋण (Loan from Specific Financial Institutions) –

भारत में मध्यकालीन वित्त प्राप्त करने की प्रक्रिया 1948 से प्रारम्भ हुई जिसकी शुरूआत भारतीय औद्योगिक वित्त निगम के द्वारा की गयी। केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारों ने विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं की स्थापना औद्योगिक विकास में गति लाने के लिए की है। जिसका परिणाम वर्तमान मन्दी के दौर में भी ये विशिष्ट वित्तीय संस्थाएं अपनी भूमिका सार्वजनिक विकास एवं औद्योगिक **विकास** में निर्भीकता पूर्वक निर्वहन कर रही है। और भारत जैसे देश में मन्दी से **उभरने** के लिए संस्थाएँ रामबाण की तरह कार्य कर रही है और मध्यकालीन वित्त उपलब्ध करा रही है। प्रमुख विभिन्न संस्थाएँ निम्नलिखित हैं।

1. भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Finance Corporation of India or IFCI)

2. भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (Industrial Development Bank of India or IDBI)

3. भारतीय जीवन बीमा निगम (Life Insurance Corporation of India LIC)

4. भारतीय सामान्य बीमा निगम (General Insurance Corporation of India or GIC)

5. राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम (National Industrial Development Corporation of India or NIDC)

6. राज्य वित्तीय निगमें (State Financial Corporation or SFCs)

7. राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम (National Cooperative Development Corporation or NCDC)

8. राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम (National Small Scale Industries Corporation or NSIC)

(6) अन्य साधन (Other sources) – उपरोक्त साधनों व संस्थाओं के अलावा निम्न साधन भी मध्यकालीन वित्त प्रदान करते हैं –

अ– केन्द्रीय व राज्य सरकारों द्वारा वित्तीय सहायता (Financial Assistance by the Central and State Government)

ब– कर्मचारियों की भविष्य व पेंशन निधि (Provident and Pension Fund of Employees)

स– किराया क्रय व किस्त भुगतान पद्धति (Hire Purchase and Instalment System)

द– विदेशी विनियोग (Foreign Investments)

य– प्रतिधारित आय (Retained Earning)

र– अर्न्तकम्पनी ऋण (Inter-Corporate Loans)

ल– विदेशी संस्थागत निवेशक (Foreign Institutional Investor)

व– विदेशी प्रत्यक्ष निवेशक (Foreign Direct Investor)

1.5 अल्पकालीन वित्त के साधन (Sources of Short Term Finance)

अल्पकालीन वित्त के स्रोत कार्यशील पूंजी की आवश्यकता पूर्ण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। यह स्रोत एक वर्ष से कम अवधि की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। इनका उपयोग चल सम्पत्तियों अथवा दैनिक कार्यों (कच्चामाल मजदूरी वेतन, किराया, निर्माणी, व्यय, कर आदि) के लिए किया जाता है। अल्पकालीन वित्त के मुख्य स्रोत अग्रलिखित हैं –

(1) बैंक स्रोत (Bank Sources) –

अल्पकालीन वित्त की पूर्ति के लिए व्यवसायिक संस्थान वाणिज्यिक बैंकों से वित्तीय सहायता प्राप्त कर अपनी अल्पकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। भारत में वाणिज्यिक बैंकों द्वारा अल्पकालीन वित्त की व्यवस्था का प्रचलन प्राचीन काल से आज तक प्रचलित है। वे वाणिज्यिक बैंक निम्न रूप में अल्पकालीन कोष प्रदान करते हैं।

1. **सुरक्षित ऋण (Secured Loan)** – अल्पकालीन सुरक्षित ऋण के समय संस्था अपनी प्राप्तियों व रहतिया जैसी चल सम्पत्तियों को प्रतिभूति के रूप में बैंक को उपलब्ध कराती है। बैंक द्वारा उपलब्ध कराए गये इस प्रकार के ऋण कम्पनी की चल सम्पत्तियों पर प्रभार उत्पन्न करते हैं।

2. **बिलों की कटौती (Discounting of Bills)** – इसमें बैंक अपने ग्राहक के प्राप्य बिलों की कटौती कर देता है इस प्रकार ग्राहक को वर्तमान में ही अल्पकालीन वित्त प्राप्त हो जाती है और परिपक्वता तिथि आने पर तृतीय पक्षकार द्वारा बिल का पूर्ण अंकित मूल्य बैंक को दिया जाता है। इस प्रकार कटौती को हानि पर ग्राहक को वित्त प्राप्त हो जाता हैं

3. **अधिविकर्ष (Overdraft)** – बैंक द्वारा ग्राहक के चेकों का भुगतान उसके खाते में अवशेष बैलेन्स शून्य होने पर भी किया जाता है। ग्राहक एक निश्चित सीमा तक ही अधिविकर्ष की सुविधा ले सकता है और ब्याज वास्तव में हासिल की राशि पर ही देनी होती है।

4. **नकद साख (Cash Credit)** – बैंक ग्राहक के लिए एक अधिकतम ऋण सीमा (Maximum Loan Limit) तय कर देता है। ग्राहक अपनी मौसमी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इस सीमा के भीतर जब जैसी जरूरत हो, ऋण

की सुविधा हासिल कर सकता है। बैंक द्वारा केवल उसी ऋण राशि पर ब्याज वसूल किया जाता है जो ग्राहक द्वारा बैंक से निकाली हाती हैं ।

(2) गैर–बैंक साधन (Non Bank Sources) –

अल्पकालीन वित्त के ये साधन बैंकों के अतिरिक्त अन्य पक्षों से प्राप्त होते हैं। ये साधन निम्नलिखित हैं –

1. लीजिंग व वित्त कम्पनियाँ (Leasing and Finance Companies)–

वर्तमान दशक में कम्पनियों की अल्पकालीन वित्त प्रदान करने में लीजिंग एवं वित्त कम्पनियों ने अग्रणी भूमिका निभाई है। इनके द्वारा दिये गये ऋण प्रायः चल सम्पत्तियों पर प्रभार के रूप में होते हैं। इनकी ऋण प्रदान करने की औपचारिकताएं सरल होने और ब्याज दर कम होने के कारण लोकप्रियता मिल रही थी। परन्तु हाल के वर्ष में फर्जी वित्त कम्पनियों के प्रवेश और भ्रष्टाचार के कारण इनकी विश्वसनीयता पर प्रश्न चिन्ह लग गया है।

2. देशी बैंकर (Indigenous Bankers) –

एकांकी व्यवसाय व साझेदारी फर्मों हेतु अल्पकालीन वित्तीयन में देशी बैंकरों की सक्रिय भूमिका रही है। वे देशी बैकर अहमदाबाद व मुम्बई की सूती मिलों,, असम व बगाल के चाय बागानों, तेल, चावल, चमड़े आदि के कारखानों में अल्पकालीन साख सुविधाऍं प्रदान करते रहे हैं । इन बैंकों से ऋण सरलता और सुविधा से बिना किसी औपचारिकता के मिल जाता है। फिर भी ब्याज दर का अधिक होना व अनावश्यक रूप से शोषण करना इनके दोष हैं।

3. व्यापारिक साख (Trade Credit) –

इस प्रकार की अल्पकालीन साख का उपयोग, फुटकर व्यापारी व थोक व्यापारी किया करते हैं जिन्हें निर्माता द्वारा उधार माल का विक्रय 15 दिन से 3–4 मास के लिए किया जाता है। इस अवधि के लिए कोई ब्याज नहीं लिया जाता है और क्रेता द्वारा खरीदे गये माल को बेचकर थोड़े समय बाद भुगतान किया जाता है। इस प्रकार की व्यापारिक साख द्वारा छोटी संस्थाएं भी कम पूंजी से ही अपनी व्यावसायिक गतिविधियॉ जारी रख सकती हैं।

4. सार्वजनिक और अन्र्तकम्पनी निक्षेप (Public and Inter company Deposits) –

कम्पनियां अल्पकालीन बिल की प्राप्ति हेतु जनता और अन्य कम्पनियों के निक्षेप को भी स्वीकार कर रही हैं। ये विशेष – 1. मांग निक्षेप (Call Deposits) जो एक दिन की सूचना पर वापस प्राप्त किए जा सकें। 2. त्रैमासिक निक्षेप तथा 3. अर्द्धवार्षिक निक्षेप के रूप में हो सकते हैं। ये निक्षेप उन कम्पनियों को आसानी से मिल जाते हैं जिनकी बाजार में प्रतिष्ठा अच्छी हो।

5. अन्य साधन (Other sources) – अल्प वित्त पूर्ति के कुछ अन्य साधन भी हैं, जैसे –

1. किस्त सम्बन्धी साख (Instalment Credit)
2. अदत्त व्यय (Outstanding Expenses)
3. करों के लिए प्रावधान (Provision for Taxes)
4. उपार्जित व्यय (Accrued Expenses)
5. सरकार की वित्तीय सहायता (Government Credit)
6. लाभों का पुनर्विनियोग (Ploughing-back of profits)
7. संचालकों के ऋण (Loan from Directors)
8. ह्रास कोष (Depreciation Fund)
9. कर्मचारियों की प्रतिभूतियॉं (Securities of Employees)

1.6 सारांश

वित्त के साधनों का निष्कर्ष यह है कि एक संगठन को जिन अल्पकालीन मध्यकालीन एवं दीर्घकालीन वित्तीय स्रोतों की आवश्यकता होती है उन्हें अवधि के आधार पर विभाजित किया गया है। वित्त के साधन एक संगठन की आत्मा होते हैं। बिना वित्तीय संसाधनों के एक संगठन का अस्तित्व निरर्थक है। जिस प्रकार आत्मा के बिना शरीर का अस्तित्व निरर्थक है ठीक उसी प्रकार एक संगठन का अस्तित्व बिना वित्तीय साधनों के निरर्थक है।

1.7 शब्दावली

– **अल्पकालीन वित्त के साधन (Short Term Source of Finance)** – एक वर्ष के लिये जिन वित्तीय साधनों का उपयोग किया जाता है उन्हें

अल्पकालीन वित्त के साधन कहते हैं।

– **मध्यकालीन वित्त के साधन (Medium Term Source of Finance)** – एक से पॉच वर्ष के लिये जिन वित्तीय साधनों का प्रयोग किया जाता है उन्हें मध्यकालीन वित्त के साधन कहते हैं।

– **दीर्घकालीन वित्त के साधन (Long Term Source of Finance)** – पॉच वर्ष से अधिक के लिये जिन वित्तीय साधनों का उपयोग किया जाता है उन्हें दीर्घकालीन वित्त के साधन कहते हैं।

1.8 स्व–परक प्रश्न :

1. दीर्घकालीन वित्त के स्रोत क्या हैं? उदाहरण देकर आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
2. अल्पकालीन वित्त के साधन क्या हैं? इनका वर्णन कीजिए।
3. भारत में उपलब्ध वित्त के स्रोतों का उल्लेख कीजिए एवं अल्पकालीन वित्त के गैर–साधनों की व्याख्या कीजिए।
4. मध्यकालीन वित्त के साधनों को समझाते हुए इनकी व्याख्या कीजिए।
5. अल्पकालीन एवं मध्यकालीन वित्त के साधनों के अन्तर को समझाइये।

इकाई– 2 कार्यशील पूँजी प्रबन्ध (Working Capital Management)

इकाई की संरचना

2.1 उद्‌देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 कार्यशील पूँजी का अर्थ

2.4 कार्यशील पूंजी की अवधारणा एवं प्रबन्ध

2.5 कार्यशील पूंजी की आवश्यकता एवं महत्व

2.6 कार्यशील पूंजी को प्रभावित करने वाले तत्व

2.7 सारांश

2.8 शब्दावली

2.9 स्व–परक प्रश्न

2.1 उद्‌देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

कार्यशील पूंजी का अर्थ बता सकें।

कार्यशील पूंजी का अवधारणा बता सकें।

कार्यशील पूंजी की आवश्यकता को समझा सकें।

कार्यशील पूंजी को प्रभावित करने वाले तत्वों की व्याख्या कर सकें।

2.2 प्रस्तावना

किसी भी संगठन में कार्यशील पूंजी एक महत्वपूर्ण वित्त स्रोत है जिससे संगठन के दैनिक व्ययों या आवश्यकताओं के पूर्ति होती है। इकाई में कार्यशील पूंजी का अर्थ कार्यशील पूंजी की विचारधारा, कार्यशील पूंजी की आवश्यता एवं कार्यशील पूंजी को प्रभावित करने वाले तत्वों को क्रमानुसार प्रस्तुत किया गया है। आधुनिक व्यवसाय जगत में कार्यशील पूंजी किसी भी संगठन में एक महत्त्वपूर्ण वित्त का स्रोत है जो अल्पकालीन वित्त के माध्यम से संगठन की आवश्यकता पूर्ति करती है। व्यावसायिक संस्था के सुचारू संचालन के लिए कार्यशील पूंजी का कुशलतापूर्वक संचालन करना ही कार्यशील पूंजी का प्रबन्ध कहलाता है।

2.3 कार्यशील पूँजी का अर्थ

व्यवसाय के संचालन से सम्बन्धित दिन–प्रतिदिन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कुछ सम्पत्तियों की आवश्यकता होती है। इन सम्पत्तियों में रोकड़, प्राप्त विपत्र, विनियोग, कच्चा माल, निर्मित माल एवं अल्पकालीन ऋण आदि को सम्मिलित किया जाता है। इन सम्पत्तियों में विनियोजित पूंजी को कार्यशील पूंजी कहते हैं। कार्यशील पूंजी व्यवसाय के दिन–प्रतिदिन के आवश्यकताओं की पूर्ति एवं प्रगति हेतु स्थिर सम्पत्तियों के लिए आवश्यक पूंजी के साथ–साथ चालू सम्पत्तियों के लिए भी पर्याप्त पूंजी की व्यवस्था करती है। किसी भी कोष की प्राप्ति जो चालू सम्पत्तियों को बढ़ाता है। उस कोष को कार्यशील पूँजी की संज्ञा दी जाती है।

2.4 कार्यशील पूँजी की अवधारणा एवं प्रबन्ध

कार्यशील पूंजी का अर्थ बहुत विवादास्पद है। इसकी सर्वमान्य परिभाषा नहीं है।अलग अलग विद्वानों ने अलग अलग ढंग से इसका अर्थ प्रस्तुत किया है। अतः कार्यशील पूंजी के वास्तविक अर्थ को समझने के लिए उसकी अवधारणाओं का अध्ययन एवं विश्लेषण आवश्यक है।

कार्यशील पूंजी की अवधारणाएँ निम्न हैं –

(1) परिणात्मक अवधारणा–

इस अवधारणा के अनुसार कार्यशील पूंजी की मात्रा व्यवसाय की कुल चालू सम्पत्तियों की मात्रा के बराबर होती है। **सकल कार्यशील पूंजी (Gross Working Capital) संस्था की समस्त चल सम्पत्तियों का योग (Total Current Assets) ही सकल कार्यशील पूंजी है।** चालू सम्पत्तियों से आशय उन सम्पत्तियों से है जिन्हें लेखांकन वर्ष के दौरान रोकड़ में परिवर्तित किया जा सकता है। इसमें रोकड़ बैंक शेष, अल्पकालीन विनियोग, देनदार प्राप्य विपत्र और रहतिया को सम्मिलित किया जाता है।

(2) गुणात्मक अवधारणा –

इस विचारधारा के अनुसार चालू सम्पत्तियाँ, चालू दायित्वों से अनिवार्य रूप से अधिक होने चाहिए। यदि व्यवसाय में चालू सम्पत्तियाँ एवं चालू दायित्व बराबर होंगे तो संस्था में कार्यशील पूंजी शून्य होगी। कार्यशील पूँजी का यह अर्थ

एकाकी व्यापार एवं साझेदारी संगठनों में अधिक उपयुक्त माना जाता है जहाँ स्वामित्व एवं प्रबन्ध दोनों एक ही हाथ में केन्द्रित होते हैं। यह परिभाषा **गुणात्मक** पहलू (Qualitative Aspects) पर अधिक बल देती हैं और लेखाकन में सरलता, वित्तीय सुदृढ़ता और सुरक्षा सीमा का सूचक होती है।

(3) परिचालन चक्र अवधारणा –

इस अवधारणा के अनुसार व्यवसाय एक गतिशील क्रिया है और इसकी दिन प्रतिदिन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नकद वित्त की आवश्यकता होती है जिसकी प्राप्ति चक्रीय पूंजी के माध्यम से आसानी से की जा सकती है। एक व्यावसायिक संस्था के लिए कितनी नकद राशि की आवश्यकता होती है। यह उसके परिचालन चक्र पर निर्भर करता है अर्थात सामग्री के क्रय एवं नकद में उसके परिवर्तन के मध्य का समय परिचालन चक्र अथवा कार्यशील पूंजी कहलाता है। आधुनिक अवधारणा (Modern Concept) आजकल कार्यशील पूंजी की एक नवीन अवधारणा विकसित हुई है जो परिचालन चक्र अवधारणा (Operating Cycle Concept) के नाम से भी जानी जाती है। इस अवधारणा के अनुसार "कार्यशील पूंजा उपक्रम पूंजी का वह तरल भाग है जिसकी सामान्य परिचालन चक्र की अवधि में आवश्यकता होती है। किसी उपक्रम की सम्पूर्ण परिचालन अवधि में जितनी नकद धन की आवश्यकता होती है, वह कार्यशील पूंजी कहलाती है। नकद धन की जरूरत परिचालन चक्र की अवधि के परिचालन व्ययों पर आधारित होती है। प्रारम्भ में कार्यशील पूंजी के लिए नकद धन की आवश्यकता होती है। इसके बाद नकद धन से कच्चा माल क्रय किया जाता है। उत्पादन प्रक्रिया कच्चे माल को अर्द्धनिर्मित माल एवं निर्मित माल में परिवर्तित कर देती है। निर्मित माल को उधार विक्रय करने पर स्वस्थ्य देनदार अथवा प्राप्त विपत्र का हो जाता है। जिनसे बाद में नकद धन वसूल किया जाता है यह कार्यशील पूंजी का परिचालन चक्र बारम्बार चलता रहता है। इस चक्र के दौरान पूंजी का एक स्वरूप दूसरे स्वरूप में अर्थात नकद से कच्चा माल अर्द्धनिर्मित माल निर्मित माल देनदार व प्राप्त विपत्र नगद में परिवर्तन होता रहता है। परिचालन चक्र की अवधि की गणना इस उदाहरण से समझी जा सकती है। अगर किसी व्यावसायिक संस्था में नकद रोकड़ से कच्चा माल खरीद कर 20दिन भण्डार में रखा जाता है। कच्चा माल को निर्मित माल बनाने में उत्पादन प्रक्रिया 15 दिन लेती है निर्मित माल रहतिया में 27 दिन रहने के बाद उधार विक्रय होता

है, उधार विक्रय के 10 दिन बाद प्राप्य विपत्र प्राप्य होता है और प्राप्य विपत्र से रोकड़ की वसूली 18 दिन के बाद हो तो एक परिचालन चक्र की अवधि 90दिन (20+15+27+10+18) होगी।

परिचालन चक्र की अवधि जितनी कम होगी, कार्यशील पूंजी की आवश्यकता भी उतनी ही कम होगी उपरोक्त उदाहरण में वर्ष के प्रारम्भ में विनियोजित एक रूपया 90 वें दिन एक चक्र पूरा करने के बाद 91वें दिन दूसरा चक्र प्रारम्भ कर देगा। इस प्रकार वर्ष में लगभग 4 चक्र (365 / 90) पूरे हो जावेंगे। अगर संख्या में वर्ष भर के कुल परिचालन व्यय 4 लाख रूपये हो तो इस अवधारणा के अनुसार 1 लाख रूपये (400000 / 4) कार्यशील पूँजी कहा जायेगा।

कार्यशील पूँजी प्रबन्ध (Working Capital Management) –

व्यवसाय में पर्याप्त मात्रा में कार्यशील पूंजी का होना आवश्यक है। इस दृष्टि से व्यवसाय की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए कार्यशील पूंजी की मात्रा आवश्यकता अनुसार होने चाहिए। कार्यशील पूंजी के प्रबन्ध का उद्देश्य संस्था की चालू सम्पत्तियों एवं चालू दायित्वों के मध्य इस प्रकार सामंजस्य स्थापित करना होता है कि, कार्यशील पूंजी की मात्रा का निर्धारण अनुकूलतम हो सके। अतः कार्यशील पूंजी का प्रबन्ध वित्तीय प्रबन्ध का आंतरिक भाग है। इसलिए कार्यशील पूंजी का प्रबन्ध एक संस्था के आर्थिक स्रोतों पर नियंत्रण करने एवं उसकी लाभदायिकता को बनाये रखने में सहायक सिद्ध होता है। कार्यशील पूंजी का प्रबन्ध उस संस्था की जोखिम, तरलता एवं लाभदायिकता के बीच सही सामंजस्य बनाए रखने में सहायता करता है।

प्रत्येक व्यवसाय के संचालन के लिए स्थायी एवं कार्यशील दो प्रकार की पूंजी की आवश्यकता पड़ती है। स्थायी पूंजी को स्थिर सम्पत्तियों जैसे – भूमि, भवन, संयन्त्र मशीनरी, फर्नीचर, फिटिंग्स इत्यादि में प्रयोग किया जाता है। इनके उचित प्रबन्ध के लिए पूंजी बजटन, आदि प्रविधियाँ काम में लाई जाती हैं। इसके विपरीत, कार्यशील पूंजी व्यवसाय के दिन–प्रतिदिन के कार्यों को संचालित करने के लिए आवश्यक होती है, इन्हें चल सम्पत्तियों में विनियोग किया जाता है। इन चल सम्पत्तियों में रोकड़ रहतिया, प्राप्य विपत्र, आदि सम्मिलित होते हैं। कार्यशील पूंजी प्रबन्ध का सम्बन्ध चालू सम्पत्तियों व चालू दायित्वों के अन्तर्सम्बन्धों को व्यवस्थित करने से होता है। "कार्यशील पूंजी प्रबन्ध उन समस्याओं से सम्बन्धित है जो चालू सम्पत्तियों, चालू दायित्वों एवं पारस्परिक अन्तरसम्बन्धों को प्रबन्धित

करने से उत्पन्न होती है। "कार्यशील पूंजी प्रबन्ध विविध चालू सम्पत्तियों जैसे, रोकड़ एवं विपणन योग्य प्रतिभूतिया प्राप्य विपत्र एवं रहतिया के प्रशासन से सम्बन्धित होता है।

2.5 कार्यशील पूँजी की आवश्यकता एवं महत्व

व्यवसाय का संचालन उचित मात्रा में स्थायी सम्पत्तियों का प्रबन्ध कर लेने मात्र से ही नहीं किया जा सकता बल्कि इन सम्पत्तियों का पूर्ण उपयोग करके ही व्यवसाय में लाभ अर्जित किया जा सकता है। स्थायी सम्पत्तियों का पूर्ण उपयोग कार्यशील पूंजी के उचित उपयोग पर निर्भर करता है। अतः व्यवसाय की दिन–प्रतिदिन की क्रियाओं में कार्यशील पूंजी के प्रबन्ध की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। इसकी आवश्यकता व्यवसाय की सम्पत्तियों की क्रय शक्ति को सुरक्षा प्रदान करना एवं विनियोगों पर प्रत्याय बढ़ाना है। इस हेतु कार्यशील पूंजी का निर्धारण व्यवसाय की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए किया जाता है। सामान्यतः किसी भी व्यवसाय में कार्यशील पूंजी की मात्रा न तो आवश्यकता से अधिक होनी चाहिए और न ही कम। दोनों ही स्थितियां व्यवसाय के लिए हानिकारक सिद्ध होती है। एक व्यवसाय में कार्यशील पूंजी का वही स्थान होता है जो मानव शरीर में हृदय का होता है । हृदय को जैसे ही रक्त मिलता है वह कार्य करना प्रारम्भ कर देता है। वैसे ही व्यवसाय में कार्यशील पूँजी स्रोत के एकत्रित होते ही व्यवसाय अपनी गतिविधियाँ आरम्भ करने लगता है और जैसे ही वह प्रवाह रूक जाता है व्यवसाय समापन की ओर अग्रसर होने लगता है। इसलिए कहा जाता है कि व्यवसाय की तरलता की आवश्यकताएँ क्या हैं? और दायित्वों का भुगतान कब और कितने समय बाद करना है?

संस्था के पास जितनी चल सम्पत्तियाँ हैं उन्हें किस दर या सीमा से परिवर्तित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त संस्था की स्वन्ध नियंत्रण प्रणाली एवं स्थायी सम्पत्तियों के प्रशासन का भी अध्ययन करना आवश्यक है।

पर्याप्त कार्यशील पूँजी के लाभ (Advantages of Adequate Working Capital)-

जिस प्रकार मनुष्य के जिन्दा रहने के लिए भोजन आवश्यक है उसी प्रकार कार्यशील पूँजी की उचित मात्रा व्यवसाय के लिए महत्वपूर्ण होती है। परन्तु कार्यशील पूँजी का आवश्यकता से अधिक या कम होना दोनों ही

हानिकारक हैं। अधिक व बिना प्रयोजन कार्यशील पूँजी होने से धन के दुरूपयोग, प्रबन्धकीय अकुशलता, अंशधारियों में असन्तोष, लाभदायकता में कमी, खर्चों में वृद्धि, वित्तीय संस्थाओं का अविश्वास, सट्टेबाजी को जन्म व अंश मूल्यों में कमी की दिक्कतें आती हैं। इसके विपरीत, कार्यशील पूंजी की कमी होने पर व्यवसाय के संचालन, सरलता, लाभदायकता, व आकस्मिकताओं का सामना करने में कठिनाई आती है। पर्याप्त मात्रा में कार्यशील पूंजी से उपक्रम को निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं –

1. व्यवसाय की शोधनक्षमता (Solvency of the Business)-

पर्याप्त कार्यशील पूंजी उत्पादन के निर्बाध प्रवाह की व्यवस्था द्वारा कम्पनी की शोधनक्षमता बनाये रखने में सहायक होती है। उच्च शोधन क्षमता तृतीय पक्षों की दृष्टि में कम्पनी की वित्तीय स्थिति की सुदृढ़ता का प्रतीक होती है और आवश्यकता पड़ने पर तत्काल उधार लेने में कोई दिक्कत नहीं होती है।

2. नकद छूट का लाभ (Advantage of Cash Discounts) –

कम्पनी अपने आपूर्तिकर्ताओं को उधार खरीदे गये माल का तुरन्त नकद भुगतान करके आकर्षक छूट प्राप्त कर सकती है। इससे लागत पर नियंत्रण और मूल्यों में कमी सम्भव होती है।

3. आकर्षक लाभांश एवं अंश मूल्यों में स्थिरता (Attractive dividends and Stability in share prices) –

पर्याप्त कार्यशील पूंजी होने पर कम्पनी के संचालक एवं प्रबन्धक अंशधारियों को आकर्षक लाभांश वितरित कर सकते हैं। ऐसी दशा में अंशधारी तो संतुष्ट रहते ही हैं साथ ही साथ कम्पनी की प्रतिभूतियों का बाजार मूल्य भी स्थिर रहता है।

4. अनुकूल बाजार अवसरों का लाभ (Exploitation of Favourable Market Opportunities) –

केवल वे प्रतिष्ठान ही जिनके पास यथेष्ट कार्यशील पूंजी है अनुकूल बाजार अवसरों का लाभ उठा सकते हैं । अचानक निर्मित माल आपूर्ति का बड़ा आदेश मिलने पर अथवा कच्चे माल के मूल्यों में कमी होने पर कम्पनी कार्यशील पूंजी की पर्याप्तता के आधार पर लाभ उठा सकती है।

5. संकटों का साभाग (Facing the Crisis) –

पर्याप्त कार्यशील पूँजी होने पर कोई भी संस्था छोटे छोटे संकटों,

आकस्मिक घटनाओं व व्यापारिक संकटों का सरलतापूर्वक सामना कर सकती हैं।

6. उच्च मनोबल (High Morale) –

कार्यशील पूंजी के यथेष्ठ होने से व्यवसाय में सुरक्षा का वातावरण, आत्मविश्वास, उच्च मनोबल, समग्र कार्यदक्षता उत्पन्न होती है। जिससे प्रबन्धक व कर्मचारियों पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। अन्ततोगत्वा संस्था की कुशलता एवं लाभार्जन क्षमता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

7 अन्य लाभ (Other Advantages) –

क. वेतन मजदूरी व अन्य दैनिक कार्यों का नियमित भुगतान,

ख. स्थायी सम्पत्तियों की उत्पादकता में वृद्धि,

ग. विनियोगों पर उचित प्रत्याय,

घ. आकस्मिक भुगतान की सुविधा।

कार्यशील पूंजी के प्रकार अथवा वर्गीकरण (Kinds or Classification of working capital) –

कार्यशील पूँजी का वर्गीकरण निम्न चार वर्गों में किया जाता है।

1. सकल कार्यशील पूँजी (Gross Working Capital)–

इसका अभिप्राय चालू सम्पत्तियों के कुल योग से होता है। रोकड़ बैंक, शेष, देनदार, प्राप्य विपत्र, पूर्ववत भुगतान, आदि जैसी चालू सम्पत्तियों का योग सकल कार्यशील पूँजी कहा जाता है।

2. शुद्ध कार्यशील पूँजी (Net Working Capital) –

यह चालू सम्पत्तियों एवं चालू दायित्वों का अन्तर होता है। शुद्ध कार्यशील पूंजी की मात्रा सकल कार्यशील पूंजी का वह भाग होती है जिसका वित्तीयन दीर्घकालीन कोषों से किया जाता है। इसकी गणना दीर्घकालीन पूंजी में से स्थायी सम्पत्तियों को घटाकर की जा सकती है। संक्षेप में,

Networking Capital = Current Assets - Current Liabilities

Or

Networking Capital = Long-term Capital - Fixed Assets

3. स्थायी कार्यशील पूंजी (Fixed Working Capital) –

कार्यशील पूंजी की वह मात्रा जो व्यवसाय के सामान्य संचालन के लिए नियमित रूप से सदैव रखी जानी चाहिए, स्थायी कार्यशील पूंजी कही जाती है।

इसकी प्रकृति स्थायी एवं दीर्घकालीन होती है जिसका वित्तीयन भी दीर्घकालीन वित्तीय स्रोतों से किया जाता है।

4. **परिवर्तनशील कर्याशील पूंजी (Variable working capital)** –

स्थायी कार्यशील पूंजी के अतिरिक्त वर्ष के कुछ महीनों में व्यापार की अधिकता के कारण परिवर्तनशील कार्यशील पूंजी की आवश्यकता भी पड़ सकती है। चीनी उद्योग, ऊनी वस्त्र उद्योग, फ्रीज, कूलर, आदि मौसमी वस्तुओं को उत्पादित करने वाली संस्थाओं को मौसम के खास महीनों में इस प्रकार की अतिरिक्त पूंजी की आवश्यकता होती है मौसमी प्रकृति के कारण इसकी मात्रा घटती बढ़ती रहती है। जिसकी व्यवस्था अल्पकालीन स्रोतों से की जाती हैं।

2.6 कार्यशील पूँजी को निर्धारित करने वाले तत्व (Factors Determining Working Capital)

कार्यशील पूंजी की मात्रा को निर्धारित करने वाले प्रमुख तत्व निम्नलिखित है–

1. **व्यवसाय का स्वरूप (Character of Business)** –

कार्यशील पूंजी की मात्रा को प्रभावित करने वाला सर्वाधिक प्रमुख कारक व्यवसाय का स्वरूप है। रेलवे, सड़क, गैस, आदि जनोपयोगी व सेवा संस्थाओं में निरन्तर मांग और नकद विक्रय होने से कम कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है। इनकी माँग सदैव रहने से रोकड़ प्रवाह अनवरत होता रहता है। इसके विपरीत, विलासिता व सौन्दर्य प्रसाधन उत्पन्न करने वाली संस्थाओं एवं व्यापारिक संस्थाओं में अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है। इनकी परिवर्तनशील माँग होने के कारण रहतिया में बहुत विनियोजन करना पड़ता है।

2. **व्यवसाय का आकार (Size of Business)** –

एक संस्था की कार्यशील पूँजी की मात्रा उसके व्यवसाय के आकार से प्रत्यक्षतः जुड़ी होती है। एक छोटे आकार के व्यवसाय के लिए नकद रोकड़, प्राप्य बिल तथा रहतिया के लिये अपेक्षाकृत कम पूँजी की आवश्यकता होती है। बड़े आकार के व्यवसाय के लिए अधिक कार्यशील पूंजी की आवयकता होती हैं।

3. **उत्पादन प्रक्रिया की अवधि (Length of Production Process)** –

यदि उत्पादन प्रक्रिया अधिक समय लेने वाली होती है तो स्वाभाविक तौर पर कच्चे माल को निर्मित माल का रूप देने में अधिक समय, लागत और श्रम

लगता है जिसके परिणामस्वरूप अधिक कार्यशील पूंजी चाहिए। किन्तु यदि उत्पादन प्रक्रियां की अवधि अपेक्षाकृत छोटी होती है तो कम मात्रा में कार्यशील पूँजी चाहिए।

4. **कार्यशील पूँजी चक्र (Working Capital Cycle) –**

कार्यशील पूंजी चक्र कच्ची सामग्री के क्रय से प्रारम्भ होता है तथा निर्मित माल के रूपान्तरण व निर्मित माल के विक्रय से रोकड़ की वसूली के साथ समान होता है। कार्यशील पूंजी चक्र की अवधि जितनी लम्बी होगी, उसकी आवश्यकता भी उतनी ही अधिक होगी।

5. **क्रय की शर्तें एव रीतियाँ (Terms and Methods of Purchase)–**

कच्चा माल व अन्य सामान किन महीनों व शर्तों पर क्रय किया जाता है का सीधा प्रभाव कार्यशील पूंजी की मात्रा पर पड़ता है। यदि कच्चे माल की समस्त वार्षिक जरूरत को फसल के ही समय एक साथ खरीद कर रख लिया जाता है तो कार्यशील पूँजी की अधिक आवश्यकता होगी, परन्तु वर्ष पर्यन्त स्थानीय बाजार से कच्चा माल क्रय किया जाता है तो कम कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी। इसी प्रकार यदि कच्चा माल विक्रेता से लम्बी अवधि के उधार पर आपूर्ति किया जाता है तो उसे निर्मित करने के बाद बेचकर कच्चे माल का भुगतान किया जा सकता है। परन्तु यदि कच्चा माल नकद खरीदना पड़ता है तो फिर अधिक कार्यशील पूंजी की व्यवस्था करनी पड़ती होगी।

6. **विक्रय की शर्तें (Terms of Sale) –**

माल का विक्रय नकद एवं उधार किया जा सकता है। यदि निर्मित माल नकद बेचा जाता हो तो कम कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी। यदि माल उधार बेचा जाता है तो उसके भुगतान में अधिक समय लगता है तो निश्चित तौर पर अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी।

7 **व्यवसाय चक्र (Business Cycle) –**

व्यवसाय चक्र भी कार्यशील पूंजी की मात्रा को प्रभावित करते हैं। तेजी काल में विक्रय में वृद्धि, कीमतों में बढ़ोत्तरी व व्यवसाय के आशावादी विस्तार, आदि के कारण अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता पड़ती है। मन्दी के समय मांग कम होने के कारण विक्रय में गिरावट आती है, व्यापार में संकुचन होता है व देनदारों से धन वसूली में दिक्कत आती है। ऐसी स्थिति में कार्यशील पूंजी का

एक बड़ा भाग निष्क्रिय पड़ा रह सकता है।

8. बैंकिंग सम्बन्ध (Banking Connections)-

ऐसी संस्थाए जो बैंकों से अच्छे व मधुर सम्बन्ध विकसित करने में सक्षम होती है तथा बैंक की दृष्टि से जिनकी साख उत्तम होती है वे कम कार्यशील पूंजी से भी व्यवसाय संचालित कर सकती हैं। आवश्यकता होने पर बैंक उन्हें शीघ्रता से वित्त प्रदान कर सकता है।

9. लाभांश नीति (Dividend Policy)

अगर कम्पनी उदार लाभांश नीति अपनाती है तो लाभांश वितरित करने के लिए अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी। दूसरी ओर, यदि कम्पनी नकद लाभांश न वितरित करके बोनस अंशों का निर्गमन करती है तो यह कार्यशील पूँजी की मात्रा में कमी लाएगा।

10. व्यवसाय के विकास की दर (Role of Growth of Business) -

एक संस्था की कार्यशील पूँजी की आवश्यकताएं इसकी व्यावसायिक क्रियाओं के विस्तार और विकास के साथ–साथ बढ़ती है । यदि व्यापार विस्तार व विकास की दर धीमी है तो कम कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी जिसकी व्यवस्था लाभों के पुर्नविनियोग (Ploughing Back of Profits) से की जा सकती है। किन्तु यदि व्यापार का विस्तार बड़े पैमाने पर किया जाता है तो तीव्र विकास हेतु अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता पड़ती है।

11. अन्य कारक (Other factors) –

कुछ अन्य तत्व जैसे, मूल्य स्तर परिवर्तन, प्रबन्धकीय योग्यता, राजनीतिक स्थायित्व, युद्ध आशंका, आयात नीति, परिवहन व संचार की सुविधा, आदि भी कार्यशील पूँजी की आवश्यकता प्रभावित करती हैं ।

कार्यशील पूँजी के स्रोत अथवा साधन (Sources of working capital)–

कार्यशील पूंजी दो प्रकार के साधनों (अ) दीर्घकालीन साधन, तथा (ब) अल्पकालीन साधन से प्राप्त की जा सकती है। इनका विवेचन निम्नलिखित है:–

(अ) दीर्घकालीन साधन (Long Term Sources) –

स्थायी कार्यशील पूंजी का वित्त पोषण करने के लिए उपक्रम को दीर्घकालीन साधनों को ही अपनाना चाहिए। दीर्घकालीन साधनों से ही लम्बे

समय तक के लिए, वित्त प्राप्त हो सकता है। कार्यशील पूंजी के दीर्घकालीन साधान निम्नलिखित हो सकते हैं –

1. **अंश (Share)** –

नये अंशों का निर्गमन कार्यशील पूँजी का मुख्य साधन है। एक कम्पनी समता और पूर्णाधिकार अंशों का निर्गमन कर सकती है। पहले स्थगित अंशों (Defered shares) के निर्गमन का अधिकार कम्पनियों को प्राप्त था जिसे भारतीय कम्पनी अधिनियम 1956 के द्वारा रोक दिया गया है। पूर्वाधिकार अंशों को एक निश्चित दर से लाभांश प्राप्ति के सम्बन्ध में और कम्पनी समापन के समय पूंजी के पुनर्भुगतान के लिए प्राथमिकता प्राप्त होती है। समता अंशों को लाभ की उपलब्धता के आधार पर लाभांश प्रदान किया जाता है। कम्पनी को अंशों के निर्गमन से स्थायी कार्यशील पूंजी की अधिकतम राशि की व्यवस्था करनी चाहिए।

2. **ऋणपत्र (Debenture)** –

ऋण पत्र निर्गमन भी अंशों की ही भांति कार्यशील पूंजी का महत्वपूर्ण साधान है। ऋणपत्र किसी भी धारक को ऋण की स्वीकृति का कम्पनी द्वारा निर्गमित प्रपत्र होता है। ऋणपत्र धारक कम्पनी के लेनदार होते हैं और निश्चित दर से ब्याज प्राप्त करने के हकदार होते हैं।

3. **प्रतिपादित लाभ (Retained Profits)** –

यह वित्त का एक आन्तरिक साधन है जो सर्वाधिक सस्ता और वस्तुतः लागतविहीन स्रोत होता है। यह साधन पूर्व स्थापित संस्थाओं द्वारा अपने विस्तार, आधुनिकीकरण और प्रतिस्थापन आदि के लिये प्रयोग किया जाता है।

4. **प्राचीन सम्पत्तियों का विक्रय (Sale of Obsolete Assets)** –

बेकार के अप्रयुक्त स्थायी सम्पत्तियों को बेचकर भी कार्यशील पूंजी की व्यवस्था की जा सकती है।प्रबन्धन इस साधन पर कम ही निर्भर रह सकता है। क्योंकि यह सामयिक, अनियमित और अविश्वसनीय होता है।

5. **दीर्घकालीन ऋण (Long Term Loans)** –

बैंकों, विनियोग कम्पनियों व विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं से दीर्घकालीन

ऋण प्राप्त करके भी कार्यशील पूंजी का वित्तीयन किया जा सकता है। भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (IFCI), राज्य वित्त निगमों (SFCs), भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (IDBI), नाबार्ड (NABARD) आदि इसके उदाहरण है।

(ब) अल्पकालीन साधन (Short term Sources) –

अल्पकालीन साधनों से अस्थायी कार्यशील पूंजी की व्यवस्था की जाती है। जिसकी लागत भी अपेक्षाकृत कम होती है। प्रमुख अल्पकालीन साधन निम्नलिखित है–

1. वाणिज्यिक बैंक (Commercial Bank) –

अल्पकालीन कार्यशील पूंजी के सबसे महत्वपूर्ण स्रोत वाणिज्यिक बैक होते हैं। बैंक सामान्यतया अग्र चार रूपों में ऋण प्रदान करते हैं।

अ. नकद साख (Cash credit) –

इस व्यवस्था के अन्तर्गत बैंक तथा ग्राहक के मध्य एक औपचारिक समझौता होता है जिसमें साख की अधिकतम सीमा निर्धारित कर दी जाती है। ग्राहक निर्दिष्ट सीमा के भीतर आवश्यकतानुसार राशि का आहरण कर सकता है। ब्याज आहरित किए गये ऋण पर ही लगता है न कि सम्पूर्ण अधिकतम सीमा पर
।

ब. बैंक अधिविकर्ष –

अधिविकर्ष बैंक के साथ की गई ऐसी व्यवस्था है जिसमें चालू खाता के ग्राहक अपने खाते में जमा शेष के अतिरिक्त एक निर्धारित सीमा तक धन के आहरण की स्वीकृति बैंक से लेता है। इससे ग्राहक चेक अनादृत होने पर उत्पन्न विषम स्थिति से बच जाता है और कुछ समय के लिए ऋण सुविधा भी मिल जाती है। व्यवहार में नकद साख और बैंक अधिविकर्ष में कोई खास अन्तर नहीं होता है लेकिन इतना अवश्य है कि अधिविकर्ष अति अल्पकाल के लिए स्वीकृत किया जाता है और यह एक अस्थायी व्यवस्था (Short-gap arrangement) होती है जबकि नकद साख अपेक्षाकृत अधिक अवधि के लिए स्वीकृत होता है।

स. सुरक्षित ऋण (Secured Loans) –

बैंक जब सम्पत्तियों की जमानत के आधार पर एकमुश्त अग्रिम देता है तो उसे सुरक्षित ऋण कहते हैं। प्रायः बैंक बॉण्डस, रहतिया व व्यक्तिगत जमानत

के आधार पर इस प्रकार का अल्पकालीन ऋण देती है। ऋण की वापसी एकमुश्त या किस्तों में की जा सकती है।

द. बिलो की कटौती (Discounting of Bills) –

इसमें ग्राहक बैंक को अपने प्राप्य बिलों की अपेक्षाकृत कम मूल्य पर बेच देते हैं अथवा वर्तमान ब्याज की दर पर कटौती करा लेता है। परिपक्वता की तिथि पर बैंक सम्बद्ध पक्ष से बिल का पूर्ण अंकित मूल्य प्राप्य कर लेता है। इस प्रकार ग्राहक कटौती की धनराशि की हानि उठाकर आवश्यकतानुसार वित्त प्राप्त कर लेता है।

2. व्यापार साख (Trade Credit) –

प्रायः सभी व्यावसायिक इकाइयों को माल विक्रेता से अल्पकाल के लिए अपनी ख्याति के अनुसार उधार मिल जाता है जिसका भुगतान बाद में एकमुश्त या किश्तों में किया जाता है। कभी–कभी इस उधार माल के लिए विपत्र, प्रतिज्ञा–पत्र, हुण्डी, आदि लिख दिए जाते हैं। इस विधि में उधार पर ब्याज नहीं दिया जाता हैं परन्तु बहुधा विक्रेता माल की कीमत बढ़ा करके ही बेचता है। इस प्रकार अधिक कीमत लेकर ब्याज की पूर्ति कर ली जाती है। व्यापार साख की अवधि प्रायः 15 दिन से 3 माह तक की होती है।

3. देशी साहूकार (Indigenous Moneylenders) –

छोटे तथा मध्यम आकार के उपक्रम अपनी कार्यशील पूँजी का महत्वपूर्ण हिस्सा देशी साहूकारों से प्राप्त करते हैं। ये लोग ब्याज की दर अधिक वसूल करते हैं अतः इनकी शरण में व्यावसायिक गृह अन्त में ही जाते हैं। आजकल वाणिज्यिक बैकों का प्रचलन बढ़ने से देशी साहूकारों की महत्ता दिन प्रतिदिन घट रही है।

4. जन निक्षेप (Public Deposits) –

मुम्बई एवं अहमदाबाद की सूती वस्त्र मिलों में जन निक्षेप कार्यशील पूंजी का प्रचलित स्रोत रहे हैं। वर्तमान में निजी व सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनिया इस साधन का प्रयोग निरन्तर कर रही हैं। इसमें जनता अपना धन तब तक कम्पनियों के पास जमा रखती है जब कि उन्हें ब्याज मिलता है। यह साधन कम्पनियों के लिए सुखद समय का साथी (Fair Weather Friend) सिद्ध होता है और संकट की स्थिति में जमाकर्ता वापसी की माग कर सकते हैं।

5. ग्राहकों से अग्रिम (Advances from Customers) –

कुछ व्यावसायिक गृह अपने ग्राहकों से माल के आदेश के साथ सम्पूर्ण या आंशिक भुगतान अग्रिम में प्राप्त कर लेते हैं जो कार्यशील पूंजी का अल्पकालीन साधन होता है । यह पूँजी प्राप्त करने का लागत विहीन साधन है क्योंकि इस पर कोई ब्याज नहीं देना पड़ता है। परन्तु प्रायः एकाधिकारी संस्थाएँ ही इस साधन को प्रयोग करने की स्थिति में होती है जहाँ पर ग्राहक कोई भी शर्त स्वीकार करने का बाध्य होता है। प्रतिस्पर्धी वातावरण में और जिस संस्था की साख निर्बल हो, इस साधन का सहारा नहीं ले सकती है।

6. आन्तरिक साधन (Internal Sources) –

कार्यशील पूँजी के लिए ह्रास कोष, करों के लिए प्रावधान व उपार्जित व्यय जैसे आन्तरिक साधनों का भी उपयोग किया जा सकता है। लाभ में से कुछ भाग निकालकर बनाए गये ह्रास कोष उस समय तक कार्यशील पूँजी प्रदान करते हैं जब तक कि कोई स्थायी सम्पत्ति न क्रय की जाए अथवा लाभांश के रूप में वितरित न किया जाये। इसी तरह करों के लिए जो प्रावधान किया जाता है वह एक निश्चित अन्तराल पर भुगतान किया जाता है। इस बीच की अवधि में यह अल्पकालीन कार्यशील पूंजी के रूप में प्रयुक्त होता है। उपार्जित व्ययों की राशि भी भुगतान होने तक अल्पकालीन साधन होते हैं।

7. अन्य साधन (Other Sources) –

कुछ अन्य साधन हैं – (अ)– सरकारी सहायता, (ब)– प्रबंधकों व संचालकों के ऋण (स)– कर्मचारियों की प्रतिभूतियाँ।

2.7 सारांश

संस्था के दैनिक कार्यों को सुचारू ढंग से सम्पन्न करने तथा संस्था की साख को निरन्तर बनाये रखने के लिए कार्यशील पूँजी आवश्यक है। इसमें रोकड़ प्रबन्ध प्राप्ती का प्रबन्ध एवं रहतिया प्रबन्ध सम्मिलित किया जाता है। वित्त प्रबन्धक के द्वारा कार्यशील पूंजी प्रबन्ध के अन्तर्गत चालू सम्पत्तियों एवं चालू दायित्वों के मध्य उचित सामन्जस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया जाता है।

कार्यशील पूंजी से आशय समस्त सम्पत्तियों के उस भाग से है जो व्यवसाय संचालन में एक स्वरूप से दूसरे स्वरूप में परिवर्तित होती रहती है।

किन्तु इस शाब्दिक अर्थ से सभी एकमत नहीं हैं। कार्यशील पूँजी के वास्तविक अभिप्राय से सम्बन्ध में वित्तीय प्रबन्धकों लेखापालकों, उपकृमियों और अर्थशास्त्रियों में पर्याप्त मतभेद हैं। कुछ विद्वान चालू सम्पत्तियों के योग को कार्यशील पूँजी मानते हैं जबकि अन्य चालू दायित्वों के ऊपर चालू सम्पत्तियों के अधिक्य को ही कार्यशील पूँजी कहते हैं इसके अतिरिक्त विद्वानों का एक ऐसा वर्ग भी है जो इसे कार्यशील पूँजी के नाम से पुकारने को तैयार नहीं है और वे इसे सक्रिय पूँजी कहना अधिक उपयुक्त समझते हैं।

2.8 शब्दावली

1. **सकल कार्यशील पूँजी** – सम्पूर्ण चालू सम्पत्तियों के योग को सकल कार्यशील पूँजी कहते है। और यह कार्यशील पूँजी की परिणात्मक अवधारणा है।

2. **स्थिर कार्यशील पूँजी** – व्यवसायिक संस्था में चालू सम्पत्तियों की एक न्यूनतम मात्रा बनी रहे और इस न्यूनतम मात्रा को ही स्थिर कार्यशील पूँजी कहते हैं।

3. **परिवर्तनशील कार्यशील पूँजी** -- व्यवसाय की आकस्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जो अतिरिक्त पूंजी रखीं जाती है। उसे परिवर्तनशील कार्यशील पूँजी कहते हैं।

4. **चालू सम्पत्तियॉं** – ऐसी सम्पत्तियाँ जो व्यवसाय के चालू कार्यों के लिए प्रयोग में लाई जाती हैं। चालू सम्पत्तियाँ कहलाती हैं।

2.9 स्व–परक प्रश्न

1. कार्यशील पूँजी से आप क्या समझते हैं? कार्यशील पूँजी की विभिन्न अवधारणाओं का वर्णन कीजिए।

2. "अपर्याप्त कार्यशील पूँजी संकटपूर्ण स्थिति की प्रतीक होती है, जबकि आवश्यकता से अधिक अथवा फालतू कार्यशील पूँजी दण्डनीय अपव्यय की प्रतीक मानी जाती है।" इस कथन के सन्दर्भ में कार्यशील पूंजी का विश्लेषण कीजिए।

3. कार्यशील पूँजी का अर्थ एवं इसे निर्धारित करने वाले तत्वों को स्पष्ट कीजिए।

इकाई – 3 कार्यशील पूंजी का अनुमान (Estimation of Working Capital)

इकाई की संचरना

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 कार्यशील पूंजी का अनुमान

3.4 कार्यशील पूंजी के अनुमान की विधियॉ

3.5 सारांश

3.6 शब्दावली

3.7 स्व–परक प्रश्न

3.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त इस योग्य हो सकेंगे कि –

– कार्यशील पूँजी का अनुमान लगा सकें।

– कार्यशील पूँजी का अनुमान लगाने वाली विधियों का विश्लेषण कर सकें।

– अनुमान लगाने वाली विधियों के माध्यम से कार्यशील पूँजी की गणना कर सकें।

– भविष्य की कार्यशील पूँजी की आवश्यकता का निर्धारण कर सकें।

– पूँजी बजटन की विधियों की व्याख्या कर सकें।

3.2 प्रस्तावना

संगठन एवं कम्पनी के लिए कार्यशील पूँजी का अनुमान लगाना कठिन कार्य है लेकिन आवश्यकता आविष्कार की जननी है। इस आधार पर प्रत्येक संगठन एवं कम्पनी अपनी भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कार्यशील पूँजी का अनुमान विभिन्न विधियों के माध्यम से निर्धारित करती है। प्रस्तुत इकाई में कार्यशील पूँजी का अनुमान लगाने वाली विभिन्न विधियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया।

3.3 कार्यशील पूँजी का अनुमान

एक व्यवसायिक संस्था के सफल संचालन के लिए कार्यशील पूँजी का निर्धारण करना अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य है। संस्था की कार्यशील पूँजी का निर्धारण करने के लिए कार्यशील पूँजी का अनुमान लगाना आवश्यक है। प्रायः संस्था के लिए वित्त की प्राप्ति विभिन्न गणनाओं पर आधारित रहती है। अतः कार्यशील पूँजी का अनुमान संस्था का मुख्य उद्देश्य होता है जिससे वित्तीय स्त्रोतों में उचित तरलता बनाए रखी जा सके।

3.4 कार्यशील पूँजी के अनुमान की विधियाँ (Methods of Estimation of Working Capital)

किसी भी व्यवसायिक उपक्रम में व्यवसाय के विशेष स्तर के लिए कार्यशील पूँजी की आवश्यकता का पूर्वानुमान लगाना एक महत्वपूर्ण व्यावहारिक समस्या है जो प्रत्येक वित्तीय प्रबन्धक के सामने आती है इसके लिए निम्न में से कोई भी रीति प्रयोग में लाई जा सकती हैं।

1. परिचालन चक्र रीति
2. चालू सम्पत्तियों एवं दायित्वों की पूर्वानुमान रीति
3. रोकड़ पूर्वानुमान रीति
4. प्रक्षेपी आर्थिक चिट्ठा रीति
5. लाभ–हानि समायोजन रीति

1. परिचालन चक्र रीति –

परिचालन अथवा संचालन चक्र विधि के द्वारा संस्था की रोकड़ कार्यशील पूँजी का पूर्वानुमान लगाया जाता है। इस विधि के अनुसार कार्यशील पूंजी का निर्धारण किसी अवधि विशेष के कुल परिचालन व्ययों में उस अवधि विशेष में पूरी की गई परिचालन चक्र की संख्या का भाग देकर ज्ञात किया जाता है। रोकड़ से कच्चा माल, कच्चा माल से निर्मित माल, निर्मित माल से देनदार व प्राप्य बिल, से रोकड़ की वसूली यही परिचालन चक्र होता है। अतः कार्यशील पूंजी की मात्रा का अनुमान लगाने के लिए कुल परिचालन व्यय, परिचालन चक्र अवधि तथा वर्ष के परिचालन चक्रों की कुल संख्या की गणना आवश्यक है, जो संक्षेप में इस प्रकार की जाती है –

क. परिचालन व्यय –

किसी अवधि के परिचालन व्ययों में उस अवधि की सामग्री क्रय, शक्ति व ईंधन निर्माणी व्यय, प्रशासनिक व्यय, विक्रय व वितरण व्यय, आदि को शामिल करते हैं। इन व्ययों में गैर नकद व्ययों जैसे, ह्रास अमूर्त सम्पत्तियों का अपलेखन, आदि को सम्मिलित नहीं करते हैं साथ ही अगर उत्पादन मिश्रण में परिवर्तन, मूल्य स्तर में परिवर्तन आदि के फलस्वरूप व्ययों में होने वाले अन्तर को समायोजित कर लिया जाता है।

ख. परिचालन चक्र की अवधि –

परिचालन चक्र की अवधि के दिनों की गणना कच्ची सामग्री के संग्रहण उत्पादन प्रक्रिया, तैयार माल के संग्रहण तथा देनदारों से औसत वसूली की अवधि के योग में से लेनदारों को भुगतान की अवधि को घटा करके की जाती है।

इसके सूत्र निम्न हैं –

1. $$Raw\ Material\ Storage\ Period = \frac{Average\ Stock\ of\ Materials}{Daily\ Average\ Consumption}$$

2. $$Production\ Process\ Period = \frac{Average\ Stock\ of\ Work\ in\ Progress}{Total\ Factory\ Cost / 365}$$

3. $$Finished\ Goods\ Storage\ Period = \frac{Average\ Stock\ of\ Finished\ Goods}{Cost\ of\ Goods\ Sold / 365}$$

4. Average Collection Period from Debtors =
$$\frac{Average\ Debtors + Bills\ Receivable}{Total\ Credit\ Sales / 365}$$

5. Average Payment Period to Creditors =
$$\frac{Average\ Creditors + Bills\ Payable}{Total\ Credit\ Purchases / 365}$$

उपरोक्त 1 से 5 तक के योग की अवधि में से 5 घटा देने पर परिचालन चक्र की अवधि दिनों में ज्ञात हो जाती है।

ग. वर्ष के परिचालन चक्रों की कुल संख्या

यह गणना वर्ष के कुल दिनों अर्थात 365 में परिचालन चक्र की अवधि का भाग देकर ज्ञात की जाती है।

$$Total\ No. of\ Operating\ Cycles\ in\ the\ year = \frac{365}{Period\ of\ Operating\ Cycle}$$

घ. कार्यशील पूँजी की धनराशि –

वर्ष के परिपालन व्यय में वर्ष के परिचालन चक्रों की कुल संख्या से भाग देकर कार्यशील पूँजी की गणना की जाती है सूत्र रूप में।

$$Working\ Capital = \frac{Total\ Operating\ Expenses}{Total\ No. of\ Operating\ Cycles\ in\ the\ Year}$$

ङ आकस्मिकताओं के लिए प्रावधान–

उपरोक्त प्रकार से आगणित कार्यशील पूँजी में आकस्मिकताओं के लिए कुछ और राशि जोड़ दी जाती है। ऐसा इसलिए किया जाता है, क्योंकि उपर्युक्त सभी गणनाएं पूर्णतया शुद्ध न हो तब भी कार्यशील पूँजी पर्याप्त रहे। अतः अनुमानों में सम्भावित को दूर करने के लिए आकस्मिकताओं का प्रावधान किया जा सकता है।

Example :1

एक्स लिमिटेड की आवश्यक कार्यशील पूंजी की गणना कीजिए –

1. अनुमानित वार्षिक बिक्री 10,000 इकाइयां 4 रू. प्रति इकाई की दर है।
2. उत्पादन एवं बिक्री की मात्राएं मेल खाती है। और वर्ष पर्यन्त समान रूप से जारी रहती हैं।
3. उत्पादन लागत इस प्रकार है सामग्री 2.00 रू. प्रति इकाई, श्रम 1.00 रू. प्रति इकाई, उपरिव्यय 10,000 रू. ।
4. ग्राहकों को 50 दिन की उधार दी जाती है और आपूर्तिकर्ताओं से 40दिन की उधार प्राप्त होती है।
5. कच्चे माल की 40 दिन की पूर्ति तथा तैयार माल की 15 दिन की पूर्ति भण्डार में रखी जाती है।
6. उत्पादन चक्र 20 दिन का है तथा उत्पादन चक्र के प्रारम्भ में ही सामग्री का निर्गमन कर दिया जाता है।
7. अन्य औसत कार्यशील पूँजी का एक चौथाई हिस्सा आकस्मिकताओं के लिए नकद रूप में रखा जाता है।

Solution,

(a)	Total operating expenses for the year	Rs.
	Raw Material (10,000 units @ Rs. 2.00)	20,000
	Labour (10,000 Units @ 1 Rs.)	20,000
	Overheads	10,000
		50,000
(b)	Period of Operating Cycle	Days
	i) Material Storage cycle	40
	ii) Finished goods storage period	15
	iii) Production cycle period	20
	iv) Average Collection period	125
	Less: Average payment period	40
(c)	No.of operating cycle in the year = 365/85=4.3	Rs.
(d)	Working Capital (Rs. 50,000/4.3)	
	Total working capital required	11,627.90
	Add: Reserve for Contingencies (1/4)	2906.97
		14534.87

2. चालू सम्पत्तियों एवं दायित्वों की पूर्वानुमान रीति (Forecasting of Current Assets and Liabilities Method) –

चालू सम्पत्तियों एवं चालू दायित्वों का पूर्वानुमान विधि कार्यशील पूँजी के अनुमान की वर्तमान में सर्वाधिक प्रचलित रीति है। इस रीति को अपनाने का सुझाव सन् 1975 में प्रकाश टण्डन समिति ने भी दिया था तथा विभिन्न व्यापारिक बैंक, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक व भारतीय औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम इस रीति को प्रयोग कर रहे हैं। इस रीति के अनुसार हम आगामी अवधि में होने वाले लेन देनों के आधार पर चालू सम्पत्तियों की रोकड़ लागत अनुमानित कर लेते हैं और इसी प्रकार चालू दायित्वों का भी अनुमान लगा लेते हैं। चालू सम्पत्तियों में से चालू दायित्वों को घटा देने पर कार्यशील पूंजी की मात्रा अनुमानित हो जाती है। अगर कार्यशील पूँजी का अर्थ चालू सम्पत्तियों से लगाया गया हो तो चालू सम्पत्तियों के अनुमानित मूल्य को ही कार्यशील पूँजी मान लिया जाता है।

वित्तीय एवं व्यापारिक संस्थाएँ निर्धारित प्रारूप में कार्यशील पूँजी का अनुमान इस नमूने के आधार पर लगाती हैं –

Statement of working requirement

Current Assets		Rs.
1.	Cash	....
2.	Debtor or Receivables	....
3.	Advance payments	....
4.	Stock	....
5.	Others	....
	Total of current assets	....
Less: Current liabilities		
1.	Creditors	....
2.	Outstanding of expenses	....
Working capital (CA - CL)		....
Add: Provision for contingencies		....
Net working capital Required		....

Example : 1,

एक्स लिमिटेड की गणना हेतु निम्न सूचनाए उपलब्ध हैं –

1) विगत वर्ष में उत्पादन 2,00,000 इकाइयों का था और इस वर्ष भी इसी उत्पादन स्तर को बनाये रखना प्रस्तावित हैं।

2) लागत तालिका के अनुसार सामग्री लागत 60 प्रतिशत, श्रम 30 प्रतिशत और उपरिव्यय 20 प्रतिशत विक्रय मूल्य का है।

3) कच्ची सामग्री उत्पादन हेतु निर्गमन से पूर्व एक माह तक भण्डार में रहने की सम्भावना है।

4) तैयार माल औसतन दो माह तक गोदाम में रहता है।

5) उत्पादन की प्रत्येक इकाई को एक माह औसतन उत्पादन प्रक्रिया में रहने की सम्भावना है।

6) कच्ची सामग्री की सुपुर्दगी की तिथि से आपूर्तिकर्ताओं द्वारा एक माह की उधार स्वीकृत की जाती है।

7) विक्रय की तिथि से देनदारी को दो माह की उधार दी जाती है।

8) मजदूरी का भुगतान एक माह बाद किया जाता है।

9) विक्रय मूल्य प्रति इकाई 9 रू. है।

10) उत्पादन व विक्रय चक्र नियमित रूप से जारी रहता है।

Solution

Statement of working capital estimates

		Rs.	Rs.
(A)	Current Assets :		
	Debtors (2 months)		
	Materials (90000 x 2)	180000	
	Labour (45000 x 2)	90000	
	Over head (30000 x 2)	60000	330000
	Stocks		
(a)	Raw materials (1 month)	90000	
(b)	Work in progress (1 month)		
	Materials	90000	
	Labour	45000	
	Overhead	30000	
(c)	finished goods (2 months)		
	Materials	180000	
	Labour	90000	
	Overhead	60000	585000
(B)	Current Liabilities		
	Creditors for Raw Materials	90000	
	Outstanding wages	45000	135000
	Working capital (A-B)		450000

Working notes :

Amount Locked up in Materials, Labour and Overhead p.m.:

1. Sales for one month = Rs. 1800000 x 1/12 = Rs. 150000

2. Material cost for one month; 60% of Rs. 150000 = Rs. 90000

3. Labour cost for one month =30% of Rs. 150000 = Rs. 45000

4. Overhead cost for one month =20% of Rs. 50000= Rs. 7,500

3. **रोकड़ पूर्वानुमान रीति (Cash Forecasting method) -**

इस विधि के अन्तर्गत अवधि के आरम्भ में रोकड़ शेष को आधार मानते हुए उस अवधि में होने वाली संभावित आय एवं व्यय की मदों का पूर्वानुमान

लगाकर रोकड़ शेष का निर्धारण किंया जाता है। जो रोकड़ आधिक्य या कमी को दर्शाता है। इस रीति में आगामी अवधि की प्राप्तियों एवं भुगतानों को अनुमानित किया जाता है और इनके अन्तर से रोकड़ की कमी या आधिक्य प्राप्त हो जाता है। रोकड़ की कमी का अर्थ प्रबन्धन किसी न किसी स्रोत से किया जाता है। वस्तुतः यह रीति रोकड़ बजट की होती है।

Example - 1,

एक्स कम्पनी के 31 दिसम्बर 2008 को समाप्त होने वाली तिमाही का कार्यशील पँजी के अर्थ प्रबन्धन हेतु आवश्यक रोकड़ राशि का अनुमान लगाइये।

1. विक्रय का 50 प्रतिशत नकद में होता है उधार विक्रय का 80 प्रतिशत विक्रय के अगले महीने में और शेष एक माह बाद वसूल होता है।

   विक्रय आंकड़े इस प्रकार हैं : अगस्त 75,000 रू.सितम्बर 60,000 रू., अक्टूबर से दिसम्बर 80,000 रू. प्रति माह।

2. 5 प्रतिशत नकद कटौती प्राप्त करने के लिए माल सदैव नकद क्रय किये जाते हैं। अन्तिम तिमाही (अक्टूबर से दिसम्बर) का क्रय बजट 40,000 रू. प्रतिमाह है।

3. अन्तिम तिमाही में मजदूरी और वेतन बजट 10,000 रू. प्रतिमाह है।

4. तिमाही के निर्माणी व अन्य व्यय का बजट इस प्रकार है। निर्माणी व्यय 13500 रू. ह्रास 18000 रू. विक्रय व्यय 9000 रू.प्रशासनिक व्यय (केवल अक्टूबर एवं दिसम्बर में) 5000 रू. प्रतिमाह।

5. अक्टूबर माह में एक पुरानी मशीन 50,000 रू. के अतिरिक्त रोकड़ खर्च द्वारा प्रतिस्थापित होनी है।

Solution,

Statement of Cash Estimates
(For the quarter ending on 31st dec. 2008)

	Months		
	October	November	December
Cash Inflow			
1. Opening Balance	-	39000	16500
2. Cash sales	40000	40000	40000

3. Collection from Debtors	31500	38000	40000
Total :	71500	39000	63500
Cash outflow			
1. Cash purchases (less discount)	38000	38000	38000
2. Wages and salaries	10000	10000	10000
3. Manufacturing Expenses	4500	4500	4500
4. Selling expenses	3000	3000	3000
5. Administrative Expenses	5000	-	5000
6. Replacement of Machine	50000	-	-
Total :	110500	55500	60500
Closing Balance	-39000	-16500	3000

Working notes:

1. अक्टूबर माह में रोकड़ का प्रारम्भिक शेष न दिया होने के कारण शून्य माना गया है।

2. ह्रास रोकड़ व्यय न होने के कारण छोड दिया गया है।

3. देनदारों से रोकड़ वसूली की गणना इस प्रकार की गई है।

	अगस्त	सितम्बर	अक्टूबर	नवम्बर	दिसम्बर
उधार विक्रय (विक्रय का 50 प्रतिशत)	37500	30000	40000	40000	40000
देनदारों से गत माह के उधार विक्रय का 80 प्रतिशत	–	30000	24000	32000	32000
देनदारों से गत दो माह के उधार विक्रय का 20 प्रतिशत	–	–	7500	6000	8000
कुल योग –	–	30000	31500	38000	40000

4. प्रक्षेपी वार्षिक चिट्ठा रीति (Projected Balance Sheet Method)-

इस विधि के अन्तर्गत आगामी अवधि में होने वाले लेन–देनों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न प्रकार की सम्पत्तियों (रोकड़ को छोड़कर) और दायित्वों का अनुमान लगा लिया जाता है। इन अनुमानों में प्रक्षेपी आर्थिक चिट्ठा बना लेते हैं। इस चिट्ठे से सम्पत्तियों एवं दायित्वों का अन्तर उस अवधि की कार्यशील पूंजी मान लिया जाता है। यदि दायित्व पक्ष का योग सम्पत्ति पक्ष से अधिक आये

तो यह रोकड़ आधिक्य को प्रदर्शित करता है जिसकी आवश्यकता संस्था को नहीं होगी। इस अतिरिक्त रोकड़ के विनियोजन की योजना प्रबन्धन तैयार कर सकता है। इसके विपरीत यदि सम्पत्ति पक्ष का योग दायित्त्व पक्ष से अधिक आये तो यह कार्यशील पूंजी की कमी को व्यक्त करता है जिसकी व्यवस्था प्रबन्धन को करनी चाहिए।

Example : 1,

वाय लिमिटेड की अंश पूंजी 5,00,000 रू.तथा संचय 1,00,000 रू. है, 2,60,000 रू. स्थायी सम्पत्तियों में विनियोजित है, रहतिया तथा देनदार क्रमशः 65,000 रू. तथा 2,00,000 रू. के थे और लेनदार 30,000 रू. थे। व्यावसायिक क्रिया में वृद्धि को जारी रखने के लिए वर्ष के अन्त तक रहतिया के स्तर में 50 प्रतिशत वृद्धि का प्रस्ताव है। पूंजी अधिग्रहण बजट के अनुसार 20,000 रू. की मशीन वर्ष में खरीदने का प्रस्ताव है। 60,000 रू. ह्रास व लाभ का 50 प्रतिशत कर के लिए प्रावधान करने के बाद वर्ष का अनुमानित लाभ 1,05,000 रू. है। अग्रिम आय का भुगतान का अनुमान 90,000 रू. है। लेनदार दुगुने होने की सम्भावना है। 5 प्रतिशत लाभांश चुकता करना है। तथा अगले वर्ष के लिए 10 प्रतिशत लाभांश का प्रस्ताव है। देनदार 4 माह तक बकाया रहने का अनुमान है। विक्रय बजट के अनुसार वर्ष का विक्रय 15,00,000 रू. है। दिसम्बर 2008 को प्रक्षेपी आर्थिक चिट्ठा बनाकर कार्यशील पूंजी आवश्यकता का अनुमान लगाइये।

Solution

Projected Balance Sheet of Y Ltd.

(As on 31st December, 2008)

Liabilities		Amount	Assets		Amount
Share Capital		500000	Fixed Assets		
			Balance	260000	
Reserve & Surplus:			Add. Purchase	20000	
Balance	100000			280000	
Less:Dividend	40000		Less.Dep.	60000	220000
	60000				
Add: profit after Tax	105000				
	165000				

Less: Proposed			
Dividend 80000	85000		
Current liabilities:		Current Assets:	
Creditors	60000	Stock	97500
Provision for Tax	105000	Debtors (1500000x4)	500000
Proposed Dividend	80000	Advance Income Tax	90000
Overdraft (Balancing Figure)	77500		
	9,07,500		9,07,500

Working capital (Overdraft) = 9,07,500-8,30,000 = Rs. 77,500

Stock = 65,000+50% of Rs. 65000 = Rs. 97,500

Debtors = 15,00,000 x 4/2 - Rs. 5,00,000

5. लाभ हानि समायोजन रीति (Profit and Loss Adjustment Method)–

इस रीति के अन्तर्गत आने वाले अवधि के लिए आवश्यक कार्यशील पूंजी का अनुमान लगाने हेतु विभिन्न लेन–देनों का पुर्वानुमान लगाया जाता है। इस प्रकार ज्ञात किये गये शुद्ध लाभ में गैर रोकड़ मदें सम्मिलित रहती हैं। इसलिए कार्यशील पूंजी की गणना करते समय इनका समायोजन किया जाता है।

Example : 1,

एक्स कम्पनी का बजटेड लाभ हानि खाता निम्न प्रकार है।

	Rs.		Rs.
The depreciation	20000	By Gross Profit	210000
To selling expenses	10000	By Interest	15000
To Income Tax	1000		
To interest charges	4000		
To loss on sale of plant	10000		
To net profit c/d	180000		
	2,25,000		2,25,000
To dividend	30000	By Net profit	180000
To Balance C/d	150000		
	1,80,000		1,80,000

अतिरिक्त सूचना :

वर्ष के दौरान 60,000 रू. को लागत का एक नया प्लान्ट खरीदना है।

70,000 रू. की लागत का पुराना प्लाण्ट जिस पर 32,000 रू. एकत्रित ह्रास है को 25000 रू. में बेचे जाने की सम्भावना है।

वर्ष के दौरान 20,000 रू. के ऋण पत्र शोधन हेतु परिपक्व होंगे।

40,000 रू. के समता अंश नकद रूप में निर्गमित किए जायेंगे। कार्यशील पूंजी में वृद्धि या कमी की राशि लाभ हानि समायोजना रीति से निर्धारित कीजिए।

Solution,

	Rs.	Rs.
Net Profit as per P & L A/c		180000
Add: Non cash charges		
Depreciation	22000	
Loss on sale of plant	13000	35000
		215000
Working capital provided by Operations		
Add: Cash inflows		
Issue of Fresh shares	40000	
Sale of plant	25000	65000
		280000
Less: Cash outflows		
Redemption of debentures	20000	
Purchase of Plant	60000	
Payment of dividend	30000	110000
Net increase in working capital		170000

3.5 सारांश

उपरोक्त विभिन्न विधियों का अध्ययन करने के पश्चात सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि कार्यशील पूंजी के पूर्वानुमान के लिए इन तकनीकियों

की एक वित्तीय प्रबन्धक को वर्तमान प्रतिस्पर्धी युग में जानकारी रखना बहुत महत्वपूर्ण है। बिना इन तकनीकियों के एक वित्तीय प्रबन्धक आज के इस गला–काट प्रतिस्पर्धी युग में व्यवसाय चलाने में अक्षम होगा। कार्यशील पूर्वानुमान की यह विधियां आवश्यकतानुसार भविष्य की जानकारी वर्तमान में निश्चित कर देती है जिससे व्यवसाय संचालन में आसानी होती है।

3.6 शब्दावली

- **संचालन चक्र रीति** : 1. संचालन चक्र की अवधि, संचालन की विभिन्न अवस्थाओं की अवधि में आपूर्ति दाता द्वारा स्वीकृत अवधि का समायोजन करके ज्ञात की जाती है।
- **संचालन व्यय** : अवधि के कुल संचालन व्यय में उस अवधि में किये गये सामग्री व्यय निर्माणी व्यय, प्रशासनिक व्यय, विक्रय विवरण व्यय (गैर नगद खर्चों को छोड़कर) शामिल करते हैं।
- **रूपान्तरण अवधि** : जितनी अवधि में कच्चा माल निर्मित माल में परिवर्तित होता है उसे रूपान्तरण अवधि कहते हैं।
- **औसत्त वसूली अवधि** : देनदारों से नगद रूपया प्राप्त होने में जितनी अवधि लगती है।
- **औसत भुगतान अवधि** : लेनदारों के नकद भुगतान करने में जितनी अवधि लगती है। उसे औसत भुगतान अवधि कहते हैं।

3.7 स्व–परक प्रश्न

1. कार्यशील पूंजी पूर्वानुमान से क्या आशय होता है? इस प्रकार के अनुमान में प्रयुक्त विधियों की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।

2. कार्यशील पूंजी के विश्लेषण से आप क्या समझते है। इस प्रकार के विश्लेषण में प्रयोग की जाने वाली विभिन्न विधियों की विवेचना कीजिए।

3. कार्यशील पूंजी के पूर्वानुमान रीतियों की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए और विशेष रूप से परिचालन चक्र रीति को समझाइये।

इकाई – 4 स्कन्ध एवं प्राप्य बिलों का प्रबन्ध (Inventory & Receivables Management)

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 स्कन्ध का प्रबन्ध

4.4 प्राप्य बिलों का प्रबन्ध

4.5 सारांश

4.6 शब्दावली

4.7 स्व–परक प्रश्न

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- स्कन्ध का अर्थ बता सकें।
- स्कन्ध का प्रबन्ध कर सकें।
- प्राप्य बिलों का अर्थ बता सकें।
- प्राप्य बिलों का प्रबन्ध कर सकें।
- स्कन्ध एवं प्राप्य बिलों की भूमिका का एक संगठन में महत्व बता सकें।
- स्कन्ध एवं प्राप्य बिलों की गणना कर सकें।

4.2 प्रस्तावना

स्कन्ध एवं प्राप्य बिलों का प्रबन्ध कम्पनियों के लिए एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जिसके आधार पर कम्पनी की आंतरिक व्यवसायिक क्षमता का आंकलन किया जा सके। प्रस्तुत इकाई में स्कन्ध एनं प्राप्य बिलों की क्रमानुसार व्याख्या की गई है। यह तो निर्विवाद सत्य है कि स्कन्ध का आशय भौतिक सत्यापन से होता है जिसमें गणना प्रधान क्रिया मानी जाती है इसके साथ प्राप्यों को विनियोग के रूप

में माना जाता है। अर्थात प्राप्यों में कुछ अवधि के लिए धनराशि फंस जाती है । दोनों ही एक संगठन के लिए महत्वपूर्ण हैं जिनकी व्याख्या की गई है।

4.3 स्कन्ध का प्रबन्ध (Inventory management)

स्कन्ध का आशय स्कन्ध के भौतिक सत्यापन से होता है जिसमें गणना प्रधान क्रिया मानी जाती है। परन्तु आजकल इसका अर्थ व्यापक रूप से लगाया जाता है। स्कन्ध में विभिन्न वस्तुओं की रखी गयी मात्रा से होता है अर्थात यदि तैयार माल का स्कन्ध उचित है तो ग्राहकों की सेवा उचित ढंग से की जा सकेगी। स्कन्ध अथवा रहतिया किसी भी संस्था के उत्पादन तथा विक्रय के मध्य सम्पर्क सेतु का कार्य करता है और इसीलिए यह चालू सम्पत्तियों में सर्वाधिक अहम होता है। कार्यशील पूंजी में स्कन्ध का अनुपात 30 प्रतिशत से 80 प्रतिशत तक हुआ करता है और इसमें पर्याप्त पूंजी का निवेश होता है। संस्था के परिचांलन में लाभदायकता और निरन्तरता बनाये रखने के लिए स्कन्ध का उचित नियोजन नियन्त्रण एवं प्रबन्ध अति आवश्यक है। इसी कारण से यह कहा जाता है कि यदि प्रबन्धक को धन की आवश्यकता हो तो सर्वप्रथम रहतिया को देखना चाहिए।

स्कन्ध प्रबन्ध शब्द दो शब्दों स्कन्ध और प्रबन्ध से मिलाकर बना है। स्कन्ध का आशय ऐसे समस्त माल से होता है जो किसी व्यावसायिक या औद्योगिक उपक्रम के द्वारा अपने सामान्य संचालन हेतु अपने पास रखा जाता है जिसका उद्‌देश्य उसका विक्रय करना अथवा विक्रय के लिए उत्पादित की जाने वाली वस्तुओं के निर्माण में उसका प्रयोग करना होता है। स्कन्ध की प्रवृत्ति स्थायी न हो करके परिवर्तनशील होती है। स्कन्ध में बहुधा निम्नलिखित को सम्मिलित किया जाता है कच्ची सामग्री (Raw Materials), निर्माणाधीन माल (Work in process), निर्मित माल (Finished goods), अन्य माल (Other goods) इसके अन्तर्गत उचित गुणवत्ता वाली सामग्री का न्यूनतम लागत पर अनुकूलतम स्तर बनाये रखनें का प्रयास किया जाता है। यह एक ऐसी प्रणाली है जिसमें वित्तीय कार्याधिकारी उचित गुण की, उचित मात्रा में सामग्री की उचित समय व न्यूनतम लागत पर आपूर्ति सुनिश्चित करता है जिससे कि संस्था की लाभार्जन क्षमता और सम्पत्ति को अधिकतम किया जा सके।

स्कन्ध प्रबन्ध के उद्देश्य (Objectives of Inventory Management) –

1. बिक्री खो जाने की संभावना को दूर रखना।
2. मात्रा छूट का लाभ लेना।
3. आदेश लागत में कमी ।
4. कुशल उत्पादन की प्राप्ति ।
5. उत्पादन की जोखिम को कम करना।
6. फर्म का स्कन्ध में विनियोजन न्यूनतम करना।
7. स्कन्ध के असामान्य क्षयों तथा चोरी को रोकना।
8. निर्मित माल को खत्म हो जाने की सम्भावनाओं की समाप्ति।
9. क्रय में मितव्ययिता लाना।
10. ग्राहकों को श्रेष्ठ सेवा प्रदान करना।
11. कन्धविहीनता से बचना और सामग्री की आपूर्ति सुनिश्चित करना।
12. संस्था की निर्माण कुशलता में वृद्धि लाना।
13. सामग्री के कम प्रयोग में आने वाली व अप्रचलित मदों व स्पष्ट करना।

स्कन्ध में विनियोजित स्तर को निर्धारित करने वाले तत्व (Factors Determining the investment level in inventory) –

प्रत्येक व्यवसाय की निजी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए स्कन्ध की मात्रा निर्धारित करनी पड़ती है। स्कन्ध की यह मात्रा न तो आवश्यकता से अधिक होनी चाहिए और न आवश्यकता से कम। अर्थात स्कन्ध की मात्रा का आधार अनुकूलतम होना चाहिए।

स्कन्ध में किये जाने वाले विनियोग के स्तर को निम्नलिखित कारक प्रभावित करते हैं –

1. कच्चे माल की मौसमी प्रकृति (Seasonal Nature of Raw Materials) –

कच्चा माल किसी विशेष मौसम में ही उपलब्ध होता है जबकि संस्था उसका प्रयोग वर्ष–पर्यन्त किया करती है तो मौसम में उस माल को क्रय करके

रखने में अत्यधिक पूंजी विनियोजित करनी पड़ेगी।

2. बड़े पैमाने पर क्रय में बचत (Economy of Large-Scale purchase)–

बचत विशेष रियायती मूल्य, अधिक छूट, परिवहन व्यय में बचत, भुगतान की आसान शर्तें, आदि से प्राप्त हो सकती है। इन सब बचतों से उपक्रम अधिक मात्रा में सामग्री क्रय करने के लिए प्रेरित हो सकता है तब स्कन्ध में विनियोजन अधिक होगा।

3. समय तत्व (Time Factor) –

उपक्रम के कच्चे माल की मण्डी समीप स्थित है और कम समय में ही आपूर्ति हो सकती है तो केवल दो तीन दिन के उत्पादन के लिए कच्चा माल ही स्कन्ध में रखा जाता है और विनियोजन कम होता है।

4. ऋण सुविधाएं (Loan Facilities) –

बहुधा कच्चे माल का क्रय देय बिलों के आधार पर किया जाता है और भुगतान परिपक्वता की तिथि पर करना पड़ता है। फिर कच्चे माल की जमानत पर बैंक व वित्तीय संस्थाओं से ऋण भी मिल जाता है।

5. मूल स्तर में उच्चावचन (Price Level Fluctuation) –

यदि निकट भविष्य में मूल्य वृद्धि की सम्भावना हो तो फर्म अधिक सामग्री खरीद कर संग्रहण करेगी फलतः स्टॉक में विनियोजन अधिक होगा। मूल्य स्तर में गिरावट की सम्भावना होने पर भण्डार में माल रखने की प्रवृत्ति छोड़ने की स्थिति होती है। और स्टॉक में विनियोजन कम होता हैं ।

6. विक्रय की मात्रा (Quantity of Sales) –

अगर फर्म के विक्रय की मात्रा लघु हो तो वह निर्मित माल का भण्डार भी कम रखेगी और विनियोजन का स्तर कम होगा।

7. आपूर्ति दशायें (Supply Conditions) –

यदि कच्चे माल की निरन्तर आपूर्ति निर्बाध ढंग से होंती है तो कम स्टॉक रखने के कारण विनियोजन भी कम होगा।

8. अन्य तत्व Other Factors) –

(1) हड़ताल की आशंका (2) निमित वस्तु का प्रस्तावित नियन्त्रण या

राशनिंग, (3) करों में वृद्धि की सम्भावना, (4) अच्छी या खराब फसल की उम्मीद (5) सरकारी नीति में परिवर्तन (6) बाजार में मन्दी की स्थिति एवं (7) आदि।

स्कन्ध प्रबन्ध के उपकरण एवं तकनीकें (Tools and Techniques of Inventory Management) –

सामान्यतः प्रबन्ध की क्रियाओं का प्रबन्धकीय सिद्धान्तों के आधार पर स्कन्ध के क्षेत्र में सम्पादन ही स्कन्ध प्रबन्ध कहलाता है। स्कन्ध प्रबन्ध की मात्रा व मूल्य सम्बन्धी नियोजन, संगठन, नियंत्रण एवं समन्वय से होता है। यदि स्कन्ध प्रबन्ध के दौरान उत्पन्न समस्याओं का सूक्ष्म अवलोकन किया जाय तो विदित होगा कि मूलतः स्कन्ध प्रबन्ध की समस्या निम्न तकनीकों से सम्बन्धित है।

1. आर्थिक आदेश मात्रा या ई. ओ. क्यू. (Economic Order Quantity or E.O.Q.) –

स्कन्ध के सन्दर्भ में आदेशन से आशय स्कन्ध के किसी मद को बाहर से क्रय करना या संस्था के अन्दर ही निर्माण करना होता है। यह आदेश की वह मात्रा है जिस पर लागत न्यूनतम हो। यदि संस्था चाहे तो वर्ष भर के लिए आवश्यक कच्चा माल एक ही बार में खरीद करके रहतिया में संग्रहण करने का निर्णय ले सकती है। इससे आदेशन लागत (Ordering cost) में तो कमी आएगी परन्तु स्कन्ध रखने की लागत (Inventory Carrying Cost) में वृद्धि हो जाएगी। इसके विपरीत, यदि संस्था छोटी–छोटी मात्रा में आदेश देती है तो आवेदन लागत में तो अनावश्यक वृद्धि हो जाएगी परन्तु स्कन्ध रखने की लागतें कम हो जाएंगी। आर्थिक आदेश मात्रा निर्धारित करते समय निम्न दो लागतों को ध्यान में रखा जाता है।

सूत्र रूप में,

No. of Order = S/Q

Total Ordering cost = S/Q x O = SO/Q

S = अवधि में प्रयुक्त सामग्री की कुल मात्रा

Q = प्रति आदेश की मात्रा

O = प्रति आदेश की आदेशन लागत।

अ. आदेशन लागत (Ordering Cost) –

औसत आदेशन लागत ज्ञात करने के लिए पूरे वर्ष की आदेशन लागतों का योग करके उसमें वर्ष भर के आदेशों की संख्या का भाग देना चाहिए। भारत के योजना आयोग के अनुसार औसत आदेशन लागत 10 रू. से 20 रू.के मध्य जानी चाहिये।

ब. स्कन्ध रखने की लागत (Inventory Carrying Cost) -

जब आदेशित माल संस्था को प्राप्त हो जाता है और उत्पादन के लिए प्रयोग न होकर भण्डार में सुरक्षित रखा जाता है तो स्कन्ध रखने की लागत आया करती है। इसके उदाहरण हैं – स्कन्ध में विनियोजित पूंजी की लागत, भण्डारण व्यय, बीमा व्यय, सामग्री क्रय, अप्रचलन की हानि, आदि। भारत के योजना आयोग ने इस लागतों को कुल लागत के 15–20 प्रतिशत तक अनुमानित किया है। आर्थिक आदेश मात्रा उस स्तर पर निर्धारित की जाती है जिस पर दोनों लागतों का योग न्यूनतम हो। आर्थिक आदेश मात्रा निर्धारित करने की निम्नलिखित तीन विधियां होती हैं।

अ. विश्लेषणत्मक विधि (Analytical Method) –

इस विधि में सामग्री की वार्षिक उपभोग मात्रा को भिन्न–भिन्न आकार के आदेशों में विभाजित कर लिया जाता है। प्रत्येक आदेश के आकार की आदेशन लागत और स्कन्ध रखने की लागत ज्ञात कर इन दोनों को जोड़ लिया जाता है। जिस आकार के आदेश पर कुल लागत न्यूनतम आती है उसे ही आर्थिक आदेश मात्रा मान लिया जाता है यह विधि सरल होने के बावजूद भूल एवं सुधार (Trial and error) पर आधारित होने के कारण कम स्वीकार्य होती है।

ब. बीजगणितीय विधि (Algebraic Method) –

यह सर्वाधिक लोकप्रिय विधि है जिसका प्रतिपादन विल्सन के द्वारा किया गया है। इसीलिए इसे विल्सन सूत्र विधि (Wilson Formula Method) भी कहा जाता है। आर्थिक आदेश मात्रा का निर्धारण निम्न बीजगणितीय सूत्र की सहायता से किया जाता है।

$$EOQ=\sqrt{\frac{2SO}{C}}$$

EOQ = आर्थिक आदेश मात्रा (Economic order Quantity)

S = वार्षिक उपयोग की अनुमानित इकाई (Estimated units of annual usage)

O = वार्षिक उपभोग की अनुमानित इकाई (Ordering cost per unit)

C = स्कन्ध रखने की लागत का प्रतिशत (Inventory carrying cost)

स. रेखाचित्र विधि (Graphical Method) –

इस विधि में हम आदेश देने के लागत स्कन्ध रखने की लागत तथा कुल लागत की विभिन्न आदेश आकारों के अनुसार रेखांचित्र पर अंकित करते है। आदेशन लागतें आदेश आकार के अनुसार बढ़ती जाती है। जबकि स्कन्ध रखने की लागतें घटती जाती हैं । अतः कुल लागत भी पहले घटती हैं फिर बढ़ने लगती हैं। जिस बिन्दु पर कुल लागत न्यूनतम होती है वही अधिक आदेश मात्रा बिन्दु होता है।

उदाहरण द्वारा विधियों का स्पष्टीकरण – इस उदाहरण से आर्थिक आदेश मात्रा की गणना विधियों को भली प्रकार स्पष्ट किया जा सकता हैं

वार्षिक उपयोग – 400 इकाई

प्रति आदेश देने की लागत – 100 रू.

स्कन्ध रखने की प्रति इकाई लागत– 8 रू.

(अ) विश्लेषणात्मक विधि –

No.of Order	Order Size (Units)	Ordering Cost	Average Inventory (Half of Order) (Units)	Inventory Carrying Cost (Rs)	Total Cost (Rs)
1	400	100	200	1600	1700
2	200	200	100	800	1000
3	133	300	67	536	836
4	100	400	50	400	800
5	80	500	40	320	820
6	67	600	33	264	864
7	57	700	29	232	932
8	50	800	25	200	1000

आर्थिक आदेश मात्रा 100 इकाई के जहाँ पर कुल लागत न्यूनतम 800 रू. है।

स. बीजगणितीय विधि

$$EOQ = \sqrt{\frac{2SO}{C}}$$

$$EOQ = \sqrt{\frac{2 \times 400 \times 100}{8}}$$

$$= \sqrt{10,000} \quad or \quad 100$$

Example:1,

एक्स कम्पनी एक ही प्रकार के उत्पाद का उत्पादन करती है। उत्पाद के उत्पादन हेतु कच्चे माल की 10 इकाइयां आवश्यक है। माना गया है कि कम्पनी 12,000 इकाइयों का उत्पादन प्रति वर्ष करती है वर्ष भर उत्पादन की मांग स्थिर है। कच्चे माल की प्रति आदेश लागत 200 रू. और प्रति इकाई स्कन्ध रखाव की लागत 10 रू. है (ए) आर्थिक आदेश मात्रा (बी) कुल स्कन्ध लागत और (सी) प्रति वर्ष आदेशों की संख्या को ज्ञात कीजिए।

Solution,

(a) Economic Order Quantity

SO or Annual requirement = 12,000 x 10 = 1,20,000 units

O = Rs. 300

C = Rs. 12

$$EOQ = \sqrt{\frac{2 \times 120000 \times 200}{10}}$$

$$= \sqrt{48,00,000}$$

$$= 2,190,89 \, Units$$

(b) Total Inventory Cost of 2,190.89 units (Ordering costs + Inventory Carrying costs)

Ordering Costs	=	1,20,000 x 200/2,190.89
	=	Rs. 10,954.45
Inventory Carying costs=		2,190.89 x 10/2
	=	Rs. 10,954.45
Total Inventory cost	=	Rs. 21,908.50

(c) No.of Orders per year= 1,20,000/2,190.89

= 54.77 times per year

4.4 प्राप्यों का प्रबन्ध (Management of Receivables)

प्राप्य भी कार्यशील पूंजी प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण पहलू है। क्योंकि वर्तमान में साख के आधार पर व्यवसाय का प्रचलन बढ़ गया है। वर्तमान में प्रत्येक व्यवसायिक संस्था को अपनी बिक्री के स्तर को बनाए रखने एवं बिक्री की मात्रा में वृद्धि करने के लिए माल का उधार विक्रय करना होता है। प्रतिस्पर्द्धात्मक आर्थिक प्रणाली में प्रत्येक संस्था को लाभार्जन क्षमता के अधिकतमीकरण करने हेतु माल व सेवा का उधार विक्रय अपरिहार्य हो गया है। उधार प्रेम की भाषा है। अब तो यह कहावत आज सभी उपक्रमों में चरितार्थ हो रही है। उधार विक्रय से भुगतान भविष्य के लिए स्थगित हो जाता है। संस्था द्वारा ग्राहकों को प्रदत्त उध ाार सुविधा के ही कारण प्राप्यों का जन्म होता है वर्ष के अन्त तक उधार विक्रय की न वसूल की गई धनराशि प्राप्य कहलाती है। कुल सम्पत्तियों में प्राप्यों का अनुपात 15 प्रतिशत से 25 प्रतिशत तक पाया जाता है। अतः संस्था के सफल संचालन हेतु प्राप्यों का कुशल प्रबन्ध किया जाना आवश्यक होता है। प्राप्यों का प्रबंध वास्तव में देनदारों और प्राप्य बिलों के सुप्रबन्धन से सम्बन्धित है। इसमें निम्न पहलू सम्मिलित होते हैं –

अ. वसूली की नीति एवं विधियों का निर्धारण

ब. साख शर्तों का निर्धारण

स. साख नीति का निश्चयन

द. प्राप्यों की वसूली नीति का निर्धारण व

य. प्राप्यों का नियन्त्रण एव विश्लेषण ।

प्राप्यों का उद्देश्य (Objectives of Receivables) –

प्राप्यों के प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य संस्था की लाभदायिकता एवं तरलता के मध्य संतुलन बनाकर संस्था के मूल्य में वृद्धि करना है। यदि संस्था का उद्देश्य विक्रय में वृद्धि करना है तो सम्पूर्ण विक्रय उधार में करना होगा। अतः प्राप्यों के प्रबन्ध का उद्देश्य संस्था की साख का इस प्रकार प्रबन्धन करने से है जिससे कि विक्रय की वृद्धि के साथ–साथ डूबते ऋणों की जोखिम को न्यूनतम किया यजा सके। प्राप्यों के सृजन निम्न हैं –

1. फर्म के मूल्य को अधिकतम करना,
2. लाभों में वृद्धि करना,
3. विक्रय में वृद्धि करना,
4. अनुकूलतम स्तर तक देनदारों में विनियोग करना,
5. साख की लागत को नियंत्रित करना,
6. प्रतिस्पर्धा का सामना।

प्राप्यों में निवेश के आकार का प्रभावित करने वाले तत्व (Factors affecting the size of investments in receivables) –

नकद स्कन्ध एवं प्राप्य कार्यशील पूंजी के महत्वपूर्ण घटक हैं। प्राप्यों में विनियोगों का आकार कई तत्वों पर निर्भर करता है। सुविधा की दृष्टि से इन तत्वों को निम्न भागों में विभाजित किया जाता है –

1. प्रतिस्पर्द्धा की स्थिति (Condition of Competition) –

एकाधिकार की स्थिति वाली फर्में अपने माल का नकद विक्रय किया करती हैं और प्राप्यों का उदय ही नहीं होता है परन्तु जितनी प्रतियोगिता बढ़ेगी उतना ही संस्था के उधार विक्रय व प्राप्यों की मात्रा बड़ी होगी।

2. संग्रहण नीति (Collection Policy) –

संग्रहण नीति में ग्राहकों से पत्र व्यवहार, टेलीफोन सम्पर्क, व्यक्तिगत भेंट व कानूनी प्रयत्न शामिल किए जाते हैं। संस्था का प्रबन्ध तन्त्र इन प्रयत्नों पर जितना जोर देगा उतना ही प्राप्यों का आकार छोटा होगा।

3. साख नीतियाँ (Credit policies)–

रूढ़िवादी साख नीति अपनाने वाली संस्था के प्राप्यों का आकार लघु होता है जबकि उदारवादी साख नीति अपनाने वाली संस्था के प्राप्यों में वृद्धिमान प्रवृत्ति पाई जाती है।

4. उधार विक्रय की मात्रा (Volume of credit sales) –

उधार विक्रय की मात्रा और प्राप्यों के स्तर में धनात्मक सहसम्बन्ध पाया जाता है। यदि कोई फर्म अधिक मात्रा में उधार विक्रय करने का निर्णय लेती है तो निश्चित रूप से प्राप्तियों का आकार भी बड़ा होगा। यदि कम मात्रा में उधार

विक्रय किया जाता है तो प्राप्यों में निवेश का आकार लघु होगा।

5. ग्राहकों की आदतें (Customers Habits) –

ग्राहकों के भुगतान करने की आदतों का भी प्राप्यों के आकार पर प्रभाव पड़ता है। अगर ग्राहकों की मनोवृत्ति देय राशि के भुगतान करने में विलम्ब करने की रही हो तो प्राप्यों का आकार बड़ा होगा अन्यथा नहीं।

6. मौसमी बाजार (Seasonal Market) –

यदि संस्था के बाजार का स्वभाव मौसमी है तो उस मौसम विशेष में कुल विक्रय उधार विक्रय और प्राप्यों की मात्रा अन्य सामान्य दिवसों से अधिक होगी। उदाहरणार्थ अगर संस्था पंखा, कूलर व एयर कण्डीशनर का विक्रय करती है तो गरमी के मौसम में उसके प्राप्यों की मात्रा अधिक होगी।

7. विक्रय की शर्तें (Terms of sales) –

प्राप्यों में निवेश के आकार को विक्रय की शर्तें सर्वाधिक प्रभावित करती है। यदि उपक्रम उधार माल का विक्रय तनिक भी न करे तो प्राप्यों का अस्तित्व ही नहीं दिखेगा। जैसे, बाटा शू कम्पनी पूरी तरह नकद विक्रय ही किया करती है तो उनके यहाँ प्राप्य सृजन का प्रश्न ही नहीं उठता है। परन्तु व्यवहार में प्रतिस्पर्द्धा, प्रचलित प्रथाओं व व्यावसायिक परम्पराओं को ध्यान में रखते हुए फर्म विशेष उधार माल बेचने को बाध्य हो जाया करती है।

8. अन्य तत्व (Other Factors) –

मूल्य स्तर में उच्चावचन, बिलों के कटौती की सुविधा, नकद छूट की नीतियों की उपलब्धता आदि भी प्राप्यों में निवेश के आकार को प्रभावित करते हैं।

अनुकूलतम साख नीति (Optimum Credit Policy) –

साख नीति का आशय उन निर्णयों से है जो एक संस्था की व्यवसायिक साख की राशि को प्रभावित करते हैं। प्राप्यों के प्रबन्ध में संस्था की साख नीति का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। संस्था की साख नीति यह स्पष्ट करती है कि एक संस्था कब और कितनी मात्रा में अपने ग्राहकों को साख की सुविधा प्रदान करें। अनुकूलतम साख नीति उस बिन्दु पर होती है जहाँ तरलता और लाभदायकता चक्र एक दूसरे को काटते हैं। वित्तीय प्रबन्धक को साख नीति का निश्चयन

करते समय न तो अत्यधिक उदार होना चाहिए और न ही अत्यधिक कठोर, यह तो अनुकूलतम होना चाहिये। उदार एवं कठोर साख नीतियों के अपने अपने गुण दोष होते हैं।

(क) उदार साख नीति (Liberal Credit Policy) – जब माल उधार की उदार शर्तों पर बेचा जाएगा तो बिक्री व लाभ दोनों बढ़ते हैं। फर्म विक्रय को बढ़ाने, पुराने ग्राकहों को बनाये रखने, नये ग्राहकों को आकृष्ट करने व मन्दीकाल में स्थिति सुधारने के लिए यह उदार साख नीति अपनाया करती है। परन्तु उदार साख नीति की कुछ बुराइयाँ भी हैं – 1. देनदारों में पूंजी व अशोध्य ऋणों से हानियाँ बढ़ जाती है।

(ख) कठोर साख नीति (Tight Credit Policy) – कम्पनियाँ विशेष परिस्थितियों में ही कुछ गिने चुने ग्राहकों को ही उधार माल बेचती है। और सामान्य रूप से नकद विक्रय की नीति अपनाती है। इससे तरलता स्थिति सुध ारती है, संस्था के ब्याज व पूंजी की लागत में कमी आती है। एवं अशोध्य ऋणों की राशि में कमी आती है। फिर भी कठोर साख नीति में बुराइयाँ हैं – 1. फर्म का विक्रय घटता है। 2. लाभोपार्जन क्षमता पर कुप्रभाव पड़ता है। 3. नवीन ग्राहक कम आकृष्ट होते हैं। फर्म को उदार व कठोर साख नीति के मध्य अनुकूलतम साख नीति अपनानी चाहिए। कठोर साख नीति में तरलता अधिक व लाभदायकता कम होती है जबकि उदार साख नीति में तरलता कम व लाभदायकता अधिक होती है। अनुकूलतम साख नीति का बिन्दु वह होगा जहाँ तरलता व लाभदायकता एक दूसरे को काटते हैं विक्रय की जिस मात्रा पर वे दोनों चक्र मिलते हैं वहीं अनुकूलतम साख की मात्रा होती है।

प्राप्यों के प्रबन्ध का क्षेत्र (Scope of functions of Management of Receivables) –

आधुनिक युग में उधार विक्रय की बहुलता के कारण प्राप्य सुप्रबन्धन वित्तीय प्रबन्धक की प्रमुख जिम्मेदारी हो गई है। प्राप्यों के प्रबंध के अन्तर्गत निम्न क्षेत्र अथवा कार्य सम्मिलित किए जाते हैं –

1. **साख नीति का निर्धारण (Determination of Credit Policy)** – बहुधा साख नीति में ग्राहकों को माल उधार बेचने से सम्बन्धित अग्र बिन्दुओं का समावेश किया जाता है।

(अ) उधार के स्तर (Credit Standards) – जो ग्राहक इन मानकों पर खरे उतरते हैं केवल उन्हें ही उधार की सुविधा प्रदान की जाती है और अन्य ग्राहकों को नकद माल ही बेचा जाता है। इन उधार मानकों में ग्राहक को ऋण भुगतान क्षमता व उनकी वित्तीय सुदृढ़ता निश्चित की जाती है।

(ब) उधार अवधि (Credit Period) – जो ग्राहक स्वीकृत अवधि से पहले भुगतान कर देते हैं उन्हें नकद छूट देने की व्यवस्था की जाती है। उदाहरणार्थ एक फर्म 2 प्रतिशत नकद छूट देने के लिए 30 दिनों की अवधि निश्चित करती है तो अगर कोई ग्राहक उधार माल 5000 रू. का क्रय करता है और 30 दिन के बाद भुगतान करेगा तो नकद छूट की सुविधा नहीं दी जाएगी।

(स) उधार सीमा (Credit Limits) – जब यह निर्धारित हो जाता है कि किन ग्राहकों को कितने समय के लिए उधार स्वीकार करना है, तब यह निर्धारित हो जाता है कि उधार किस सीमा तक स्वीकृत की जाएगी।

(2) साख आवेदकों का मूल्यांकन (Evaluation of Credit Applicants)– यदि साख आवेदकों की मूल्यांकित साख योग्यता उधार मानकों के अनुरूप होती है तो उच्च प्रबन्ध द्वारा उधार माल ग्राहकों को देंने के पक्ष में निर्णय किया जाता है अन्यथा नकद क्रय करने के लिएं प्रेरित किया जाता है।

(3) संग्रहण प्रक्रिया का निश्चयन (Determination of Collection Procedure)– उधार देरे के पश्चात प्राप्यों के प्रबन्ध का अगला कदम उधारों का संग्रहण होता है। वसूली की प्रक्रिया न केवल निश्चित कर लेना ही महत्वपूर्ण है बल्कि उस पर दृढ़ता से क्रियान्वयन भी करना चाहिए। संग्रहण की निम्न विधि ायों में से किसी भी एक का प्रयोग किया जा सकता है।

1. प्रत्यक्ष पूंजी,
2. नकद छूट का प्रलोभन देकर वसूली
3. तकादे के पत्रों द्वारा वसूली,
4. संग्रहण संस्थाओं के माध्यम से वसूली

(4) प्राप्यों का विश्लेषण (Analysis of Receivables) – प्राप्यों में विनियोग को समुचित स्तर पर बनाये रखने और उसे नियन्त्रित रखने के लिए

आवश्यक है कि समय–समय पर उनका विश्लेषण किया जाता रहे। प्राप्यों के विश्लेषण हेतु निम्न तकनीकें अपनाई जा सकती है।

(अ) अनुपात तकनीक (Ratio Technique) – प्राप्यों के विश्लेषण हेतु कई अनुपातों की गणना की जा सकती है। इन अनुपातों में प्राप्यों का चालू सम्पत्तियों से अनुपात (Ratio of Receivables to Current Assets), प्राप्यों का चालू दायित्व से अनुपात (Ratio of Receivables to current liabilities), प्राप्य, आवर्त अनुपात (Receivables Turnover Ratio), औसत संग्रहण अवधि (Average Collection Period) मुख हैं। इन अनुपातों की सहायता से प्राप्यों के सम्बन्ध में प्रबन्धकीय दक्षता का परीक्षण किया जा सकता है। विगत 5 या 7 वर्षों के अनुपातों का अध्ययन करके प्रवृत्ति का पता लगाया जा सकता हैं।

(ब) प्राप्य विनियोग बजट (Receivables Investment Budget) – अन्य बजटों की ही भांति आन्तरिक नियंत्रण के लिए प्राप्य बजट एक उपयोगी यन्त्र है। इसे मासिक आधार पर प्रारम्भिक प्राप्य शेष में उधार विक्रय का योग करके और प्राप्य वसूली तथा अप्राप्य ऋण को घटा करके बनाया जाता है।

4.5 सारांश

स्कन्ध प्रबन्ध का सारांश यह है कि स्कन्ध की मात्रा एवं उसमें विनियोजित राशि पर नियंत्रण से है जैसा कि ऊपर बताया गया है कि एक व्यावसायिक संस्था की कार्यशील पूंजी का एक बड़ा भाग स्टॉक के रूप में रहता है। अतः उसका प्रबन्ध उचित ढंग से न किया जाय तो पूंजी का एक भाग बेकार पड़ा रहेगा तथा संस्था को अनावश्यक रूप से हानि होगी। इस प्रकार स्कन्ध एवं प्रबन्ध दोनों शब्दों को समझने के बाद स्कन्ध नियंत्रण भी आवश्यक हो जाता है। सार रूप में स्कन्ध नियंत्रण कच्चे माल अर्द्ध निर्मित माल एवं निर्मित माल की मात्रा एवं इसमें विनियोजित पूंजी के सुचारू प्रबन्धन से होता हैं

प्राप्य सस्था के अपने ग्राहकों के प्रति दावों का प्रतिनिधित्व करते हैं। और इन्हें चिट्ठे में चालू सम्पत्तियों के शीर्षक के अन्तर्गत विविध देनदार, पुस्तकीय ऋण, प्राप्य बिल आदि नामों से जाना जाता है। अर्थात सार रूप में प्राप्यों के कुशलतापूर्वक प्रबनध के लिए यह आवश्यक है कि संस्था की साख एवं संग्रहण नीतियों का अध्ययन गहनता से करना अनिवार्य हैं ।

4.6 शब्दावली

रखरखाव की लागत : स्टोर में सामग्री के रखने के व्ययों को रखरखाव की लागत कहा जाता है।

आदेशित लागत : संस्था के बाहर से क्रय अथवा संस्था में उत्पादित किए गये माल पर विभिन्न क्रियाओं के करने से उत्पन्न व्यय को आदेशित लागत कहते हैं।

स्टॉक समाप्त होने की लागत : स्टॉक में माल न रहने के कारण उत्पादन बन्द होना और निर्मित माल का स्टॉक भी ग्राहकों के आदेशों की पूर्ति नहीं कर पाने से संस्था को जो क्षति होती है। उसे स्टॉक समाप्त होने की लागत कहते हैं।

ई. ओ. क्यू. : सामग्री को प्राप्त करने की लागत एवं रखरखाव के मध्य संतुलन स्थापित करना ही आर्थिक मितव्ययी आदेश मात्रा है।

साख नीति – साख नीति से आशय ग्राहकों को माल उधार बेचने से सम्बन्धित है।

उदार साख नीति – उदार साख नीति से आशय वित्तीय प्रबन्धक देनदारों को उदार शर्तों पर अधिक धनराशि अधिक समय के लिए उधार देता है।

कठोर साख नीति – इस नीति के तहत कम्पनियाँ कुछ गिने चुने ग्राहकों को ही उधार माल बेचते हैं इसलिए इसे कठोर साख नीति कहते हैं।

अनुकूलतम साख नीति – जहाँ तरलता और लाभदायकता वक्र एक दूसरे को काटते हैं उस बिन्दु अनुकूलतम साख नीति कहते हैं।

4.7 स्व–परक प्रश्न

1. स्कन्ध का अर्थ क्या है? स्कन्ध से किस उद्देश्य की पूर्ति होती है?

2. ई. ओ. क्यू. मॉडल की मान्यता क्या है? ई.ओ.क्यू. सूत्र का निरूपण कीजिए एवं उदाहरण देकर समझाइये।

3. स्कन्ध से आप क्या समझते हैं? इसके प्रबन्धन के उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए। स्कन्ध में विनियोजित स्तर को निर्धारित करने वाले कारकों का संक्षिप्त

विवेचन कीजिए।

4. आर्थिक आदेश मात्र किसे कहते हैं? इसको किस प्रकार निर्धारित किया जाता है?

5. प्राप्यों के प्रबन्ध से आप क्या समझते हैं? इसके उद्देश्यों की व्याख्या कीजिए।

6. साख प्रदान करने पर लागत लाभ में क्या सम्बन्ध होता है? अनुकूलतम साख निर्धारण के लिए इसे कैसे उपयोग में लाया जाता है?

7. प्राप्यों में निवेश को प्रभावित करने वाले विभिन्न घटकों का वर्णन कीजिए।

8. प्राप्यों के प्रबन्ध से क्या तात्पर्य है? प्राप्यों मे निवेश के आकार को निध ारित करने वाले कारकों की विवेचना कीजिए।

इकाई – 5 रोकड़ प्रबन्ध (Cash Management)

इकाई की रूपरेखा

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 रोकड़ प्रबन्ध का आशय

5.4 रोकड़ प्रबन्ध के उद्देश्य

5.5 रोकड़ प्रबन्ध की आवश्यकता एवं महत्व

5.6 रोकड़ प्रबन्ध के मॉडल

5.7 सारांश

5.8 शब्दावली

5.9 स्व–परक प्रश्न

5.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- रोकड़ प्रबन्ध का अर्थ बता सकें।
- रोकड़ प्रबन्ध के उद्देश्यों का वर्णन कर सकें।
- रोकड़ प्रबन्ध की आवश्यकता एवं महत्व को समझा सकें।
- रोकड़ प्रबन्ध के विभिन्न मॉडलों के व्याख्या कर सकें।

5.2 प्रस्तावना

रोकड़ प्रबन्ध किसी भी संगठन में एक महत्वपूर्ण प्रकार्य होता है। जिससे संगठन कुशलता पूर्वक चलाया जा सके। वित्त व्यवसाय का जीवन रक्त है। ठीक वैसे ही व्यवसाय में रोकड़ प्रबन्ध अपनी महती भूमिका विभिन्न तरह से निभाता है। प्रस्तुत इकाई में रोकड़ प्रबन्ध का आशय, महत्व और विभिन्न मॉडलों को इस प्रकार दर्शाया गया है कि, रोकड़ प्रबन्ध के महत्व को स्पष्ट किया जा सके। अर्थात इन सबकी व्याख्या क्रमानुसार की जा रही हैं।

5.3 रोकड़ प्रबन्ध का आशय

रोकड़ एक ऐसी महत्वपूर्ण चल सम्पत्ति है जिसके बिना किसी व्यवसाय का सफल संचालन करना संभव नहीं होता। रोकड़ में सर्वाधिक तरलता का गुण रहता है। इस कारण रोकड़ का प्रबन्ध वित्त प्रबन्धकों की सबसे बड़ी समस्या है। रोकड़ प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य संस्था की तरलता एवं लाभदायकता में वृद्धि करना होता है। कार्यशील पूंजी के प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य संस्था की प्रत्येक सम्पत्ति का अनुकूलतम उपयोग करना होता है। चालू सम्पत्तियों में रोकड़ प्राप्य बिल व रहतिया को सम्मिलित किया जाता है। रोकड़ व्यवसाय के चालू सम्पत्तियों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग होता है। यह व्यवसाय का प्रारम्भिक और अन्तिम बिन्दु (Starting and Finishing Point) होता है। यह व्यवसाय का रक्त है। वित्तीय प्रबन्ध में रोकड़ का संकीर्ण अर्थ हस्तस्थ रोकड़ (Cash in hand) व बैंक शेष से होता है। परन्तु विस्तृत अर्थ में विपणन योग्य प्रतिभूतियॉं (Marketable Securities) तथा बैंक सावधि जमा (Bank Time Deposits) को भी रोकड़ में सम्मिलित किया जाता हैं।

रोकड़ एवं रोकड़ तुल्य सम्पत्तियाँ (Cash and Cash equivalent Assets)–

रोकड़ का प्रबन्ध चल सम्पत्तियों के प्रबन्ध का केन्द्र बिन्दु है। नकद कोश का व्यापार में वही स्थान है जो मानव शरीर में रक्त का। रक्त के उचित संचालन की ही भाँति रोकड़ का अन्तर्वाह एवं बहिर्वाह स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। रोकड़ प्रबन्ध का आशय रोकड़ उपलब्धता तथा किसी व्यर्थ कोश पर ब्याज आय को अधिकतम करने के उद्देश्यों से एक फर्म के मुद्राओं के प्रबन्धन से है।

रोकड़ कोषों का प्रबन्ध यह सुनिश्चित करता है कि वक्त पर नकदी की कमी न पड़े और व्यवसाय में रोकड़ का प्रवाह ठीक बना रहने के साथ ही साथ उनका उचित प्रयोग सुनिश्चित हो सके। रोकड़ प्रबन्ध 5 R's - Right quality, Right quantity, Right time, Right source, Right cost- उचित गुण, उचित मात्रा, उचित समय, उचित साधन, उचित लागत का निर्णय है। रोकड़ प्रबन्ध के मुख्य रूप से निम्न चार पहलू या आयाम (Facets or Dimensions) होते हैं ।

1. **रोकड़ नियोजन (Cash Planning)** – इसके अन्तर्गत रोकड़ की आवश्यकता का उचित ढंग प्रमुखतया रोकड़ बजट के द्वारा, नियोजन कर लिया जाना चाहिए। इसके लिए रोकड़ के अन्तर्वाहों और बहिर्वाहों का पहले से अनुपात लगाया जाता है ताकि अधिकता या न्यूनता का स्पष्ट पूर्वाभास हो सके।

2. **रोकड़ प्रवाहों का प्रबन्धन (Managing the Cash Flows)** – रोकड़ प्रवाह (अन्तर्वाह एवं बहिर्वाह) का प्रबन्ध इस ढंग से करना चाहिए कि रोकड़ का संग्रहण शीघ्रता से हो सके और भुगतान यथासम्भव विलम्ब से करना पड़े। रोकड़ के संग्रहण की गति को तीव्र करने के लिए विकेन्द्रित संग्रहण (Decentralised collections) और तालक सन्दूक प्रणाली (Lock Box system) का प्रयोग किया जा सकता है। इसके विपरीत रोकड़ के वितरण की स्थिति में केन्द्रित व्रूवस्था अपनाई जा सकती है। ताकि भुगतान करने में अधिक समय लग सके।

3. **अनुकूलतम रोकड़ शेष (Optimum cash balance)** – रोकड़ प्रबन्धन का एक प्रमुख पहलू अनुकूलतम स्तर का निर्धारंण है रोकड़ आधिक्य की लागत तथा रोकड़ कमी के दुष्प्रभावों को ध्यान में रखते हुए अनुकूलतम शेष की सीमा तय की जा सकती हैं ।

4. **अतिरिक्त रोकड़ का विनियोग (Investment of Excess Cash)** – रोकड़ प्रबन्धन का चौथा पहलू निष्क्रिय रोकड़ का विनियोग करता है। ताकि फर्म का वह पैसा अनुत्पादक न पड़ा रहे। यह विनियोग प्राय: बैंक निक्षेपों व विपणन योग्य प्रतिभूतियों में किया जाता है इसकालाभ यह होता है कि फर्म की कुछ आय की प्राप्ति भी की जाती है।प्रतिभूतियों का चुनाव करते समय सुरक्षा (Safety), परिपक्वता (Maturity), एवं विपणनशीलता (Marketability) का ध्यान रखा जाना चाहिए।

5.4 रोकड़ प्रबन्ध के उद्देश्य

वित्तीय प्रबन्धक संस्था के लिए अनुकूलतम नकद कोषों का निर्माण करें। जिससे कि संस्था अपने आवश्यकताओं की पूर्ति तुरन्त कर सके। व्यवसाय में रोकड़ की उपलब्धता जीवन और मरण के समान है, नकद कोष न केवल

व्यवसाय को प्रारम्भ करने अथवा संचालित करने के लिए आवश्यक है अपितु भविष्य की आकस्मिकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक है। अतः नक़द कोष रखने के निम्न उद्देश्य हैं –

1. सतर्कता,
2. व्यापार प्रयोजन सम्बन्धी,
3. व्यवसाय सुअवसर का लाभ,
4. कार्यकुशलता में वृद्धि
5. नये विनियोग को प्रोत्साहन,
6. ख्याति को बनाये रखना,
7. बैंकों व ऋणदाताओं से मधुर सम्बन्ध,
8. व्यापारिक छूट प्राप्त करना इत्यादि।

5.5 सरलता की आवश्यकता एवं महत्ता (Need and Importance of Liquidity)

अभिप्रेरण नकद कोषों को रखने का मूल आधार है। एक सामान्य व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं एवं आकस्मिकताओं की पूर्ति के लिए नकद कोषों को रखता है। परन्तु एक व्यवसायी की आवश्यकता इससे अधिक होती है। पर्याप्त नकदी कोषों का होना व्यवसाय में आवश्यक होता है अन्यथा इसके बिना संकट का आना अवश्यम्भावी है। हम स्वयं की बात करें । अगर हमारे पास 10 करोड़ रू. मूल्य का भवन है, फिर भी आज की सब्जी खरीदने पर 100 रू. खर्च करना हो तो बिना रोकड़ के काम नहीं चलता। उसी प्रकार व्यवसाय का संचालन रक्त ही रोकड़ है। तरलताहीनता या रोकड़हीनता तो व्यवसाय के अस्तित्व को ही मिटाकर दिवालिया बना सकती है। उचित तरलता से निम्नलिखित महत्वपूर्ण लाभ मिलते हैं।

1. व्यापार सम्बन्धीं प्रयोजन के लिए कोष आवश्यक है।
2. सुरक्षा सम्बन्धी प्रयोजन,
3. सट्टा सम्बन्धी प्रयोजन,

4. कच्चे माल के प्रदाता को त्वरित भुगतान करने से निरन्तर आपूर्ति एवं अधिक साख सुविधा प्राप्त होती है।

5. तरलता सुदृढ़ होने पर संस्था तुरन्त भुगतान करके नकद कटौती का लाभ प्राप्त कर सकती है जिससे उत्पादन क्षमता एवं लाभों में वृद्धि होती है।

6. जिन व्यावसायिक संस्थाओं की तरलता स्थिति मजबूत होती है उनके बैंकों से मधुर सम्बन्ध बने रहते हैं।

7. आपत्तिकाल में नकद कोष सुरक्षा बन्धन का काम करते हैं और संस्थाएं अपनी अस्तित्व रक्षा में सफल होती हैं।

8. सुनहरे व्यावसायिक अवसरों का लाभ उठाने के लिए भी उपक्रम को ध नकोष बनाए रखना आवश्यक है।

9. प्रत्येक उपक्रम को दैनिक दायित्वों की पूर्ति एवं संचालन कार्यों के लिए रोकड़ की आवश्यकता होती है।

10. व्यावसायिक उच्चबंधनों एवं बन्दी का सामना भी मजबूत तरलता से किया जा सकता है।

11. पर्याप्त रोकड़ संस्था की कार्यकुशलता, ख्याति एवं मनोबल में वृद्धि करती है।

5.6 रोकड़ शेष को निर्धारित करने वाले तत्व (Factors Determining Cash Balance)

रोकड़ का अनुकूलतम स्तर बनाये रखना वित्तीय प्रबन्धकों के लिए सर्वाधि क महत्वपूर्ण कार्य है। आवश्यकता से अधिक रोकड़ एवं आवश्यकता से कम रोकड़ दोनों ही व्यवसाय के लिए हानिकारक है। अतः एक व्यावसायिक संस्था के पास इतनी रोकड़ अवश्य होनी चाहिए कि, उसकी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। एवं अप्रत्याशित घटनाओं का सामना किया जा सके। किसी व्यवसाय में नकद कोष की मात्रा की आवश्यकता को निम्न निर्णायक तत्व प्रभावित करते हैं।

1. **रोकड़ भुगतान (Cash payments)** – यदि फर्म अपने ऋणों के

भुगतान करने में विलम्ब करे तो कम रोकड़ शेष चाहिए। अगर फर्म ऋणों का तुरन्त भुगतान करने को इच्छुक रहती हो तो अधिक रोकड़ शेष निर्धारित करना होगा।

2. **स्कन्ध स्थिति (Inventory Position)** – प्रत्येक व्यावसायिक संस्था को व्यापार संचालन हेतु कच्चे व तैयार माल का स्कन्ध रखना पड़ता है। जिस व्यवसाय में स्कन्ध अधिक मात्रा में रखा जाता है वहाँ पर नकद कोषों की जरूरत अधिक होती हैं ।

3. **उत्पादित माल की मांग (Demand of Produced Goods)** – अगर संस्था द्वारा निर्मित माल की मांग लगातार रहती है। तो कम नकद कोषों की जरूरत होती है। इसके विपरीत पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादकों को अधिक नकद कोष जरूरत होगी।

4. **व्यापार की मात्रा (Size of Trade)** – एक छोटे व्यापार में बड़े व्यापार की तुलना में कम रोकड़ की आवश्यकता अवश्यम्भावी है। बड़ी स्पष्ट बात है कि पान विक्रेता को रोकड़ की आवश्यकता फ्रीज विक्रेता से जरूर कम हुआ करेगी।

5. **रोकड़ संग्रहण (Cash Collection)** – अगर फर्म रोकड़ की वसूली के लिए विकेन्द्रित संग्रहण, तालक सन्दूक प्रणाली अन्तर कम्पनी रोकड़ हस्तान्तरण पर नियन्त्रण जैसी तकनीकों का प्रयोग करती है तो रोकड़ की गति तीव्र होगी और रोकड़ शेष की कम जरूरत होगी। इसके विपरीत, अधिक जरूरत महसूस होगी।

6. **बैंकिंग सम्बन्ध (Banking Relations)** – ऐसी कम्पनियाँ जिनके अपने जीवनकाल में बैंकों के साथ मधुर सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं तथा बैंकों की दृष्टि से जिनकी अच्छी साख है वे कम रोकड़ स्तर से ही काम चला सकती हैं ।

7. **क्रय–विक्रय की शर्तें (Terms of Purchases and Sales)** – अगर फर्म उधार क्रय को नकद क्रय की तुलना में प्राथमिकता देती है तो कम रोकड़ की जरूरत रहेगी, अन्यथा अधिक रोकड़ चाहिए। इसी प्रकार फर्म यदि उधार विक्रय को प्रोत्साहित करती है तो अपेक्षाकृत अधिक रोकड़ चाहिए।

8. **व्यवसाय की प्रकृति (Nature of business)** – कुछ व्यवसाय ऐसे होते हैं जहाँ पर रोकड़ की आवश्यकता स्थाई पूंजी की तुलना में कम होती है फिर भी कुल सम्पत्तियों की तुलना में तरल कोषों का अनुपात 5 प्रतिशत से 10 प्रतिशत के बीच रहता है।

9. साख नीति, उत्पादन प्रक्रिया, उत्पादन नीति, वितरण प्रणाली, प्रबन्धकीय नीति, एवं वसूली नीति इत्यादि।

10. मन्दी की स्थिति।

11. **अन्य तत्व (Order Factors)** – कुछ अन्य तत्व भी हैं जैसे –

क. नकद कोषों का कुशल प्रबन्ध

ख. प्राप्य विपत्रों की दशा,

ग. भावी मुद्रा स्फीति. की आशंका

घ. लाभांश नीति, व

ङ स्कन्ध आवर्त अनुपात।

5.7 रोकड़ प्रबन्ध के मॉडल (Models of Cash Management)

अनुकूलतम रोकड़ शेष के निर्धारण के लिए विभिन्न गणितीय प्रतिमानों का प्रयोग किया जाता है। परन्तु यह प्रतिमान अनुकूलता को ध्यान में रखते हुए प्रयोग में लाने चाहिए क्योंकि इनका अनुमान लगाना कठिन कार्य है। प्रतिमानों के प्रयोग के लिए वित्तीय प्रबन्धकों को काफी सूचनाओं की आवश्यकता होती है। रोकड़ के अनुकूलतम शेष की राशि ज्ञात करने के लिए निम्न मॉडल प्रयोग में प्रचलित हैं :

1. **बॉमोल प्रतिमान (Baumol's Model)** – इस मॉडल के अनुसार कार्यशील रोकड़ शेष का निर्धारण उस समय किया जाता है जब रोकड़ प्राप्ति व भुगतान की राशि निश्चित हो। इस मॉडल में रोकड़ शेष रखने की लागत अर्थात विनियोगों पर अर्जित किये जाने वाली ब्याज की हानि एवं प्रतिभूतियों का विक्रय करने पर वहन की जाने वाली लागत के मध्य संतुलन स्थापित किया जाता है।

विलियम जे. बॉमोल ने आर्थिक आदेश मात्रा (Economic Order Quantity - EOQ) की ही भांति अनुकूलतम रोकड़ स्तर निर्धारण का सूत्र प्रतिपादित किया। जिस प्रकार आर्थिक आदेश मात्रा रहतिया के प्रबन्ध के लिए उपयोगी है, जिसमें रहतिया आदेश की अनुकूलतम मात्रा तथा आदेशों की अनुकूलतम संख्या का निर्धारण किया जाता है उसी प्रकार रोकड़ के प्रबन्ध के लिए भी अनुकूलतम रोकड़ स्तर का निर्धारण किया जा सकता है। इस मॉडल से रोकड़ की अनुकूलतम राशि का निर्धारण तथा उस समय का निर्धारण करते हैं जब विपणन योग्य प्रतिभूतियों एवं अल्पकालीन विनियोगों को बेचकर रोकड़ प्राप्त करनी चाहिए अथवा जब रोकड़ की राशि को विपणन योग्य प्रतिभूतियों एवं अल्पकालीन विनियोगों में निनियोग करना चाहिए।

बॉमोल का अनुकूलतम रोकड़ स्तर आकलन सूत्र निम्न हैं

$$Q=\sqrt{\frac{2\,DO}{I}}$$

यहाँ पर, Q = रोकड़ शेष का अनुकूलतम स्तर,

D = रोकड़ का वार्षिक उपभोग,

O = प्रति व्यवहार लागत, व

I = प्रतिभूतियों की ब्याज दर।

बॉमोल का मॉडल ई. ओ. क्यू. सिद्धान्त की मान्यताओं पर आधारित है और ये मान्यताएं व्यवहार में खरी नहीं उतरतीं क्योंकि, व्यवहार में नकद अस्थिर एवं अनिश्चित होते हैं अर्थात भुगतानों एवं प्राप्तियों की राशि में पर्याप्त विचरण होता है।

1. **मिलर–ओर का रोकड़ प्रबन्ध मॉडल (Miller-Orr's Cash Management Model)** –

इस मॉडल की मान्यताएं निम्न हैं –

1. फर्म के पास एक न्यूनतम आवश्यक रोकड़ शेष हैं।
2. रोकड़ बहाव सामान्य रूप से वितरित है।

3. रोकड़ बहाव में कोई स्व–सह–सम्बन्ध नहीं हैं

4. रोकड़ बहाव का प्रमाप विचलन समय के अनुसार परिवर्तित नहीं होता है।

5. रोकड़ बहाव शून्य है।

उपरोक्त मान्यताओं पर आधारित मिलर और मॉडल मूलतः रोकड़/विनियोग निर्णय में नियंत्रण सीमा सिद्धान्त का प्रयोग है। मेर्टन एच, मिलर एवं डेनियल ओर के अनुसार रहतियां प्रबन्ध और रोकड़ प्रबन्ध में काफी समानताएं हैं मिलर और ओर ने एक ऐसा मॉडल विकसित किया जिसमें रोकड़ के उच्चतम एवं निम्नतम स्तर तथा विपणन योग्य प्रतिभूतियों में विनियोग की जाने वाली रोकड़ का समय एवं मात्रा निर्धारित की जाती है। इस मॉडल में सौदा लागत एवं अवसर लागत के आधार पर नियंत्रण सीमा (Control limit) तय की जाती है जो रोकड़ शेष के उच्चावचन से भी प्रभावित रहती हैं ।

मिलर ओर मॉडल का सूत्र निम्न है –

$$R = \sqrt[3]{\frac{3aV}{4i}}$$

यहा पर,

a = प्रतिभूति व्यवहार से सम्बन्धित स्थायी लागत,

V = दैनिक रोकड़ प्रवाहों का विचरण (Variance), व

i = विनियोग पर दैनिक ब्याज दर ।

यदि L निचली सीमा है तो अनुकूलतम वापसी बिन्दु (R+L) बराबर होगा।

2. **स्टोन मॉडल (Stone Model)** – यह मॉडल आशंसित भावी रोकड़ बहाव के आधार पर विनियोग करने व विनियोग बेचने से सम्बन्धित निर्णयों में कुछ सुधार करने का प्रयत्न करता है। इस मॉडल में भी नियंत्रण सीमा होती है। परन्तु ये नियंत्रण सीमाएं एक एक न होकर दो दो होती हैं अर्थात विनियोग बेचकर प्राप्त राशि इतनी होनी चाहिए कि आपसी बिन्दु पर पहुँच जाए या विनियोग करने की राशि इतनी होनी चाहिए कि वापसी बिन्दु पर पहुँच जाए।

5.8 सारांश

उपरोक्त अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि रोकड़ का प्रबन्ध यह सुनिश्चित करता है कि व्यावसायिक संस्था में आवश्यकता के समय नकदी की कमी न रहे और व्यवसाय में रोकड़ का समुचित प्रवाह बना रहे जिससे उसका उचित प्रयोग सुनिश्चित हो सके। निष्कर्ष स्वरूप रोकड़ प्रबन्ध व्यावसायिक संस्था के लाभों को अधिकतम करने के लिए तरलता एवं लाभदायकता में संतुलन स्थापित करना है।

5.9 शब्दावली

रोकड़ नियोजन : रोकड़ नियोजन से तात्पर्य रोकड़ प्राप्ति की मात्रा का अनुमान एवं भुगतान को व्यवस्थित करने से होता हैं ।

रोंकड़ बहाव विश्लेषण : एक निश्चित अवधि में रोकड़ के विभिन्न स्त्रोतों एवं रोकड़ के विभिन्न प्रयोगों का विवेचन हैं

रोकड़ बजट : एक निश्चित समयावधि में रोकड़ के आगमन एवं बहिर्गमन का लेखा ही रोकड़ बजट है। वस्तुतः रोकड़ बजट लक्ष्य के रूप में रोकड़ बहाव का निरूपण करता है।

रोकड़ चक्र मॉडल : रोकड़ चक्र का सम्बन्ध फर्म के खातों के माध्यम से रोकड़ बहाव से होता है। रोकड़ बहाव की सम्पूर्ण क्रिया को रोकड़ चक्र मॉडल कहते हैं।

5.10 स्व–परक प्रश्न

1. रोकड़ प्रबन्ध के अर्थ की स्पष्ट व्याख्या कीजिए और रोकड़ व तरल सम्पत्तियों को रखने के मुख्य प्रयोजनों को समझाइये।

2. एक फर्म में नकदी रखने के मुख्य उद्देश्य क्या हैं? उन कारणों की व्याख्या कीजिए जो एक फर्म के द्वारा रखे जाने वाले नकदी कोषों का स्तर निर्धारित करते हैं।

3. व्यवसाय में तरलता की आवश्यकता क्यों होती है? रोकड़ प्रबन्ध के विभिन्न आयामों की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।

4. रोकड़ प्रवाह प्रबन्धन किस प्रकार किया जाता है? बॉमोल के प्रबन्ध मॉडल का वर्णन कीजिए।

5. अनुकूलतम रोकड़ स्तर का निर्धारण किस प्रकार किया जाता है? रोकड़ प्रबन्ध के किन्हीं दो मॉडलों का अध्ययन कीजिए।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

B.Com.-504
वित्तीय प्रबन्ध

खण्ड
4
लाभांश निर्णय

इकाई -1 5
लाभांश नीति

इकाई -2 13
लाभांश के सिद्धान्त

इकाई -3 33
लाभांश नीतियों के प्रकार/स्वरूप

इकाई -4 42
लाभांश के प्रकार

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	**कुलपति - अध्यक्ष**
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
श्री एम0 एल0 कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

संरचनात्मक सम्पादन

डॉ0 मंजूलिका श्रीवास्तव	निदेशक, दूरस्थ शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली

विषयगत सम्पादन

प्रो0 मूल मोतिहार	प्रोफेसर, मोनिरबा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 डी0 डी0 बेडिया	रीडर, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

प्रस्तुत पाठ्य सामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के स्वयं के हैं।

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

खण्ड-2 परिचय-

इस खण्ड में वित्तीय प्रबन्ध के अन्तर्गत लाभाश - निर्णय की व्याख्या निम्नलिखित चार इकाईयों में प्रस्तुत की गई है।

इकाई एक में लाभांश नीति के अर्थ व महत्व की व्याख्या की गई है।

इकाई दो में लाभांश के सिद्धान्त के सम्बन्ध में विस्तृत व गहन विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

इकाई तीन में लाभांश - नीतियों के प्रकार व स्वरूप की व्याख्या की गई है।

इकाई चार में लाभांश के प्रकार की विस्तृत व्याख्या की गई है।

इकाई – 1 लाभाश नीति (Dividend Policy)

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 लाभांश नीति

1.4 लाभांश नीति का अर्थ

1.5 सारांश

1.6 शब्दावली

1.7 स्व–परक प्रश्न

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- लाभांश नीति का अर्थ बता सकें।
- लाभांश नीति का कम्पनी पर क्या प्रभाव होगा, इसका आंकलन कर सकें।
- कम्पनी की लाभांश नीति से कम्पनी के अंशधारियों पर क्या प्रभाव हो सकेगा। इसका भी आकलन कर सकें।

1.2 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में लाभांश नीति तथा इसका प्रभाव अशधारियों एवं कम्पनी पर किस प्रकार पड़ता है यह लाभांश नीतियों के विभिन्न प्रकारों द्वारा पता चलता है। अतः लाभांश नीति राष्ट्रीय बचत विनियोग व आर्थिक विकास को प्रोत्साहित तथा हतोत्साहित करने में प्रमुख भूमिका निभाती है। लाभांश नीति से आशय लाभांश वितरित करने के सिद्धान्तों व योजनाओं से होता है। एक व्यावसायिक संस्था का उद्देश्य लाभ कमाना है। यह अपने आप में एक महत्वपूर्ण वित्तीय निर्णय है कि अर्जित लाभ का प्रयोग किस प्रकार किया जाय। मुख्य प्रश्न यह उठता है कि लाभ का पूर्ण उपभोग स्वामियों द्वारा किया जाए या उसे व्यवसाय में ही प्रतिधारित करके पुनर्विनियोग

किया जाये। एकल व्यापारी की दशा में इस प्रकार के निर्णय लेने में कोई भी समस्या खड़ी नहीं होती है। इसी प्रकार साझेदारी संस्था की दशा में साझेदारी संलेख में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि लाभ को साझेदारी/स्वामियों में किस प्रकार वितरित किया जाएगा। हाँ, कम्पनी संगठन स्वरूप की दशा में यह निर्णय कुछ जटिल अवश्य प्रतीत होता है।

कम्पनी अधिनियम मे स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि एक कम्पनी को अपने लाभ का कितना प्रतिशत अंशधारियों के बीच में वितरित करना एवं कितने प्रतिशत प्रतिधारित करना है जिससे कम्पनी अपनी भविष्य की योजना निर्धारित कर सके।

1.3 लाभांश नीति (Dividend policy)

कम्पनी एक कृत्रिम व्यक्ति है और व्यवसाय के अंशधारी अधिक फैले हुए होते हैं। लाभ के प्रयोग सम्बन्धी निर्णय का भार कुछ व्यक्तियों के समूह पर ही होता है जिन्हें संचालक मण्डल कहते हैं। अन्य संगठन स्वरूपों की भाँति कम्पनी के शुद्ध लाभ के बंटवारे की समस्या भी या तो लाभ को व्यवसाय में ही प्रतिधारित करने की या अंशधारियों को लाभांश के रूप में बांटने की होती है। अंशधारियों में विभाज्य लाभ के वितरण सम्बन्धी निर्णय महत्वपूर्ण होता है। इस सम्बन्ध में लिए गये निर्णय का मतलब अंशधारियों को अधिक आय, कम आय अथवा कुछ आय नहीं हो सकता है। विद्यमान अंशधारियों के रूख को प्रभावित करने के साथ–साथ लाभांश देने के निर्णय का प्रभाव भावी अंशधारियों, स्कन्ध विनिमय व वित्तीय संस्थाओं के रूख व व्यवहार (Mood and behaviour) पर भी पड़ सकता है, क्योंकि लाभांश का सम्बन्ध कम्पनी के मूल्य से होता है जो कम्पनी के अंशों के बाजार मूल्य को प्रभावित करता है। लाभांश के रूप में लाभ का वितरण विवाद का विषय बन सकता है। क्योंकि विभिन्न पक्षों जैसे संचालक, कर्मचारी, अंशधारी, ऋणपत्रध ारी, ऋण प्रदान करने वाली संस्था आदि का हित टकराव का होता है। जहाँ कोई पक्ष नियमित आय (लाभांश) के पक्ष में होता है, तो कोई पूंजी वृद्धि या पूंजीगत लाभ में रूचि रखता है इस प्रकार लाभांश नीति का निर्माण करना एक जटिल निर्णय है। अनेक बातों का सावधानीपूर्वक मनन करना

पड़ता है परन्तु यह बात तय है कि कोई तदर्थ कदम उठाने के बजाय लाभांश के सम्बन्ध में एक यथोचित दीर्घकालीन नीति का पालन करना चाहिए। लाभांश नीति से आशय, लाभांश वितरित करने के सिद्धान्तों व योजना से होता है। लाभांश नीति का अर्थ संचालकों के उस निर्णय से है जिसके द्वारा वे यह तय करते हैं कि लाभ का कितना भाग लाभांश के रूप में वितरित किया जाय और कितना प्रतिधारित किया जाय।

वित्तीय प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य संस्था के बाजार मूल्य का अधि ाकीकरण होता है। संस्था के सम अंशों का बाजार मूल्य इस नीति से प्रभावित होता है कि शुद्ध लाभ अथवा आधिक्य को लाभांश भुगतान (Payout) और पुनर्विनियोजन (Plough back) के बीच किस प्रकार आवंटित किया जाता है। प्रबन्धकों के सामने यह विकल्प नहीं होता है कि लाभांश बांटे या न बांटे। हाँ, यह प्रश्न अवश्य होता है कि कितना लाभांश बांटे? इसका उत्तर लाभांश नीति से मिलता है। लाभांश नीति का अर्थ लाभांश वितरित करने के सिद्धान्तों व योजना से होता है। वेस्टन एवं ब्राइगम ने लिखा है, ''लाभांश नीति अर्जनों का अंशधारियों को भुगतान एवं प्रतिधारित अर्जनों में विभाजन निश्चित करती है।''

अंशधारियों में लाभांश के रूप में अर्जन के वितरण के सम्बन्ध में प्रबन्ध ा द्वारा निर्मित नीति को ही लाभांश नीति कहते हैं। केवल एक विशेष सत्र में देय लाभांश से ही इसका सम्बन्ध नहीं होता है बल्कि कई वर्षों तक अपनाए जाने वाले कदमों से भी यह सम्बन्ध रखता है। लाभांश नीति निर्माण करने से पूर्व निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर ढूंढने होंगे

1. क्या संचालन के प्रारम्भिक वर्षों से ही लाभांश का भुगतान किया जाय?

2. क्या निश्चित प्रतिशत प्रत्येक वर्ष लाभांश दिया जाए, चाहे लाभ की मात्रा कुछ भी क्यों न हो?

3. क्या लाभ का एक निश्चित प्रतिशत लाभांश के रूप में दिया जाए जिसका आशय प्रति अंश परिवर्तनशील लाभांश होगा?

4. क्या लाभाश नकद दिया जाए?

5. क्या लाभांश बोनस अंशों के रूप में दिया जाय?

6. क्या लाभांश की सम्पूर्ण राशि प्रारम्भिक वर्षों में पुनर्विनियोजित की जाए?

1.4 लाभांश का अर्थ (Meaning of Dividend)

लाभ का वह भाग, जिसे विभाज्य लाभ कहते हैं कम्पनी के सदस्यों को प्राप्त होता है, लाभांश कहलाता है। विभाज्य लाभ से आशय कम्पनी के उन लाभों से है जो वैधानिक तौर पर कम्पनी के अंशधारियों के बीच बांटे जा सकते हैं। कम्पनी (लाभांश पर अस्थाई प्रतिबन्ध) अधिनियम, 1974 संशोधित 1975 के अनुसार विभाज्य लाभ का अभिप्राय कम्पनी के शुद्ध लाभ का 1/3 भाग या कम्पनी के सम अंशों के अंकित मूल्य पर भुगतान योग्य 12 प्रतिशत लाभांश की राशि व पूर्वाधिकार अंशों पर देय लाभांश की राशि (मे से जो भी कम हो) से होता है। इस आशय के लिए शुद्ध लाभ वह लाभ होता है, जो कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 394 के प्रावधानों के अनुसार हो और उसमें से आयकर की राशि घटा दी गयी हो तथा कम्पनी अधिनियम की धारा 205 के अनुसार ह्रास घटा दिया गया हो।

लाभांश वस्तुतः कुल अर्जित आय में से समस्त व्ययों को घटाने के बाद व विशेष प्रकार के कोषों व करों के लिए प्रावधान करने के बाद बचे आधिक्य का ही एक भाग होता है। इस आधिक्य पर सम अंशधारियों का ही अधिकार होता है। हाँ पूर्वाधिकार अंशों की दशा में उन्हें इस आधिक्य पर सम अंशधारियों की तुलना में प्राथमिकता प्राप्त होती है। यद्यपि सम अंशधारियों का इस आधिक्य पर पूरा अधिकार होता है फिर भी कानूनी तौर पर अंशधारी इसके पूर्ण वितरण के लिए या तत्काल वितरण के लिए कम्पनी को बाध्य नहीं कर सकते हैं।

लाभांश नीति को प्रभावित करने वाले तत्व (Factors affecting Dividend Policy) –

लाभांश नीति को निर्धारित करने वाले तत्व निम्नलिखित हैं :–

1. लाभ का स्तर (Level of profits) –

लाभांश का वितरण कम्पनी के वर्तमान व गत वर्ष के लाभों में से ही किया जा सकता है इसलिए लाभांश नीति को प्रभावित करने वाला सबसे प्रमुख तत्व कम्पनी का लाभ होता है । कम्पनी का लाभ, लाभांश की उच्चतम सीमा निर्धारित करने में सहायक होता है। इसी प्रकार स्थायी रूप से लाभ अर्जित करने वाली कम्पनियाँ उन कम्पनियों की अपेक्षा जिनके लाभ में उच्चावचन होता रहता है लाभ का अधिक भाग लाभांश के रूप में वितरित करती हैं।

2. नकदी की स्थिति (Position of Cash)–

यदि कम्पनी के पास लाभांश की घोषणा के समय पर्याप्त नकद उपलब्ध हो तो नकद लाभांश का भुगतान उचित रहेगा। उधार शर्तों पर विक्रय करने वाली सस्थाओं में तरलता स्थिति कमजोर होने पर नकद लाभांश न देकर बोनस अंशों का निगर्मन किया जाता है इसलिए कम्पनी की तरलता स्थिति भी लाभांश निर्णय को प्रभावित करती है।

3. पिछली लाभांश दरें (Past Dividend Rates) –

विगत वर्ष की तुलना में अचानक लाभांश दर एकदम बढ़ा दी जाए तो बाजार में सट्टे की प्रवृत्ति पनपेगी। यथासम्भव लाभांश दर स्थिर रखने का प्रयास कम्पनी प्रबन्ध द्वारा किया जाता है। इसलिए लाभांश घोषित करते समय संचालकों को विगत वर्षों की लाभांश दरों को आधार बनाना चाहिये।

4. अंशधारियों की अपेक्षाएँ (Expectations of Shareholders) –

अंशधारी जब अंश क्रय करते हैं तो वे लाभांश के बारे में कुछ अपेक्षाएं बना लेते हैं, उनका आदर संचालकों को करना चाहिए। वैधानिक दृष्टि से भी संचालक कम्पनी की आय को विभिन्न उद्देश्यों के लिए उपयोग में लाने के लिए स्वतंत्र होते हैं पर अंशधारियों के विचारों व आशाओं को वे भुला नहीं सकते, वरना भविष्य में अतिरिक्त पूंजी एकत्र करने में भारी कठिनाई आ सकती है।

5. स्थापित कम्पनी (Established Company) -

पुरानी कम्पनियां उदार लाभांश नीति अपना सकती हैं जबकि नव स्थापित कम्पनियों को अपनी आय का अधिकांश भाग विकास कार्यों में लगाना आवश्यक होता है। अतः वे अंशधारियों को कम दर से लाभांश देकर शेष आय का प्रतिधारण कर लिया करती है।

6. उच्चावचन (Fluctuations)-

उच्चावचनों अर्थात तेजी–मन्दी के साथ–साथ लाभांश नीति भी परिवर्तित हो जाती है । मन्दी के समय लाभ की मात्रा घट जाती है फलतः लाभांश दर में कमी करने के लिए कम्पनी बाध्य हो जाती है। अगर कम्पनी ने लाभांश समानीकरण कोष पर्याप्त मात्रा में रखा हो तो येन–केन प्रकारेण लाभांश की उचित दर बनाए रखने में सफल हो जाती हैं। तेजी के समय तो लाभ बढ़ने से कम्पनी जगत में लाभांश दर बढ़ाने की होड़ सी लग जाती है।

7. सरकारी नीति (Government Policy) -

सरकार की नीतियों में समय समय पर परिवर्तन होते रहते हैं जिससे कम्पनी के लाभों में कमी व वृद्धि होना अवश्यम्भावी हो जाता है। सरकार की औद्योगिक श्रम एवं प्रशुल्क नीतियों का लाभांश नीति पर प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए उदारीकरण के वर्तमान दौर में कम्पनी क्षेत्र के नियंत्रण व शुल्कों में कमी हो रही है। फलतः लाभ व लाभांश पर धनात्मक प्रभाव पड़ रहा है।

8. कर नीति (Tax Policy)-

कभी–कभी सरकार पूंजी निर्माण की गति तीव्र करने के उद्देश्य से लाभों को अधिकांश भाग को पुनर्विनियोजित करने वाली कम्पनियों को आय कर में सुविधाएं देती है। इसी प्रकार अधिक लाभांश वितरित करने वाली संस्थाओं पर अतिरिक्त कर लगाकर लाभों के पुनर्विनियोग को प्रोत्साहित किया जाता है। इसलिए लाभांश नीति पर कर नीति का प्रभाव पड़ता है।

9. सार्वजनिक मत (Universal Opinion)-

किसी भी लोकतांत्रिक देश में जनमत तथा सार्वजनिक प्रतिक्रियाओं का व्यापक प्रभाव लाभांश नीति पर पड़ता है। अधिक लाभांश देने वाली

कम्पनियाँ की जनता द्वारा आलोचना की जाती है। श्रमिक अपने वेतन और बोनस वृद्धि की और उपभोक्ता वस्तु मूल्य में कमी की मांग करने लगते हैं जिससे कम्पनी को कठोर लाभांश नीति अपनानी पड़ती है।

10. अन्य तत्व (Other Factors)-

लाभांश नीति को प्रभावित करने वाले कुछ अन्य तत्व अग्रलिखित हैं

(अ) व्यवसाय की प्रकृति–लाभांश नीति पर व्यवसाय की संरचना का असर होता है।

(ब) स्वामित्व संरचना–पूंजी संरचना में अंशपूंजी की मात्रा का लाभांश पर प्रभाव पड़ता है।

(स) अतिरिक्त पूंजी की आवश्यकता–बाजार से पूंजी पुनः एकत्र करना पिछली लाभांश नीति की अहम भूमिका होती है।

(द) पूंजी बाजार में पहुँच एवं

(य) प्रबन्धकीय दृष्टिकोण आदि।

1.5 सारांश (Summary)

लाभांश नीति अर्जनों का अंशधारियों को भुगतान एवं प्रतिधारित अर्जनों मे विभाजन निश्चित करती है।

अंशधारियों में लाभांश के रूप में अर्जन के वितरण के सम्बन्ध में प्रबन्ध द्वारा निर्मित नीति को ही लाभांश नीति कहते हैं। केवल एक विशेष सत्र में देय लाभांश से ही इसका सम्बन्ध नहीं होता है बल्कि कई वर्षों तक अपनाए जाने वाले क़दमों में भी यह सम्बन्ध रखता हैं ।

लाभांश नीति शब्द लाभांश नीति से मिलकर बना है। लाभांश से अभिप्राय कम्पनी के लाभों में से कम्पनी के अंशधारियों को मिलने वाले अंश से है। लाभांश नीति का आशय लाभ वितरित करने वाले सिद्धान्तों व योजनाओं से होता है। लाभांश नीति से आशय संचालकों के उस निर्णय से है जिसके द्वारा वे यह तय करते हैं कि लाभ के कितने भाग को लाभांश के

रूप में वितरित किया जाय और किस रूप में वितरित किया जाय।

1.6 शब्दावली

1. अंशपूजी (Share capital) – स्वामित्व पूंजी ही अंशपूजी है।
2. पूंजी बाजार (Capital Market) – दीर्घकालीन पूंजी प्राप्त करने वाला बाजार।
3. लोकमत (Public Opinion) – सार्वजनिक मत।
4. पुनर्विनियोजन (Plough Back) – लाभ को प्रतिधारित करना अर्थात लाभ को बाँटने की अपेक्षा कम्पनी में विनियोग करना।

1.7 स्व–परक प्रश्न

1. एक फर्म की लाभांश नीति को आकार देने वाले विविध तत्वों की समीक्षा कीजिए।
2. किसी फर्म के लाभांश निर्णय को प्रभावित करने वाले विविध तत्वों की व्याख्या कीजिए।
3. लाभांश नीति का अर्थ बताते हुए लाभांश नीति की व्याख्या कीजिए।

इकाई– 2 लाभांश के सिद्धान्त (Dividend Theories)

इकाई की संरचना

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 लाभांश के सिद्धान्त

2.4 सारांश

2.5 शब्दावली

2.6 स्व–परक प्रश्न

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि

- लाभांश के सिद्धान्तों को बता सकें।
- लाभांश के सिद्धान्तों के विभिन्न प्रावधानों को बता सकें।
- कम्पनी के लाभांश सिद्धान्तों को इस तरह प्रस्तुत कर सकें कि उनकी जानकारी से बैलेंस शीट को सही प्रारूप में प्रस्तुत किया जा सके।

2.2 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में लाभ वितरण के विभिन्न सिद्धान्तों का लाभांश निर्णय एवं प्रतिधारित लाभांश के निर्धारण में उनकी भूमिका से हैं। लाभांश निर्णय वित्तीय प्रबन्ध का महत्वपूर्ण क्षेत्र है जिसका सम्बन्ध विनियोग निर्णय और अर्थ प्रबन्धन निर्णय दोनों से है। सबसे महत्वपूर्ण बिन्दु अंश धारियों को लाभांश के रूप में दी जाने वाली लाभ की राशि का निर्धारण है। अंशधारियों की दृष्टि से नकद लाभांश का भुगतान स्वागत योग्य है लेकिन लाभांश नीति को रूप देते समय कम्पनी की आवश्यकता को भी ध्यान में रखना चाहिए। इस प्रकार लाभांश नीति के साथ–साथ प्रतिधारित करने की नीति भी प्रकाश में आ जाती है। लाभांश नीति व प्रतिधारण की नीति एक दूसरे के प्रतियोगी व द्वंद्वात्मक हैं। अधिक लाभांश का अर्थ कम प्रतिधारण और अधिक प्रतिधारण

का अर्थ कम लाभांश होता है। इन्हीं सभी बिन्दुओं की व्याख्या एवं लाभांश बांटने के सिद्धान्तों को इस इकाई में प्रस्तुत किया गया है।

2.3 लाभांश के सिद्धान्त (Theories of Dividend)

लाभांश नीति एवं फर्म के मूल्य के सम्बन्ध में दो प्रकार की विचारधारा प्रकट की गई हैं –

1. लाभांश की प्रासंगिक विचारधारा (Relevance Concept of Dividend)

तथा

2. लाभांश की अप्रासंगिक विचारधारा (Irrelevance Concept of Dividend)

प्रथम विचारधारा के समर्थक वॉल्टर तथा गोर्डन के अनुसार लाभांश नीति फर्म के मूल्यों को अधिकतम करने में बहुत महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक भूमिका निभाती है। इसके ठीक विपरीत अप्रासंगिक विचारधारा के समर्थक मोदीगिलयानी एवं मिलर के अनुसार, ''लाभांश नीति और फर्म के मूल्य दोनों स्वतंत्र चर हैं। इन दोनों में कोई सम्बन्ध नहीं होता है। लाभांश सम्बन्धी निर्णय की फर्म के मूल्य को अधिकतम करने में कोई भूमिका नहीं होती है। लाभांश निर्णय फर्म के मूल्यों के लिए पूर्णतया अप्रासंगिक होता है। यह विचारधारा मोदीगिलयानी एवं मिलर के नाम पर ही एम.एम. उपागम (M.M.Approach) से प्रसिद्ध है।

वित्तीय प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र लाभांश निर्णय है जिसका सम्बन्ध लाभ वितरित करने एवं प्रतिधारित किये जाने वाले दोनों निर्णयों से है। और महत्वपूर्ण बात अंशधारियों को लाभांश के रूप में भुगतान की जाने वाली राशि के निर्धारण से है। अधिक लाभांश का अर्थ कम प्रतिधारण और अधिक प्रतिधारण का अर्थ कम लाभांश होता है। नकद लाभांश के भुगतान के कारण कम्पनी के विकास के लिए आवश्यक प्रतिधारित राशि में कमी आ जाती हैं दूसरी तरफ सुदृढ़ लाभांश नीति के अनेक लाभ भी होते हैं।

लाभांश निर्णय व मूल्य अधिकीकरण का उद्देश्य (Dividend Decision and Value Maximisaiton Objective) –

विनियोग निर्णय व अर्थप्रबन्धन निर्णय की भांति लाभांश निणर्य का उद्देश्य भी कम्पनी के मूल्य (उसके अंशों के बाजार मूल्य के सन्दर्भ में) का अधिकीकरण है। चूँकि अंशधारी कम्पनी के स्वामी होते हैं अतः कम्पनी के मूल्य के अधिकीकरण से उनके हितों की भी पूर्ति हो जाती है। किन्तु विद्वानों द्वारा इस तथ्य पर एक राय नहीं दी गयी है कि लाभांश नीति से कम्पनी के अंशों का बाजार मूल्य अर्थात कम्पनी का मूल्य प्रभावित होता है या नहीं। इस सम्बन्ध में दो विचारधाराएं हैं जो आपस में मेल नहीं खाती हैं। एक विचारधारा है कि कम्पनी के मूल्य से लाभांश निर्णय की सम्बद्धता (relevance) है और दूसरी विचारधारा है कि कम्पनी के मूल्य से लाभांश निर्णय की कोई सम्बद्धता (No relevance) नहीं है।

(1) लाभांश निर्णय की प्रासगिकता का विचार (Relevance Concept of Dividend Decision) – कुछ विद्वानों जैसे जे.ई. वाल्टर (J.E.Walter), एम. जे.गोर्डोन (M.J. Gordon), इजरा सोलोमन (Ezra Solomon) तथा गिटमैन (Gitman) आदि ने माना है कि कम्पनी के मूल्य को अधिकतम करने में, लाभांश निर्णय का महत्वपूर्ण स्थान है। दूसरे शब्दों में लाभांश के रूप में वितरित की जाने वाली राशि व भावी साधन हेतु प्रतिधारित लाभ की मात्रा के अनुपात में परिवर्तन से अंशों के बाजार मूल्य में परिवर्तन हो जाता है। अर्थात Payment Ratio का प्रभाव अंशों के बाजार मूल्य पर पड़ना स्वाभाविक है। इस प्रकार कम्पनी की उदार या कठोर नीति से कम्पनी के मूल्य का बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। वाल्टर तथा गोर्डान ने इस सम्बन्ध में अलग– अलग माडल सूत्र रूप में प्रतिपादित किया है।

(अ) वाल्टर का मॉडल या सूत्र (Walter's Model Formula) – वाल्टर के अनुसार लाभांश नीति का मूल्यांकन कम्पनी के वित्तीय उद्देश्य अर्थात मूल्य का अधिकीकरण के सन्दर्भ में ही किया जाना चाहिए। उनका तर्क है कि कम्पनी के मूल्य को लाभांश नीति का चयन हमेशा प्रभावित करता है। विनियोगों की लाभदायकता द्वारा ही लाभांश नीति निर्धारित की जानी

चाहिए। दूसरे शब्दों में यदि कम्पनी के पास बहुतायत मात्रा में लाभदायक विनियोग के अवसर है। तो नकद लाभांश शून्य होना चाहिए, क्योंकि लाभ ही फण्ड का स्रोत होगा। दूसरी ओर सम्पूर्ण लाभ हित शत–प्रतिशत लाभांश के रूप में अंशधारियों को बाटा जाना चाहिए। जब कम्पनी के पास कोई विनियोग का लाभदायक अवसर न हो क्योंकि इस दशा में अर्थप्रबन्धन हेतु फण्ड की आवश्यकता ही नहीं होगी। इन दो चरम सीमाओं के मध्य की स्थिति में लाभांश भुगतान अनुपात शून्य और एक के बीच का कोई भी भाग हो सकता हैं ।

वाल्टर का मॉडल निम्न मान्यताओं पर आधारित है।

(1) विनियोगों का अर्थप्रबन्धन प्रतिधारित आय के माध्यम से ही होता है, कम्पनी द्वारा सभी ऋण या अंश पूंजी निर्गमित नहीं की जाती हैं।

(2) कम्पनी की प्रत्याय की आन्तरिक दर 'r' (अर्थात प्रतिधारित आय की आन्तरिक उत्पादकता) तथा पूंजी की लागत 'k' (अर्थात बाजार में प्रचलित पूंजीकरण की दर) स्थिर रहती है। फलस्वरूप अतिरिक्त विनियोग प्रस्तावों से व्यावसायिक जोखिम में परिवर्तन नहीं होता हैं

(3) कम्पनी की सम्पूर्ण आय प्रतिधारित करके व्यवसाय में ही पुनर्विनियोग की जाती हैं या लाभांश के रूप में वितरित की जाती है।

(4) मुख्य कारकों जैसे प्रारम्भिक प्रति अंश आय (E) तथा प्रति अंश लाभांश (D) में कोई परिवर्तन नहीं होता है। परन्तु परिणाम निर्धारण हेतु (E) तथा (D) में परिवर्तन लाया जा सकता है। लेकिन (E) और (D) का कोई भी प्रदत्त मूल्य एक प्रदत्त मूल्य के निर्धारण करने पर स्थिर ही मान लिया जाता है।

(5) कम्पनी की आयु लम्बी तथा असमाप्य होती हैं

(6) अंशों का बाजार मूल्य भविष्य में सम्भावित लाभांशों के वर्तमान मूल्य से प्रभावित होते हैं।

(7) व्यवसाय की प्रतिधारित आय भविष्य में प्राप्त होने वाले लाभांश को प्रभावित करती है और इसमें अंशों का बाजार मूल्य भी प्रभावित होता हैं।

वाल्टर का सूत्र निम्नवत है –

$$P = \frac{D + r/k(E - D)}{k}$$

P = प्रति अंश बाजार मूल्य (Market price per share)

D = प्रति अंश लाभांश (Dividend per share)

E = प्रति अंश आय (Earnings per share)

r = आन्तरिक प्रत्याय दर (Internal rate of return)

k = पूंजी की लागत (Cost of capital)

वाल्टर के मॉडल के अनुसार लाभांश भुगतान अनुपात प्रति अंश लाभांश (D) को परिवर्तित करके निर्धारित किया जाता है जिस पर प्रति अंश बाजार मूल्य अधिकतम हो जाता है। अनुकूलतम लाभांश भुगतान के सम्बन्ध में उनके विचार अग्रवत हैं–

(अ) जब आन्तरिक दर (r) बाजार पूंजीकरण दर (k) से अधिक हो (r > k) – यह विकासशील कम्पनियों की दशा में होता है जिनके पास अधिकाधिक लाभदायक विनियोग अवसर होते हैं ताकि विनियोग पर प्रत्याय पूंजी की लागत से अधिक हो। इन कम्पनियों को विनियोग हेतु सम्पूर्ण आय को प्रतिधारित करना चाहिये यदि प्रति अंश मूल्य को अधिकतम करना है। दूसरे शब्दों में जब r > k तो लाभांश भुगतान अनुपात शून्य होना चाहिए। अर्थात P का मूल्य अधिकतम होगा जब D= शून्य होगा। नियम के रूप में जैसे–जैसे भुगतान अनुपात गिरता जाता है सम अंशों का बाजार मूल्य बढ़ता जाता है। (P increases as payout ratio declines).

r > k

(ब) जब आन्तरिक दर (r) बाजार पूंजीकरण दर (k) के बराबर हो (r-k) – यह स्थिति सामान्य कम्पनियों की होती है, जिनके पास सामान्यतः असीमित लाभदायक विनियोग अवसर नहीं होते हैं। इसलिए एक बार लाभदायक विनियोग अवसर समाप्त हो जाते हैं तो विनियोगों पर प्रत्याय पूंजी (r) की लागत के (k) बराबर होती है। जैसे ही r=k होता है, कम्पनी की लाभांश

नीति अंशों के बाजार मूल्य को प्रभावित नहीं करती हैं अर्थात अंशों का बाजार मूल्य भुगतान अनुपात के प्रति संवेदनशील (insensitive) हो जाता है। इस प्रकार जब r=k होता है तो कोई लाभांश नीति अनुकूलतम नहीं होती है। एक लाभांश नीति उतनी ही अच्छी होगी जितनी कि दूसरी। नियम के रूप में सम अंशों का बाजार मूल्य भुगतान अनुपात से सम्बद्ध नहीं होता है। (P is insensitive to payout ratio).

$$r = k$$

(स) जब आन्तरिक दर (r) बाजार पूंजीकरण दर (k) से कम हो (r<k)- यह स्थिति विकासहीन या अवमुखी कम्पनियों की होती है जिनके पास लाभ के पुनर्विनियोग हेतु लाभदायक अवसर नहीं होते हैं या नाममात्र के होते हैं या ऐसे होते हैं कि उन पर (r) प्रत्याय पूंजी की लागत (k) से कम होती है । इसलिए लाभ का प्रतिधारण अलाभकार होता है। ऐसी स्थिति में कम्पनी को सम्पूर्ण लाभ को लाभांश के रूप में वितरित कर देना चाहिए। व्यवसाय में पुनर्विनियोग हेतु प्रतिधारण नहीं करना चाहिएं इससे अंशधारी कहीं और विनियोग करके अधिक प्रत्याय कमा सकते हैं। इस प्रकार जब r < k तो P का मूल्य अधिकतम होगा जब D=100% अर्थात E=D हो। नियम के रूप में जैसे–जैसे भुगतान अनुपात बढ़ता जाता है सम अंशों का बाजार मूल्य भी बढ़ता जाता है। (P increases as payout increases).

$$r < k$$

Illustration - 1

एक कम्पनी की प्रति अंश आय 20 रू. और बाजार पूंजीकरण की दर 20 प्रतिशत है। कम्पनी के समक्ष 60 प्रतिशत, 80 प्रतिशत तथा 100 प्रतिशतं लाभांश भुगतान अपनाने का विकल्प है। वाल्टर सूत्र का प्रयोग करके अंशों के बाजार मूल्य की गणना कीजिए, यदि आन्तरिक विनियोग पर प्रत्याय की दर (अ) 25 प्रतिशत (ब) 20 प्रतिशत तथा (स) 10 प्रतिशत हो।

Earning per share of a company is Rs. 20 and market capitalisation rate is 20%. The company has before it an option of

adopting a payment ratio of 60%, 80% and 100%. Using Walter's formula of dividend payout ratio, compute the market value of the Company's share, if the rate of return on internal investment is (a) 25%, (b) 20% and (c) 10%.

Solution-

Payout ratios	(a) r=25%; r>k	(b) r=20%, r=k	(c) r=10%; r<k
	$\frac{r}{k}=\frac{.25}{.20}=1.25$	$\frac{r}{k}=\frac{.20}{.20}=1$	$\frac{r}{k}=\frac{.10}{.20}=.5$
(a) payout 60%	$P=\frac{6+1.25(20-6)}{.20}$	$P=\frac{6+1(20-6)}{.20}$	$P=\frac{6+.5(20-6)}{.20}$
D=6	Rs.117.5	Rs.100	Rs. 65
(b) payout 80%	$P=\frac{8+1.25(20-8)}{.20}$	$P=\frac{8+1(20-8)}{20}$	$P=\frac{8+.5(20-8)}{.20}$
D=8	Rs.115	Rs. 100	Rs. 70
(c)Payout100%	$P=\frac{20+1.25(20-20)}{.20}$	$P=\frac{20+1(20-20)}{.20}$	$P=\frac{20+.5(20-20)}{.20}$
D=20	Rs. 100	Rs. 100	Rs. 100

उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि वाल्टर सूत्र हमें निम्न बिन्दु समझाता है कि,

(अ) जब r>k हो तो सम्पूर्ण आय का पुनर्विनियोजन होना चाहिए।

(ब) जब r<k हो तो सम्पूर्ण लाभ का लाभांश रूप में वितरण होना चाहिए।

(स) जब r=k हो तो तटस्थ रहना चाहिए।

वाल्टर मॉडल की आलोचना (Criticisms of Walter's Model)-

वॉल्टर का मॉडल एक श्रेष्ठ सैद्धान्तिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है परन्तु इसकी अंतर्निहित मान्यताएं ही आलोचना का कारण बनती है जो निम्न प्रकार से हैं:

1. बाह्य वित्तीयन नहीं (No External Financing)–

प्रो. वाल्टर की प्रमुख मान्यता है कि फर्म का वित्तीयन केवल प्रतिधारित आय से किया जाता है जो व्यवहार में संभव नहीं है।

2. **स्थिर आंतरिक प्रत्याय दर (Constant Internal rate of Return)–**

मॉडल में यह मान लिया गया है कि आंतरिक प्रत्याय दर स्थिर रहती है जबकि व्यवहार में विनियोगों में वृद्धि के साथ–साथ प्रत्याय दर घटती जाती है।

3. **स्थिर पूंजी की लागत (Constant cost of capital) –**

पूंजी लागत की स्थिरता की मान्यता भी सही नहीं है। वास्तव में संस्था की जोखिम के साथ परिवर्तित होती रहती है। विनियोक्ता का व्यवहार सदैव विवेकपूर्ण होता है और वह जोखिम से बचना चाहता है। वह वर्तमान लाभांश को सम्भावित लाभांश की तुलना में अधिक प्राथमिकता देता है। एक सामान्य अनुभव की बात है–'नौ नकद न तेरह उधार' **(A bird in hand is better than two in buss, A breakfast of today is better than a dinner of tomorrow)**। विनियोक्ता भविष्य के लाभांश की तुलना में वर्तमान के लाभांश को अधिक चाहता है। अतः जो फर्म वर्तमान मे कम लाभांश देकर आय का प्रतिधारण करती है उसके अंशों के लिए विनियोक्ता कम मूल्य देने के लिए तत्पर होता है। अर्थात कम लाभांश का भुगतान फर्म के अंशों के बाजार मूल्य में कमी लाता है।

(ब) गॉर्डन मॉडल (Gordon Model) – गॉर्डन का भी मत है कि लाभांश फर्म के मूल्य से सम्बद्ध है और लाभांश नीति फर्म के मूल्य को प्रभावित करती है।

गॉर्डन का मॉडल निम्न मान्यताओं पर आधारित है–

1. फर्म द्वारा केवल समता पूंजी का ही उपयोग किया जाता है।
2. आन्तरिक प्रत्याय दर (r) और पूंजी की लागत (k) निश्चित व स्थिर है।
3 फर्म का जीवन काल सतत रहेगा।
4. फर्म की आय पर कोई कर नहीं लगाया जाता है।
5. प्रतिधारित अनुपात स्थायी रहता है। इस प्रकार विकास दर (Growth rate) अर्थात $g = br$ भी स्थिर रहती है।

6. पूंजी की लागत विकास दर से अधिक है अर्थात

$$k > br = g$$

गोर्डोन के अनुसार एक अंश का बाजार मूल्य लाभांश के भावी असीमित बहाव के वर्तमान मूल्य से बराबर होता है। अतः

$$P = \frac{D1}{(1+k)} + \frac{D2}{(1+k)^2} + \dots\dots\dots \frac{Dn}{(1+k)}$$

$$E = \frac{D1}{(1+k)^1}$$

$$t = 1$$

गोर्डोन मॉडल का एक सरलीकृत प्रस्तुतीकरण निम्न है –

$$P = \frac{E(1-b)}{k - br}$$

P = अंशों का मूल्य (Price of shares)

E = प्रति अंश आय (Income per share)

b = प्रतिधारित अनुपात (retaining ratio)

br = g विनियोग दर पर प्रत्याय में विकास दर (Return on investment rate)

r = विनियोग दर पर प्रत्याय दर (Return rate on investment rate)

k = पूंजी की लागत (Cost of capital)

गोर्डोन मॉडल के अनुसार फर्म की लाभांश नीति लाभदायक विनियोग अवसरों की उपलब्धि पर तथा पूंजी की लागत (k) एवं आन्तरिक प्रत्याय दर (r) के सम्बन्धों पर निर्भर करती है। स्थिति को निम्न रूप से समझा जा सकता है।

(अ) विकासशील फर्मं अर्थात r>k प्रति अंश मूल्य (p) प्रतिधारित अनुपात (b) में वृद्धि के साथ बढ़ता है अर्थात लाभांश भुगतान अनुपात में कमी आने पर बाजार मूल्य बढ़ता है अन्य शब्दों में, जब r>k हो तो फर्म को कम लाभांश वितरित करना चाहिए और आय का अधिक भाग प्रतिधारित करना चाहिए। जिससे फर्म के अंशों का बाजार मूल्य अधिक हो।

(ब) सामान्य फर्में अर्थात r=k ऐसी स्थिति में प्रति अंश मूल्य कम्पनी की लाभांश नीति से प्रभावित नहीं होती है। यह कहा जा सकता है कि प्रतियोगी दशाओं में यह तुलना योग्य अंशों पर प्राप्य प्रत्याय दर (r) के बराबर होनी चाहिए ताकि लाभांश के रूप में वितरित फण्ड को बाजार में उसी दर पर विनियोजित किया जा सके जो कम्पनी की आन्तरिक प्रत्याय दर के बराबर हो। अर्थात r=k फलस्वरूप अंशधारी फर्म की लाभांश नीति में किसी भी परिवर्तन से न तो लाभ प्राप्त कर सकेंगे और न ही हानि उठा सकेंगे ओर इस प्रकार अंश का बाजार मूल्य अपरिवर्तित रहेगा। फलस्वरूप एक लाभांश नीति उतनी ही अच्छी होगी जितनी कि दूसरी।

(स) विकासहीन या अवमुख फर्में अर्थात r<k प्रति अंश मूल्य (P) प्रतिध ारित अनुपात में वृद्धि के साथ घटता है अर्थात लाभांश भुगतान में वृद्धि होने पर बाजार मूल्य बढ़ता है। इस प्रकार जब r<k हो तो आय का प्रतिधारण अंशधारियों की दृष्टि में अनावश्यक होता है। प्रतिधारित प्रत्येक रूपया अंशध ारियों को उपलब्ध उस फण्ड में कमी कर देता है जिसे वे कहीं और ऊंचे दर पर विनियोग कर सकेंगे और कम्पनी के अंशों के मूल्य को और कम कर देंगें।

Illustration - 2

तीन फर्मों के सम्बन्ध में विस्तृत सूचना निम्नानुसार दी गई है –

	एक्स लि.	वाय लि.	जेड लि.
पूंजी की लागत (k)	12%	12%	12%
प्रति अंश आय (E)	10रू.	10रू.	10रू.
आन्तरिक प्रत्याय दर (r)	15%	12%	9%

गॉर्डन के सूत्र का प्रयोग करते हुए प्रत्यंक कम्पनी का बाजार मूल्य ज्ञात कीजिए जब भुगतान अनुपात (अ) 30 प्रतिशत (ब) 40 प्रतिशत (स) 60 प्रतिशत (द) 100 प्रतिशत हो । परिणामों पर टिप्पणी दीजिए।

The details regarding three firms are given below:

Cost of capital (k)	12%	12%	12%
Earning per share (E)	Rs.10	Rs.10	Rs.10
Internal rate of return on investment(r)	15%	12%	9%

Find out market price of an equity share of each of these firms applying Gordon's formula when dividend payout ratio is (a) 30% (b) 40% (c) 60% and (d) 100% comment on the conditions drawn.

Solution-

Gordon's Formula $p = \frac{E(1-b)}{k-br}$

Retention ratio = (1-payout ratio) in case (a) 1-30% = 70%; (b) 1-40%= 60%; (c) 1-60% =40% and (d) 1-100%=0%.

Retention Ratio (b)	X limited	Y limited	Z limited
(a) b=70%	br-(bxr)or 7x.15=.105 $P=\frac{10(1-7)}{12-105}$ $=\frac{3}{015}$ $=Rs.200$	br=.7x.12=.084 $P=\frac{10(1-.7)}{.12-.084}$ $=\frac{3}{036}$ $=Rs.83$	br=.7x.09=.063 $P=\frac{10(1-.7)}{.12-.063}$ $=\frac{3}{.057}$ $Rs.53$
(b) b=60%	$br-(bxr)or.6\times.15=.09$ $P=\frac{10(1-.6)}{.12-.09}$ $=\frac{4}{.03}$ $Rs.133$	$br=.6x.12=.072$ $P=\frac{10(1-.6)}{.12-.072}$ $=\frac{4}{.048}$ $Rs.83$	$br=.6x.09=.054$ $P=\frac{10(1-.6)}{.12-.054}$ $=\frac{4}{.066}$ $Rs.61$
(c) b=40%	$br=(bxr)or.4x.15=.06$ $P=\frac{10(1-.4)}{.12-.06}$ $=\frac{6}{.06}$ $Rs.100$	$br=.4x.12=.048$ $P=\frac{10(1-.4)}{.12-.048}$ $=\frac{6}{.072}$ $Rs.83.$	$br=.4x.09=.036$ $P=\frac{10(1-.4)}{.12-.036}$ $=\frac{6}{.084}$ $Rs.71$
(d) b=0%	$br=.(bxr)Or\,0x.15=0$ $P=\frac{10(1-0)}{.12-0}$ $=\frac{10}{.12}$ $Rs.83$	$br=0x.12=0$ $P=\frac{10(1-0)}{.12-0}$ $=\frac{10}{.12}$ $Rs.83$	$br=0x.09=0$ $P=\frac{10(1-0)}{.12-0}$ $=\frac{10}{.12}$ $Rs.83$

उपरोक्त आधार पर निष्कर्ष निकलता है। अर्थात

(अ) जब r=k हो, तो लाभांश नीति अंशों के बाजार मूल्य से सम्बद्ध नहीं है।

विकासशील कम्पनी के अंश का बाजार मूल्य तभी अधिक होता है

जब प्रतिधारण अनुपात भी अधिक होता है।

(ब) जब $r<k$ हो तो सम्पूर्ण लाभ के रूप में वितरित कर देना चाहिए।

अविकासशील कम्पनी के अंश का बाजार मूल्य तब अधिक होता है जब लाभांश भुगतान अनुपात अधिक एवं प्रतिधारण अनुपात कम होता है।

(स) जब $r>k$ हो तो लाभ का प्रतिधारण उस समय तक करते रहना चाहिए जब तक $b>k/r$ न हो जाएं।

वाय लिमिटेड एक सामान्य कम्पनी है। अतः इसके अंश के बाजार मूल्य पर भुगतान अनुपात व प्रतिधारण अनुपात में परिवर्तन का तब तक कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा जब तक इसके विनियोगों की आंतरिक प्रत्याय दर (r) पूंजी की लागत (k) के बराबर रहती है।

(2) लाभांश नीति की अप्रासंगिकता का विचार (**Irrelevance Concept of Dividend Policy/Decision**) – कुछ विद्वानों का मत है कि,

फर्म के मूल्य निर्धारण में लाभांश की प्रासंगिकता नहीं है। (**Dividend is not relevant in determining the value of the firm**) लाभांश नीति और फर्म का मूल्य दोनों स्वतंत्र चर हैं। मोदीग्लियानी व मिलर मॉडल जिसे **M.M.** मॉडल के नाम से जाना जाता है। वस्तुतः यह मान्यता है कि, लाभांश निर्णयों का अंश के मूल्य एवं फर्म के मूल्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इसलिए इस सिद्धान्त को लाभांश का अप्रासंगिक मॉडल भी कहा जाता है। अन्य शब्दों में लाभांश नीति की कम्पनी के मूल्य को अधिकतम करने में कोई भूमिका नहीं है। कम्पनी के मूल्य को विनियोग नीति प्रभावित करती है न कि लाभांश नीति। इस विचारधारा के प्रमुख समर्थक मोदीग्लियानी व मिलर हैं इसलिए इस विचारधारा को **M.M. Approach** या **M.M. Theory** (सिद्धान्त) भी कहते हैं।

मोदीग्लियानी व मिलर का सिंद्धान्त (**M.M. Theory**) – इस सिद्धान्त का मूल तत्व यही है कि एक फर्म की लाभांश नीति अप्रासंगिक है और यह अंशधारियों के धन को प्रभावित नहीं करती है। उनका मत है कि, अंशधारी लाभांश या पूंजीगत लाभ के रूप में प्राप्त होने वाले प्रत्याय के प्रति तटस्थ रहते हैं। निश्चितता की दशा में और कर लाभ (**Tax benefit**) के अभाव में इस

बात से कोई फर्क नहीं पड़ता है कि फर्म आय को प्रतिधारित कर लेती है या लाभांश के रूप में बांट देती है। फर्म का मूल्य उसकी आय पर निर्भर करती है और आय कम्पनी की विनियोग नीति से प्रभावित होती है।

इस सिद्धान्त की कुछ मान्यताए हैं जो निम्न प्रकार हैं –

अ) पूंजी बाजार पूर्ण है। जिसमें सभी विनियोक्ताओं का व्यवहार विवेकपूर्ण है।

ब) कम्पनी के सम्बन्ध में सूचनाएं सभी को निःशुल्क उपलब्ध है।

स) लेन--देन तुरन्त और बिना लागत के होते हैं।

द) प्रतिभूतियों असीमित रूप में विभाज्य हैं।

य) पूंजी निर्गमन की लागत शून्यहै।

र) लाभांश आय तथा पूंजीगत लाभ पर कर की दर में कोई अन्तर विद्यमान नहीं है अर्थात कर लाभ उपलब्ध नहीं है।

ल) संस्था की विनियोग नीति, स्थिर एवं सुनिश्चित है।

व) कोई जोखिम विद्यमान नहीं है अर्थात विनियोक्ता भावी कीमत आय व लाभांश का पूर्वानुमान लगाने में सक्षम होगा।

श) व्यक्तिगत एवं निगम कर अनुपस्थित होते हैं।

तर्क (Arguments):

मोदीग्लियानी एवं मिलर का मत है कि लाभांश भुगतान प्राप्त करने से अंशधारियों के धन में जितनी वृद्धि होती है उतना ही फर्म द्वारा वित्त के बाह्य स्रोतों से पूंजी प्राप्त करने में कमी हो जाती है। इस प्रकार दोनों लेन–देन एक दूसरे की क्षतिपूर्ति कर देते हैं। लाभांश देने वाली कम्पनी बाह्य स्रोतों से ही वित्त प्राप्त करेंगी। जब लाभांश का भुगतान किया जाता है, तो अंशों का अन्तिम (Terminal) मूल्य गिरता है। जबकि अंशधारियों के कुल ध ान में कोई परिवर्तन नहीं होता है। एम.एम. सिद्धान्त के अनुसार किसी निर्दिष्ट अवधि के प्रारम्भ में अंशों के बाजार मूल्य (Po) को अवधि के अन्त में भुगतान किए गये लाभांश के वर्तमान मूल्य व अंशों के अन्तिम बाजार मूल्य के योग के बराबर माना जा सकता है। मोदीग्लियानी व मिलर ने यह भी स्वीकार

किया है कि यदि फण्ड की उगाही अंशों के अलावा ऋणों से भी की जाए तो भी लाभांश की असम्बद्धता के विचार पर कोई प्रभाव नहीं होगा।

इनके अनुसार अनिश्चितता की दशा में भी लाभांश नीति महत्वहीन है। दो समान व्यावसायिक जोखिम समान भावी आय की सम्भावनाएं तथा समान विनियोग वाली कम्पनियों का बाजार मूल्य भी अवश्य समान होगा, यदि बाजार में प्रत्येक विनियोक्ता का व्यवहार विवेकपूर्ण हो। ऐसी स्थिति में भावी लाभांश नीति और वर्तमान लाभांश नीति में अन्तर दो कम्पनियों के बाजार मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकता, क्योंकि भावी लाभांश का वर्तमान मूल्य, वर्तमान अन्तिम मूल्य के समान है।

वास्तव में लाभांश एक उदासीन अवशेष (Passive Residual) निर्णय है। सूत्र रूप में एम.एम. मॉड़ल को निम्न तरह से समझाया जा सकता है।

$$P_0 = \frac{D_1 + P_1}{1 + k}$$

P_0 = वर्ष के प्रारम्भ में अंशों का बाजार मूल्य,

P_1= अवधि के अंत में अंशों का बाजार मूल्य,

D_1= वर्ष के अन्त में प्राप्य लाभांश

k = बाजार पूंजीकरण दर या समता पूंजी की लागत ।

मोदीग्लियानी एवं मिलर मॉडल की आलोचनाए (Criticism of Modigliani-Miller Model)

इस मॉडल की आलोचनाएं प्रमुख्तः इसकी मनगढंत मान्यताओं के कारण की गयी है जो निम्न प्रकार से है।

1. **कर विभेदक**–इस मॉडल की व्याख्या में करों की अनुपस्थिति वास्तविकता से परे है। लाभांश तथा पूंजीगत लाभ दोनों के लिए आयकर की भिन्न दरें लागू होती हैं।

2. **निर्गमन लागत**– नए अंशों के निर्गमन पर अभिगोपन कमीशन व दलाली पर व्यय करना पड़ता है। अतः बाह्य वित्तीयन, आंतरिक वित्तीयन से मंहगा पड़ता है, जबकि इस मॉडल में निर्गमन लागत को शून्य मान लिया

गया है।

3. **विविधीकरण** – विनियोक्ता अपने विनियोग में विविधीकरण (Diversification) पसन्द करते हैं। अतः वे आय का लाभांश के रूप में वितरण पसन्द करते हैं ताकि प्राप्त लाभांश का विनियोजन दूसरी प्रतिभूतियों में कर सकें।

4. **अनिश्चितता** – व्यवहार में अनिश्चितता की स्थिति विद्यमान रहती है। और भविष्य के बारे में सही पूर्वानुमान सम्भव नहीं हो पाता है।

5. **पूर्ण बाजार**– व्यावहारिक पूंजी बाजार अपूर्ण होता है जिसमें समस्त सूचनाएं तुरंत निःशुल्क प्राप्त नहीं हो पाती हैं ।

6. **लाभांश का भुगतान** – लाभांश भुगतान अनुपात में वृद्धि संस्था के संभावित अर्जन में वृद्धि का संकेत देती है और इससे अंशों का मूल्य बढ़ता है। जबकि इस मॉडल में लाभांश को उदासीन अवशेष मान लिया गया है।

Illustration-3

एक्स कम्पनी के वर्तमान में 50 रू. पर बिकने वाले 5,000 अंश बकाया हैं। वर्तमान वर्ष के अन्त में कम्पनी 5 रू. प्रति अंश लाभांश भुगतान करने का विचार कर रही है। इस प्रकार कम्पनी के लिए पूंजीकरण दर 9 प्रतिशत है।

वर्ष के अन्त में अंश का मूल्य क्या होगा यदि (1) लाभांश घोषित नहीं किया जाता है और (2) लाभांश घोषित किया जाता है।

व्याख्या कीजिए कि चाहे लाभांश का भुगतान करें या न करें एम. एम. मॉड़ल के अनुसार अंशधारियों का धन एक समान रहता है।

X Company at present outstanding 5,000 shares selling at Rs. 50. The company is thinking of declaring a dividend of Rs. 5 per share at the end of current year. The capitalisation rate for this type of company is 9%.

What will be the price of the share at the end of the year if (i) no dividend is declared and (ii) a dividend is declared.

Explain that as per M.M. approach the wealth of Shareholders

is the same whether dividend is paid or not.

Solution:

(1) जब लाभांश घोषित न किया जाए,

दिया है P_0 = Rs. 50, D_1 = Rs. 0, k = 9%

$$P_1 = P_0 = (1 + k) - D_1$$

$$= Rs.\ 50\ (1+.09) - 0 = Rs.\ 109$$

(2) जब लाभांश घोषित किया जाए,

दिया है, P_0 = Rs. 50, D_1 = Rs. 5, k = 9%

$$P_1 = P_0 = (1 + k) - D_1$$

$$= Rs.\ 50\ (1+.09) - 5$$

$$= Rs.\ 109\text{-}5 = Rs.\ 104$$

उपरोक्त गणना से स्पष्ट है कि जब लाभांश घोषित नहीं किया जाए तो अंशधारी चालू वर्ष के अंत में अंशों के मूल्य के रूप में 109 रू. पाएंगे, जब लाभाश घोषित किया जाए तो अंशधारी अंशों के मूल्य के रूप में 104 रू. तथा लाभांश के रूप में 5 रू. प्रति अंश पाएंगे अर्थात कुल मिलाकर अब भी 109 रू. ही पाएंगे। इस प्रकार अंशधारियों का धन एक समान ही रहेगा चाहे लाभांश घोषित किया जाए या घोषित न किया जाए।

Illustration-4

कम्पनी 4 रू. प्रति अंश अर्जित करती है इसका पूंजीकरण 9 प्रतिशत पर हुआ है। और विनियोग पर प्रत्याय दर 15 प्रतिशत है।

वाल्टर मॉडल के अनुसार 50 प्रतिशत लाभांश अनुपात पर प्रति अंश मूल्य क्या होना चाहिए। वाल्टर के अनुसार क्या यह एक अनुकूलतम भुगतान अनुपात है।

Company earns Rs. 4 per share; it is capitalised at a rate of 9% and has a rate of return on investment of 15%.

According to Walter's model, what should be the price per share

at 50% dividend payout ratio? Is this the optimum payout ratio according to Walter?

Solution:

Walter's formula : $p = \frac{D + r/k(E-D)}{k}$

Here given r = .15,

k = .09,

E = rs. 4,

D = 50% Rs. 4 = Rs. 2.

$$p = \frac{2 + .15/.09(4-2)}{.09}$$
$$= \frac{2 + 1.67 x 2}{.09}$$
$$= \frac{2 + 3.33}{.09} = \frac{5.33}{.09} = Rs. 59.22$$

यह अनुकूलतम लाभांश भुगतान नहीं है, क्योंकि वाल्टर r>k न की स्थिति में फर्म के मूल्य का अधिकीकरण हेतु शून्य लाभांश प्रतिशत का सुझाव दिया है। शून्य प्रतिशत पर प्रति अंश मूल्य

$$P = \frac{0.15/.09(4-0)}{09}$$
$$= \frac{6.67}{.09} = Rs. 74.07$$

होगा, जो अधिकतम होगा।

Illustration-5

रूचि सोया लि. की सम अंश पूंजी की लागत 12 प्रतिशत और फर्म का चालू बाजार मूल्य 10,00,000 रू. (10 रू. प्रति अंश की दर से) प्रथम वर्ष के अन्त में नये विनियोग (I), अर्जन, (E) तथा लाभांश (D) का मूल्य क्रमश: 3,40,000 रू. 2,75,000 रू. तथा 2,50 रू. प्रति अंश मानते हुए दर्शाइये कि एम.एम. मान्यता के अन्तर्गत लाभांश का भुगतान फर्म के मूल्य को प्रभावित नहीं करता है।

Golden View Ltd. has a cost of equity capital of 12% , the current market value of the firm (V) is Rs. 10,000,00 @ Rs. 10 per share) . Assume values for new investment (I), earnings (E) and dividends (D) at the end of 1st year as Rs. 3,40,000; Rs. 2,75,000 and Rs. 2.50 per share respectively, show under M.M. assumptions, the payment of the D does not affect the value of the firm.

Solution:

सूत्र है $P_1 = P_0 = (1+k) - D_1$

दिया है $P_1 = 10, D_1 = 5, k = 12\%$ or .12

जब लाभांश का भुगतान न किया जाए,

$P_1 = 10 = (1+ .12) = 0$

$= 10 \times 1.12$

$= 11.20$

नए विनियोग हेतु वित्त की राशि = Rs. 3,40,000-Rs.2,75,000= Rs.65,000

नए अंशों की संख्या $= \frac{65,000}{11.20} = 5,804$

फर्म का मूल्य (V) $= \{(n+n)P_1 - I + E\}/(1+k)$

$$V = \frac{\{1,00,000 + 65,000/11.20\} \times 11.20 - 3,40,000 + 2,75,000}{1.12}$$

$$= \frac{11,20,000 + 65000 - 3,40,000 + 2,75,000}{1.12}$$

$$= \frac{11,20,000}{1.12} = Rs.10,00,000$$

जब लाभांश का भुगतान किया जाए :

$P_1 = 10(1+.12)-2.5$

$= 11.20 - 2.5 =$ Rs. 8.70

नए विनियोग हेतु वित्त की आवश्कयता = 3,40,000 - 25,000 = Rs. 3,15,000

लाभांश के बाद की राशि (2,75,000-2,50,000)=25,000 रू. होगी।

नये अंशों की संख्या $= \frac{3,15,000}{8.70} = Rs.36,207$

यहाँ पर फर्म का मूल्य $V = \frac{\{1,00,000 + 3,15,000/8.70\} x8.70 - = 3,40,000 + 2,75,000}{1.12}$

$$V = \frac{8,70,000 + 3,15,000 - 65,000}{1.12}$$

$$= \frac{11,20,000}{1.12} = Rs.10,00,000$$

अतः फर्म का मूल्य दोनों परिस्थितियों में एक समान है। इस प्रकार निष्कर्ष निकलता है कि लाभांश भुगतान का फर्म के मूल्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

Illustration-6

आप प्रदत्त निम्न सूचना से वाल्टर मॉडल के अनुसार एक फर्म के सम अंशों का सैद्धान्तिक बाजार मूल्य निर्धारित कीजिए।

From the following information supplied to you, determine the theoretical market value of equity shares of a firm as per Walter's model:

Earnings of the company	Rs. 30 lakh
Dividends paid	Rs. 10 lakh
No.of shares outstanding	2,00,000
Price earning ratio	10
Rate of return of investment	12%

क्या आप फर्म की चालू लाभांश नीति से सन्तुष्ट है? यदि नहीं, तो इस मामले में अनुकूलतम लाभांश भुगतान क्या होना चाहिए।

Are you satisfied with the current dividend policy of the firm? If not, what should be the optimal dividend payout ratio in this case?

Solution-

As per Walter's model :

$$P = \frac{D + r/k(E-D)}{k}$$

$$= \frac{5 + .12/.10(15-5)}{.10}$$

$$= \frac{5+.12}{.10} = \frac{17}{.10} = Rs.170$$

इस प्रकार अंशों का सैद्धान्तिक बाजार मूल्य 170 रू. होगा।

$$E = \frac{30,00,000}{2,00,000} = 15, \quad D = \frac{10,00,000}{2,00,000} = 5$$

k is the reciprocal of P/E ratio $= \frac{1}{10} = .10$

फर्म की चालू लाभांश नीति संतोषजनक नहीं है। अनुकूलतम लाभांश भुगतान अनुपात शून्य होना चाहिए तभी बाजार मूल्य अधिकतम होगा।

2.4 सारांश

लाभांश के विभिन्न सिद्धान्तों का अध्ययन करने के पश्चात निष्कर्ष स्वरूप स्पष्ट है कि सिद्धान्त अपनी–अपनी मान्यताओं पर आधारित है। जबकि सामान्य आर्थिक स्थिति में यह निश्चित नही है कि अंशों का बाजार मूल्य एवं लाभांश भुगतान अनुपात उक्त सिद्धान्तों के आधार पर प्रभावित हो। अर्थात सम–सामयिक परिस्थितियाँ आर्थिक बाजार पर बदलती रहती हैं।

2.5 शब्दावली

1. **स्थिर पूंजी (Constant Capital)** – स्थायी पूंजी जिसमें परिवर्तन नहीं होता है।

2. **प्रतिधारित अनुपात (Retention Ratio)** – लाभ का वह भाग जो पुनर्विनियोग किया जाता है।

3. **भुगतान अनुपात (Payout Ratio)** – लाभ का वह भाग जो अंशध ारियों में वितरित किया जाता है।

2.6 स्व–परक प्रश्न

1. "लाभांश नीति के वाल्टर एवं गार्डन मॉडलों में कोई मौलिक अंतर नहीं है। दोनों समान मान्यताओं पर आधारित है।" व्याख्या कीजिए।

2. वाल्टर के मॉडल में फर्म की लाभांश नीति आंतरिक प्रत्याय दर और पूंजी की लागत के सम्बन्ध पर निर्भर करती है। इस मत की क्या कमियाँ है।?

3. लाभांश नीति के मोदीग्लियानी एवं मिलर मॉडल की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

इकाई – 3 लाभांश नीतियों के प्रकार/स्वरूप (Forms of Dividend Policies)

इकाई की संरचना

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 लाभांश नीतियों के प्रकार/स्वरूप

3.4 सारांश

3.5 शब्दावली

3.6 स्व–परक प्रश्न

3.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त इस योग्य हो सकेंगे कि –

– कम्पनी की लाभांश नीतियों को बता सकें,

– लाभांश नीतियों के प्रकारों के विविध प्रावधान बता सकें,

– लाभांश नीतियों के प्रकारों एवं स्वरूपों को इस प्रकार प्रस्तुत कर सकें कि कम्पनी की बैलेंस शीट की स्थिति सही रूप में प्रस्तुत हो सके।,

3.2 प्रस्तावना

किसी कम्पनी के लिए लेखा वर्ष के अंत में अपनी व्यावसायिक क्रियाओं के परिणामस्वरूप अंशधारियों को लाभांश के रूप में लाभ का एक हिस्सा वितरित किया जाता है । कम्पनी को लाभांश वितरण के लिए विभिन्न प्रकार की लाभांश नीतिया अपनानी पड़ती है। जिनका अध्ययन इस इकाई में प्रस्तुत किया गया है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में लाभांश नीतियां कम्पनी की रणनीति का महत्वपूर्ण हिस्सा है। जिसके आधार पर कम्पनी बाजार में अपनी आर्थिक एवं वित्तीय स्थिति की मजबूती को अंशधारियों के सामने प्रस्तुत करती है। व्यवहार में एक कम्पनी कई लाभांश नीतियों में से किसी एक को अपनाती है। प्रबन्ध द्वारा जो भी नीति अपनाई जाती है वह विभिन्न कारणों

से प्रभावित होती है।

3.3 लाभांश नीतियों के प्रकार / स्वरूप (Forms of Dividend Policies).

कम्पनी बाजार में प्रचलित विभिन्न लाभांश नीतियों में से किसी एक को अपनाने का प्रयास करती है। प्रबन्ध द्वारा जो भी नीति अपनाई जाती है उसके विभिन्न कारण होते हैं। सबसे अधिक दो नीतियाँ प्रचलित हैं जो निम्नानुसार बताई जा रही हैः–

(अ) vk; dk ,d fuf'pr ifr'kr **(Constant Percentage of Earnings)** – कम्पनी द्वारा अर्जन का एक निश्चित प्रतिशत लाभांश के रूप में वितरित करना, लाभांश नीति के रूप में अपनाया जा सकता है। इस नीति का लाभ यह है कि यह लाभांश वितरण में चालू आय को ध्यान में रखती है। इसलिए जब आय बढ़ती रहती है, तो अंशधारी अधिक लाभान्वित होते हैं। परन्तु जब आय गिरती है तो अंशधारी इस नीति को पसन्द नहीं करते हैं।आय में बढ़ोत्तरी लाभांश की राशि व लाभांश की दर में बढ़ोत्तरी लाती है। यह कम्पनी के अंशों के बाजार मूल्य पर बुरा प्रभाव डालती है और ऐसी परिस्थितियों में बाजार में बाह्य स्रोतों से पूंजी उगाहना जटिल कार्य हो जाता है। बाजार में कम्पनी अपनी साख स्थायी बनाने में कठिनाइयों का सामना करती है। इस नीति से उत्पन्न समस्या को इन शब्दों में व्यक्त कर सकते हैं।

"इस नीति से जुड़े अस्थिर लाभांश के कारण अंशधारी बहुत ही ऊंची लाभांश दर पाने की इच्छा रखते हैं। बढ़ते हुए लाभांश की आकांक्षा उनके मन में होती है। यदि कम्पनी का लाभ स्थिर या कम होने लगता है, तो कुछ अंशधारी अपने को अलग करना चाहते हैं और अपने अंशों को बेचना शुरू कर देंगे जो अंशों के बाजार मूल्य को नीचे गिरा देगा।"

(ब) स्थायी लाभांश दर (Constant Dividend Rate) – चुकता पूंजी का एक निश्चित प्रतिशत लाभांश वितरण लाभांश नीति के रूप में अपनाया जा सकता है। इस नीति में अंशधारी पूर्ण रूप से आश्वस्त हो जाता है कि वह अपने विनियोग पर कितना लाभांश प्राप्त कर सकेगा। जैसा कि प्रारम्भ में बताया गया है कि कुछ अंशधारी अपने अंश की वार्षिक आय पर निर्भर

करते हैं और प्रतिवर्ष स्थिर राशि लाभांश के रूप में पाना पसन्द करते हैं। यह मान्यता है कि एक कम्पनी के अंशों का बाजार मूल्य ऊंचा हो सकता है, जब कम्पनी आय के एक निश्चित प्रतिशत की अपेक्षा एक स्थिर लाभांश दर से लाभांश का भुगतान करके जब आय बढती रहती है तो स्थिर लाभांश दर बनाए रखने में कोई परेशानी नहीं होती है लेकिन गिरती हुई आय की दशा में स्थिर लाभांश दर को बनाए रखने में कठिनाई आ सकती है। इसी कारण से यह सुझाव दिया जाता है कि बहुत ही नीचे स्तर पर लाभांश निर्धारित किया जाए ताकि कम्पनी के बुरे दिनों में लाभांश वितरण से कम्पनी के संसाध ानों पर बुरा प्रभाव न पड़े और अच्छे दिनों में अतिरिक्त लाभांश देकर अंशध ारियों को खुश रखा जाए।

उक्त दोनों नीतियों के अतिरिक्त प्रबन्धकों द्वारा अपनाई जाने वाली अन्य नीतियां निम्नानुसार है :–

(क) कठोर लाभांश नीति (Conservative Dividend Policy);

(ख) उदार लाभांश नीति (Liberal Dividend policy),

(ग) सुदृढ़ या सुस्थिर लाभांश नीति (Sound or Stable Dividend Policy).

(क) कठोर लाभांश नीति (Conservative Dividend Policy) –

इस नीति के अन्तर्गत लाभ का अधिकांश भाग व्यवसाय में ही पुनर्विनियोज़ित किया जाता है और अंशधारियों को लाभांश कम से कम दिया जाता है। इस प्रकार इस नीति को अपनाने पर प्रबन्ध कम्पनी की वित्तीय सुदृढ़ता एवं व्यवसाय की दशा को सर्वोपरि रखते हैं और अंशधारियों की वर्तमान आशाओं को गौण स्थान पर रखते हैं। इस नीति में भुगतान अनुपात (Payout ratio) बहुत ही कम या कभी कभी शून्य होता है। इस प्रकार की नीति उस कम्पनी की दशा में अच्छी व बुद्धिमत्तापूर्ण मानीजाती है।, जो विकासशील हो और जिसे सुधार व विस्तार कार्यक्रमों के लिए अधिक अतिरिक्त पूंजी की आवश्यकता हो। ऐसी कम्पनी के अंशधारियों को इस नीति से दीर्घकाल में लाभ मिलता है। परन्तु ऐसी नीति का पालन करते समय यह सतर्कता बरतनी चाहिए कि अंशधारियों के धैर्य सीमा को पार न कर जाए और जब प्रबन्ध अत्यधिक लाभ होने पर भी कुछ ही भाग लाभांश

के रूप में वितरित करते हैं तब इसे कठोर लाभांश नीति कहते हैं।

(ख) उदार लाभांश नीति (Liberal Dividend Policy) – जिसके अन्तर्गत प्रबन्ध लाभ के अधिकांश भाग का वितरण अंशधारियों में लाभांश के रूप में बांट देते हैं, उसे उदार लाभांश नीति कहते हैं। लाभ का उतना ही भाग प्रतिध ारित किया जाता है जितना अत्यंत आवश्यक होता है। इस नीति में भुगतान बहुत ही ऊंचा होता है। और प्रतिधारित अनुपात बहुत ही नीचा होता है। इस नीति में अंशधारियों के दीर्घकालीन हितों की अपेक्षा वर्तमान हित को अधिक महत्व दिया जाता है। स्पष्ट है कि इस नीति के अनुपालन से कम्पनी के विकास, विस्तार व प्रतिस्थापन कार्यक्रमों के लिए फण्ड की कमी आ सकती है। तथा अंशों का सट्टा मूल्य भी बढ़ जाता है जिससे नई अंश पूंजी उगाहने में कम्पनी को कठिनाई होती है और उसकी वित्तीय सुदृढ़ता को हानि पहुँच सकती हैं। यह नीति वर्तमान आवश्यकताओं को ध्यान में रखती हैं परन्तु भविष्य के लिए जोखिम उठाती है। जिसका परिणाम यह होता है कि कम्पनी को पूंजी की कमी की समस्या का सामना करना पड़ता है।

(ग) सुदृढ़ या सुस्थिर लाभांश नीति (Sound or Stable Dividend Policy) – लाभांश भुगतान की यह नीति दीर्घकालीन होती है तथा एक अरसे तक इसमें कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किए जाते हैं यह नीति कम्पनी को भावी आवश्यकताओं एवं अंशधारियों की वर्तमान अपेक्षाओं को समान महत्व देती है। और इनमें यथोचित तालमेल बैठाती है। सामान्यतः लाभांश वितरण की राशि व प्रतिधारित आय की राशि करीब–करीब बराबर होती है सम्पन्न वर्षों में दिया गया लाभांश भी उतना ही होता है जितना कि सामान्य या प्रतिकूल वर्षों में। जब लाभ अधिक होता है, तो उस समय पर्याप्त कोषों का निर्माण कर लिया जाता है जिनका प्रयोग उस अवधि में लाभांश बितरण के रूप में किया जाता है, जब लाभ में कमी आ गई हो ताकि लाभांश दर को स्थिर बनाए रखा जा सके। सुदृढ़ लाभांश नीति वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बहुत ही उपयोगी एवं एक महत्वपूर्ण लाभांश नीति है। जिसे कम्पनी अपनी भावी प्रतिस्पर्धा को इस प्रकार एक मध्यवर्गी नीति के रूप में अपनाती है। निश्चित व अनिश्चित सभी प्रकार की सम्भावनाओं के लिए पर्याप्त आयोजन कर लिए जाते हैं अतः यह नीति कम्पनी की साख व प्रतिष्ठा बनाए रखने में सहायक

होती है।

सुदृढ़ लाभांश नीति में प्रबन्ध द्वारा अंशधारियों को दिए जाने वाले लाभांश की दर में यथासम्भव परिवर्तन न हो इसका प्रयास किया जाता है। यह स्मरणीय है कि कम्पनी के प्रबन्ध को सुस्थिर भुगतान अनुपात (Stable payment ratio) की अपेक्षा सुस्थिर लाभांश दर (State Dividend rate) की नीति अपनानी चाहिए।

सुदृढ़ लाभांश नीति के तत्व (Essential of a Sound Dividend Policy)

एक समुचित लाभांश नीति में निम्नलिखित तत्व मौजूद होने चाहिए:–

(क) स्थिरता (Stability) – स्थिरता से आशय लाभांश वितरण में नियमितता बनाए रखने से है। यदि कोई कम्पनी एक वर्ष तो बहुत ही अच्छा लाभांश घोषित व भुगतान करती है परन्तु अगले ही वर्ष लाभांश नहीं बांट पाती है तो इसे अच्छा नहीं कहा जा सकता है। इसके विपरीत, कोई कम्पनी मध्यम दर से ही प्रतिवर्ष लाभांश देती है तो उससे अंशधारी संतुष्ट रहते हैं और अंशों में सट्टेबाजी शुरू नहीं हो पाती है। इसलिए स्थिर लाभांश नीति कम्पनी की स्थिरता का मापक है। जिसके आधार पर कम्पनी की सुदृढ़ता अनवरत बढ़ती रहती हैं।

(ख) लाभांश दरों के क्रमशः वृद्धि (Gradual rise in Dividiend Rates)– संस्था को हमेशा प्रयत्न करना चाहिए कि लाभांश दरों में क्रमशः वृद्धि होती रहे। कम्पनी की आय अधिक होने पर व मूल्य बढने पर अंशधारियों की यही इच्छा होती है कि उनकी आय में भी वृद्धि की दर को ध्यान में रखकर लाभांश दर में थोड़ी–थोड़ी वृद्धि करते रहना चाहिए। यदि किसी वर्ष लाभ अधिक हो जाए तो अतिरिक्त लाभांश का वितरण भी करना चाहिए। लाभांश दर में वृद्धि अंशधारियों में उत्साह बनाए रखती है। जिससे भविष्य में पूंजी प्राप्त करने में कठिनाई नहीं होती ।

(ग) प्रारम्भ में कम लाभांश (Moderate Start) – कम्पनी को प्रारम्भ के वर्षों में कम दर पर लाभांश घोषित करना चाहिए जिससे कम्पनी की वित्तीय स्थिति सुदृढ़ हो सके। हाँ, कम्पनी की प्रगति के साथ–साथ लाभांश दर में भी धीरे–धीरे वृद्धिकर देनी चाहिए। लाभांश वितरण में परिवर्तन का

प्रभाव अंशधारियों की आय में परिवर्तन से है।

(घ) लाभांश का नकद वितरण (Distribution of Dividend in Cash) – लाभांश का वितरण अधिकतर नकद रूप में किया जाना चाहिए। परन्तु जब कम्पनी के कोषों में अत्यधिक वृद्धिहो जाए, तो स्टॉक लाभांश (बोनस अंश) भी घोषित किया जा सकता है। स्टॉक लाभांश का वितरण करते समय यह देखना चाहिए कि कम्पनी अति पूंजीकरण का शिकार तो नहीं हो रही है।

(ङ) अन्य तत्व (Other factors) – लाभांश का भुगतान केवल अर्जित लाभ में से ही करना चाहिए। गत वर्षों की हानियों को पूरा करने के बाद ही लाभांश घोषित करना चाहिए। वैसे तो लाभांश वर्ष में एक ही बार दिया जाता है परन्तु अंशधारियों के उत्साह में वृद्धि के लिए अन्तरिम लाभांश भी दिए जा सकते हैं।

सुदृढ़ लाभांश नीति के लाभ (Advantages of a Stable/Sound Dividend Policy)-

सुदृढ़ लाभांश नीति, सभी नीतियों का सार है। प्रत्येक कम्पनी इस नीति का अनुसरण करती है। सुदृढ़ लाभांश नीति की प्रमुख विशेषता लाभांश की स्थिरता एवं नियमितता है। जब लाभांश नीति में स्थायित्व का अभाव होता है, तो अंशों के बाजार मूल्य में उच्चावचन होता रहता है जिससे कम्पनी और अंशधारी दोनों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। ऐसी स्थिति का लाभ सटोरिए उठाते हैं और कभी–कभी यह स्थिति कम्पनी के अस्तित्व को भी चुनौती दे सकती है। एक सुदृढ़ लाभांश नीति के निम्नलिखित लाभ हो सकते हैं।

(क) अंशधारियों में सन्तोष (Shareholder's Satisfaction) – कुछ अंशधारी (जैसे मध्यवर्गीय या वृद्ध व्यक्ति या पेंशन प्राप्त व्यक्ति) आय के प्रति बहुत ही जागरूक एवं सतर्क होते हैं और वे नियमित रूप से प्रतिवर्ष मिलने वाले लाभांश को अधिक महत्व देते हैं। एक सुदृढ़ लाभांश नीति के द्वारा ऐसे अंशधारियों को सन्तुष्ट रखा जा सकता है । इस नीति का प्रभाव सर्वाधिक मध्यम वर्ग के अंशधारियों पर पड़ता है जिससे कम्पनी की औसत पूंजी प्रभावित होती है।

(ख) अंशधारियों में विश्वास जगाना (Confidence among shareholders) – एक स्थाई व नियमित लाभांश की राशि प्राप्त करने से अंशधारियों के मन में अंशों के प्रति विश्वास जग जाता है। किसी वर्ष लाभांश कम होने पर कम्पनी लाभांश में कटौती नहीं करती है और कोषों में से नियोजन करके लाभांश बांटती है। इसके कारण पूंजी बाजार में इन अंशों की साख अच्छी बनी रहती है। और भविष्य में पूंजी प्राप्त करने में आसानी होती है।

(ग) अंशों के बाजार मूल्य में अपेक्षाकृत स्थिरता (Relative Stability in Market Price of Shares) – जिन अंशों पर नियमित दर से लाभांश मिलता है उनके बाजार मूल्यों में अपेक्षाकृत कम उच्चावचन होते है। तथा ऐसे अंशों में सट्टेबाजी की सम्भावनाएं कम रहती हैं। यही नहीं, कम्पनी की साख में वृद्धि होती है जिसका अनुकूल प्रभाव अंशों के बाजार मूल्य पर पड़ता है। पूंजी एकत्रित करने की संभावना ज्यादा आसान होती है।

(घ) दीर्घकालीन योजनाओं में सहायक (Helpful in Long-term Planning) – सुदृढ़ लाभांश नीति के अन्तर्गत वित्तीय आवश्यकताओं तथा उनकी पूर्ति के साधनों का सही मूल्यांकन किया जा सकता है। जिसके आध ार पर दीर्घकालीन योजनाओं का निर्माण सरलतापूर्वक किया जा सकता है। स्थायी लाभांश नीति कम्पनी की दीर्घकालीन पूंजी प्राप्त करने के साधनों को सरल बनाती है।

(ङ) राष्ट्रीय आय में स्थायित्व (Stability in National Income) – यदि देश में कार्यरत सभी या अधिकांश कम्पनियॉं सुदृढ़ लाभांश नीति का पालन करेंगी, तो इसके कारण राष्ट्रीय आय में स्थिरता आएगी, जो सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के स्थायित्व का सूचक होगा। अंशधारियों की स्थायी आय से सम्पूर्ण देश की आय में स्थायित्व की सम्भावना प्रबल होती है।

उक्त लाभों को देखते हुए कुशल एवं अनुभवी प्रबन्धक सदैव इस बात का प्रयत्न करते हैं कि सुदृढ़ लाभांश नीति को ही अपनाना चाहिए।

लाभांश नीति के लक्ष्य (Goals of Dividend Policy)

लाभांश नीति को प्रभावित करने वाले अनेक कारक है। अतः कभी भी

दो भिन्न कम्पनी समान लाभांश नीति का पालन शायद ही कर पाती है। कम्पनी की विशिष्ट परिस्थिति के अनुसार ही लाभांश नीति को असली जामा पहनाया जाता है। फिर भी एक लाभांश नीति के सन्दर्भ में निम्नलिखित पहलुओं को हमेशा ध्यान में रखना चाहिए।

1. लाभांश नीति का विश्लेषण कम्पनी के मूल्य पर पड़ने वाले प्रभाव के सन्दर्भ में किया जाना चाहिए।
2. लाभदायक अवसरों में कम्पनी द्वारा विनियोग मूल्य का सृजन करना चाहिए जब कम्पनी इस प्रकार के विनियोग के अवसर का त्याग करती है, तो अंशधारियों को अक्सर हानि होती है।
3. लाभांश, विनियोग व अर्थप्रबन्धन सम्बन्धी निर्णय एक दूसरे पर निर्भर करते हैं और अक्सर इनमें सामंजस्य स्थापित करना पड़ता है।
4. लाभांश निर्णय को एक अल्पकालीन अवशेष निर्णय के रूप में नहीं मानना चाहिए क्योंकि वार्षिक लाभ में विचरणशीलता किसी वर्ष में लाभांश को शून्य भी कर सकती है। इसका कम्पनी पर गम्भीर प्रभाव पड़ सकता है और स्कन्ध विपणि में इसके अंशों की सूचियन समाप्त भी हो सकती है।
5. भुगतान अनुपात में अनिश्चित विचरणशीलता को दूर करने के लिए लाभांश को दीर्घकालीन अवशेष के रूप में मानना चाहिए।
6. कम्पनी द्वारा कोई भी लाभांश नीति का पालन क्यों न किया जाय, लाभांश नीति के मार्गदर्शन के रूप में सामान्य सिद्धान्तों से अंशध ारियों को अवश्य सूचित करना चाहिए, ताकि वे अपनी पसन्दगी व आवश्यकता के सन्दर्भ में स्वयं निर्णय ले सकें।
7 लाभांश में अनिश्चित व बार–बार परिवर्तन नहीं होने देना चाहिए। लाभांश दर में कटौती अंशधारियों के लिए कष्टदायक होती है। अंशधारियों को समझाना प्रबन्धक के लिए सिरदर्द बन सकता है।

3.4 सारांश (Summary)

कम्पनियाँ अपनी आर्थिक एवं वित्तीय नीतियों में लाभांश नीति को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करती है। कम्पनी की कठोर लाभांश नीति जहाँ लाभों

के पुनर्विनियोजन पर बल देती है। वहीं उदार लाभांश नीति लाभों को अंशधारियों के बीच ज्यादा से ज्यादा वितरण पर विश्वास करती है। जिससे कम्पनी बाजार में अपनी साख का निर्माण कर सके।सुदृढ़ लाभ नीति वह मध्यमार्गी नीति है जिसमें कम्पनी स्थायित्व पर ध्यान देती है और सुदृढ़ लाभांश नीति कम्पनी के अंशधारियों को स्थायी बनाने में सफलता भी अर्जित करती है। जिसका परिणाम कम्पनी के अंशों का बाजार मूल्य भी सुदृढ़ एवं स्थायी रहता है।

3.5 शब्दावली

- **कठोर लाभांश (Conservative Dividend)** : इसके अन्तर्गत अंशधारियों को कम से कम लाभांश देने और लाभ का अधिकांश भाग पुर्नविनियोजित करना है।
- **उदार लाभांश (Liberal Dividend)** : लाभों का अधिकांश भाग अंशधारियों में वितरित करना है।
- **सुदृढ़ लाभांश (Sound Dividend)** साधारणतया लम्बी अवधि तक कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया जाना।

3.6 स्व–परक प्रश्न

1 विभिन्न प्रकार की लाभांश नीतियों की संक्षिप्त विवेचना कीजिए और स्थिर लाभांश नीति के लाभ एवं खतरों का परीक्षण कीजिए।

2. स्थिर लाभांश नीति की प्रमुख विशेषताओं की विवेचना कीजिए तथा इसके गुण दोषों को बताइये।

3. "लाभांश नीति का चयन उद्यम के मूल्य को सदैव प्रभावित करता है"। इस कथन का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

4. लाभांश नीतियों के विभिन्न प्रकारों अथवा प्रारूपों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

इकाई – 4 लाभांश के प्रकार (Types of Dividend)

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 लाभांश के प्रकार

4.4 सारांश

4.5 शब्दावली

4.6 स्व–परक प्रश्न

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- कम्पनी के लाभांश के प्रकारों को बता सकेंगे
- कम्पनी लाभांश के विविध प्रावधान बता सकेंगे,
- कम्पनी के लाभांश को इस प्रकार प्रस्तुत कर सकें जिससे कम्पनी की दीर्घकालीन शोधन क्षमता स्पष्ट हो सकें।

4.2 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में कम्पनी के विभिन्न लाभांशों के प्रकारों को प्रस्तुत किया गया है। कम्पनी अपनी लाभांश नीतियों में लाभांश के प्रकारों को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करती है। कम्पनी विभिन्न प्रकार के लाभांश का वितरण कर अंशधारियों को कम्पनी के प्रति निष्ठावान होने के लिए प्रेरित करती है। इस इकाई में विभिन्न प्रकार के लाभांशों का वर्णन किया जा रहा है। जो कम्पनी की लाभांश नीतियों को प्रभावित करते हैं। और कम्पनी अपने भावी अंशधारियों की संख्या में वृद्धि करती हैं।

4.3 लाभांश के प्रकार (Types of Dividend)

वितरण के आधार पर लाभांशों को निम्न स्वरूपों में विभक्त किया जा

सकता है–

1. नकद लाभांश (Cash Dividend) –

यह सबसे प्रचलित व लोकप्रिय प्रारूप है। जिसके तहत लाभांश का भुगतान नकद धन के रूप में किया जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि कम्पनी की तरलता की स्थिति नकद लाभांश देने योग्य हो और नकद लाभांश देने से तरलता पर विपरीत प्रभाव न पड़ता हो। कम्पनी अपनी तरलता नीति के आधार पर नकद लाभांश का निर्णय बाजार की परिस्थितियों के आधार पर करती है।

2. प्रपत्र लाभांश (Scrip Dividend) –

लाभ का अर्थ यह नहीं होता कि कम्पनी के पास पर्याप्त नकदी है। और नकद रूप में लाभांश दिया जा सकता है। लाभांश का भुगतान चालू वर्ष के लाभ में से या संचित कोषों में से या दोनों में से किया जाता है। यदि कम्पनी के पास पर्याप्त रोकड़ नहीं है और कम्पनी लाभांश देना चाहती है तो कम्पनी लाभांश की राशि के लिए प्रतिज्ञा–पत्र जो कुछ माह बाद देय हो, जारी कर सकती है। यदि आवश्यक हो तो शोधनीय लाभांश अधिपत्र भी जारी किये जा सकते हैं।

3. ऋणपत्रों के रूप में लाभांश (Debentures Dividend) –

ऋण पत्र के रूप में लाभांश देने का मन्तव्य यही होता है कि कम्पनी वर्तमान लाभांश का भुगतान भविष्य में करना चाहती है। ऐसा तभी किया जाता है, जब कम्पनी की तरलता की स्थिति नाजुक हो। एक कम्पनी लाभांश के बदले में अंशधारियों को ऋणपत्र बाण्ड्स भी जारी कर सकती है। ये ऋणपत्र एक निश्चित अवधि के बाद देय होते हैं और इन पर ब्याज भी देय होता है।

4. बोनस अंश या स्टॉक लाभांश (Bonus Share or Stock Dividend)–

संचित कोष में से नकद लाभांश न देकर उस कोष का पूंजीकरण कर दिया जाता है। अर्थात अंशधारियों को संचित कोष के बदले में समता अंश निर्गमित कर दिये जाते हैं। जब कम्पनी की तरलता स्थिति ठीक नहीं होती

है और नकद लाभांश देने में असमर्थ होती है तो अंशधारियों को एकत्रित भूतकाल के लाभ के बदले में अंश निर्गमित कर दिये जाते हैं। इन अंशों को बोनस अंश कहते हैं। अंशधारी इन बोनस अंशों को अपने पास ही रखते हैं या बेचकर नकद धन प्राप्त कर लेते हैं। वस्तुतः बोनस अंश लाभांश के बदले में निर्गमित नहीं किये जाते हैं। बल्कि सामान्य लाभांश भुगतान के साथ–साथ प्रगतिशील कम्पनियों द्वारा समय–समय पर सम्पत्तियों को पूंजी बदलने के लिए बोनस अंश जारी किए जाते हैं। वर्तमान समय में पूंजी की समस्या से जूझ रही कम्पनियों के लिए बोनस अंश निर्गमित करना आसान होता है।

5. सम्पत्ति लाभांश (Property Dividend) –

लाभांश का यह प्रारूप असाधारण है। इस प्रकार का लाभांश स्कन्ध के रूप में या प्रतिभूतियों के रूप में हो सकता है। कभी–कभी एक कम्पनी दूसरी कम्पनी के अंशों व ऋणपत्रों को खरीदकर विनियोग के रूप में रखती है-। यदि कम्पनी इन्हें बेचती है तो पूंजीगत लाभ का कर देना पड़ता है किन्तु जब इस प्रकार के विनियोग को लाभांश के रूप में अंशधारियों में बांटा जाता हो, तो कम्पनी पर कोई कर दायित्व नहीं बनता है।

6. संयुक्त लाभांश (Composite Dividends)–

जब लाभांश का कुछ भाग नकद रूप में तथा शेष अन्य सम्पत्ति के रूप में दिया जाता है, तो उसे संयुक्त लाभांश कहते है। संयुक्त लाभांश से अंशधारियों एवं कम्पनी दोनों को अपनी स्थितियों के अनुसार अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने का सरल या आसान विकल्प रहता है।

7. वैकल्पिक लाभांश (Optional Dividend) –

वैकल्पिक लाभांश में कम्पनी अपने अंशधारियों को विकल्प देती है कि वे अपनी इच्छानुसार नकद या सम्पत्ति के रूप में लाभांश ले सकते हैं। चूँकि अंशधारियों के सामने लाभांश नकद या सम्पत्ति के रूप में प्राप्त करने का विकल्प होता है, अतः इसे वैकल्पिक लाभांश कहा जाता है। वैकल्पिक लाभांश, अंशधारियों को विकल्प चयन का अवसर प्रदान करता है।

8. नियमित लाभांश (Regular Dividend) –

नियमित लाभांश कम्पनी के वित्तीय वर्ष के समाप्त होने पर वार्षिक

साधारण सभा में संचालकों द्वारा घोषित किया जाताहै और चुकाया जाता है। नियमित लाभांश अंशधारियों को निरन्तर वर्ष के अन्त में संचालकों द्वारा नियमानुसार भुगतान किया जाता है।

9. अन्तरिम लाभांश (Interim Dividend) –

अन्तरिम लाभांश कम्पनी के सदस्यों को बिना अन्तिम खाते बनाए हुए दिया गया लाभांश होता है। जब कम्पनी यह महसूस करती है कि व्यवसाय में लाभ पर्याप्त मात्रा में अर्जित कर लिये गये हैं तो वर्ष की समाप्ति से पूर्व ही अन्तर्नियमों द्वारा अधिकृत होने पर संचालक अन्तरिम लाभांश घोषित कर सकते हैं। संचालकों द्वारा अन्तरिम लाभांश घोषित करने में पर्याप्त सतर्कता बरती जानी चाहिए, क्योंकि अगर लाभ–हानि खाते द्वारा प्रदर्शित लाभ चुकाये गये अन्तरिम लाभांश से कम रह जाता है तो इसके लिए संचालक व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी माने जाएंगे। इस दशा में पूंजी में से लाभांश का भुगतान हो जाएगा जो कि अवैधानिक होता है। वर्ष के मध्य में लाभांश का भुगतान होने पर वार्षिक लाभांश का आकलन सही नहीं होने पर एक तरफ जहां कम्पनी नुकसान उठाती है वहीं अच्छीं स्थिति होने पर कम्पनी के अंशों का बाजार मूल्य स्वाभाविक तौर पर बढ़ जाता है।

10. अतिरिक्त लाभांश (Extra Dividend) –

एक सुदृढ़ लाभांश नीति के लिए आवश्यक है कि नियमित लाभांश की दर में अत्यधिक परिवर्तन न किया जाय। परन्तु यदि कम्पनी को किसी विशेष वर्ष में अत्यधिक व अप्रत्याशित लाभ अर्जित हो जाए तो वह नियमित लाभांश के अतिरिक्त लाभांश के साथ ही मगंर पृथक रूप से दिया जाता है। अतिरिक्त लाभांश देने का उद्देश्य अंशधारियों के यह बता देना होता है कि अतिरिक्त लाभांश की राशि अस्थायी एवं अनावर्ती है।

11. समापन लाभांश (Liquidation Dividend) –

समापन लाभांश कम्पनी के समापन अर्थात स्थायी रूप से बन्द होने की दशा में सम्पत्तियों के रूप में वितरित किया गया लाभांश है। समापन लाभांश कम्पनी के जीवनकाल में दुर्लभ और एक बार घटित होने वाली घटना होती है जिसका कोई दूसरा विकल्प नहीं होता है। कम्पनी का समापन

होने पर कम्पनी के जीवनकाल का अन्तिम लाभ उनकी पूंजी के अनुसार भुगतान किया जाता है।

12. बन्ध पत्र (Bond Dividend) –

इसमें कम्पनी नकद लाभांश न देकर बन्ध पत्रों के रूप में लाभांश वितरित करती है। इसका आशय यह हुआ कि कम्पनी वर्तमान में लाभांश न वितरित करके भविष्य में किसी निश्चित तिथि को ब्याज सहित लाभांश चुकाने का वायदा करती है। इसके लिए अंशधारियों को एक प्रमाण पत्र जारी किया जाता है जिसे बॉण्ड या बन्ध पत्र कहते हैं। बन्धपत्र लाभांश बाजार में उपलब्ध नये उपकरण के रूप में प्रयोग किया जाता है जिससे कम्पनियों को एक नया विकल्प और अंशधारियों को अवसर उपलब्ध होते हैं।

4.4 सारांश

कम्पनी अपने अंशधारियों (स्वामियों) को लाभ का एक भाग लाभांश के रूप में वितरित करती है। लाभांश का वितरण कम्पनी के विभिन्न रूपों जैसे – नकद, अंश, ऋणपत्र, बन्धपत्र एवं सम्पत्तियों के रूपों में भुगतान किया जाता है। लाभांश के प्रकार कम्पनी की लाभांश नीति का अहम हिस्सा है। जिससे कम्पनी अपनी वर्तमान एवं भविष्य की आवश्यकताओं के आधार पर लाभांश का भुगतान करती है साथ ही साथ कम्पनी अपनी आन्तरिक आर्थिक एवं वित्तीय स्थिति मजबूत करने के लिए लाभों का शेष भाग कम्पनी में पुनर्विनियोजित करती है।

4.5 शब्दावली

नकद लाभांश (Cash Dividend) : नकद रूप में लाभांश वितरित करना।

स्कन्ध लाभांश (Stock Dividend) : आवंटित अंशों को बोनस अंश के रूप में निर्गमित करना।

सम्पत्ति लाभांश (Property Dividend) : वस्तुओं अथवा उत्पादित वस्तुओं के रूप में लाभांश दिया जाना।

अन्तरिम लाभांश (Interim Dividend) : अन्तरिम लाभांश कम्पनी के सदस्यों को बिना अन्तिम खाते बनाए हुए दिया गया लाभांश होता है।

4.6 स्व–परक प्रश्न

1. लाभांश से क्या आशय है? कम्पनियों द्वारा सामान्यतया घोषित किये जाने वाले विभिन्न प्रकार के लाभांशों का उल्लेख कीजिए।

2. भारतीय कम्पनियों द्वारा बांटे जाने वाले विभिन्न प्रकार के लाभांशों का वर्णन कीजिए।

3. लाभांश के प्रकारों की व्याख्या कीजिए।

4. लाभांश के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन कीजिए।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

डॉ. एच. के. सिंह : वित्तीय प्रबन्ध (साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, 2001)

डॉ. एस. पी. गुप्ता : वित्तीय प्रबन्ध (साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, 2005)

डॉ. शैलेन्द्र कुमार भारल : वित्तीय प्रबन्ध (रामप्रसाद एण्ड संस, 2005)

रवि एम.किशोर : वित्तीय प्रबन्ध (टेक्समेन, अंग्रेजी माध्यम)